समझ और आज़ादी

इस्लाम और मसीहत में विस्तृत तुलना

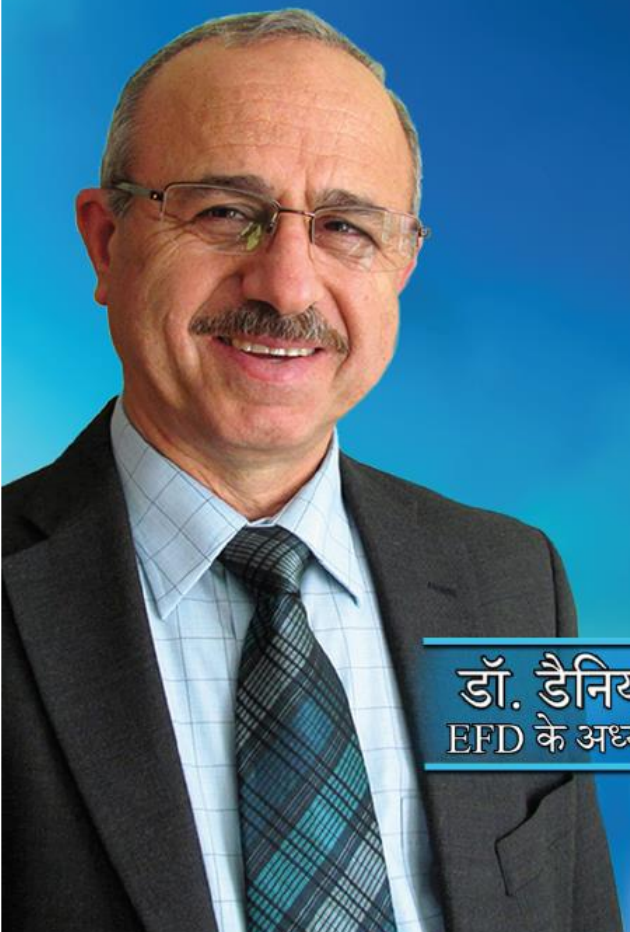

डॉ. डैनियल शायेस्तेह
EFD के अध्यक्ष और संस्थापक

समझ और आज़ादी

इस लेखक की अन्य पुस्तकें

The House I Left Behind

Islam and the Son of God

Christ Above All

इस पुस्तक की सामग्री डी.वी.डी. और ऑडियो सी.डी. में उपलब्ध है। डी.वी.डी. और ऑडियो सी.डी. के लिए सभी सन्दर्भ इस पुस्तक में मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त सहायक सामग्री फुटनोट में दी गई है।

डैनियल शायेस्तेह की पुस्तकों के बारे में अधिक जानकारी के लिए देखें

www.exodusfromdarkness.org

7spirits@gmail.com

समझ और आज़ादी

इस्लाम और मसीहत में

विस्तृत तुलना

डैनियल शायेस्तेह

Exodus from Darkness, Inc

Copyright © 2016, Exodus from Darkness, Inc.

यह पुस्तक कॉपीराइट के अन्तर्गत सुरक्षित हैं, परन्तु इस पुस्तक का सम्पूर्ण रूप में अथवा अंशों में पुनरुत्पादन अथवा वितरण इस शर्त के साथ किया जा सकता है कि यह कॉपीराइट पेज लेखक के नाम, डैनियल शायेस्तेह, और प्रकाशक के नाम, Exodus from Darkness, के साथ उसमें शामिल किया जाए। यदि इस पुस्तक का सम्पूर्ण रूप में अथवा अंशों में किसी लैक्चर अथवा शिक्षण सामग्री में उपयोग किया जाता है, तो इसकी पूर्ण श्रेय लेखक को दिया जाए। इसमें किसी भी प्रकार का संशोधन अथवा बदलाव न किया जाए।

लेखक: डैनियल शायेस्तेह, 1954
समझ और आज़ादी: इस्लाम और मसीहत में विस्तृत तुलना

प्रकाशक: -
Exodus from Darkness, Inc. York, PA, USA.
ISBN: 978-0-6489558-2-5
www.exodusfromdarkness.org
usa@exodusfromdarkness.org

विषय-वस्तु

लेखक का आमुख 7

परिचय 9

हमें व्यक्तिगत ज्ञान की जरूरत क्यों है? 17

अपनी संस्कृति में सम्वर्धन की जरूरत – क्यों? कैसे? 31

डैनियल के जीवन में से व्यक्तिगत बदलाव के उदाहरण 44

परमेश्वर – क्या परमेश्वर वजूद में है? 59

सच्चे और झूठे परमेश्वर में भिन्नता कैसे करें? 74

इस्लाम के रब और मसीहत के परमेश्वर में अन्तर 86

क्या इस्लाम का रब एक अच्छा मार्गदर्शक हो सकता है? 102

क्या इस्लाम के द्वारा परमेश्वर के साथ आपका मेल हो सकता है? 120

क्या क़ुरआन सच्चे परमेश्वर का वचन है? 133

क्या इस्लाम सचमुच अन्तिम और सिद्ध धर्म है? 152

आपका अच्छा अगुवा कौन हो सकता है, ईसा (यीशु) या मुहम्मद? 166

इस्लाम में अगुवाई अव्यवस्थित है 177

इस्लाम की शरीअत अथवा मसीह का प्रेम – उत्तम आदर्श कौन सा है?.....191

मनुष्यजाति को मित्रों की जरूरत है, शत्रुओं की नहीं.....203

मसीह के सुसमाचार में सम्बन्धों को लेकर त्रुटिहीन निर्देश दिए गए हैं.....214

क़ुरआन इस्लाम के नबी से कहता है कि वह बाइबल पर ईमान लाए 222

मसीहियों के विश्वास पर इस्लाम द्वारा लगाए जाने वाले आरोप बेबुनियाद हैं 234

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियाँ अपनी ही आस्थाओं का तिरस्कार करती हैं 247

धोखे, झूठ और राजनीतिक चालबाज़ियों से आज़ाद होने का सुख 265

ईसा (यीशु) के अतिरिक्त और कहीं उद्धार नहीं है 274

ईसा (यीशु) मार्ग, सत्य और जीवन है.....286

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची.....294

लेखक का आमुख

यह पुस्तक इस्लाम की प्रमुख आस्थाओं को प्रकाश में लाती है और उनकी तुलना मसीहत के साथ और अन्य आस्थाओं के साथ करती है—यह ऐसी जानकारी है जो मुसलमानों के पास अवश्य पहुँचनी चाहिए। यह पुस्तक इस तथ्य को भी प्रकाश में लाती है कि किस प्रकार इस्लाम के अगुवों और उपदेशकों ने मुसलमानों को अन्धेरे में रखा हुआ है और नहीं चाहते कि वे अपनी आस्थाओं के कुछ विशेष तथ्यों को जानें।

यह पुस्तक उन तथ्यों पर एक चिन्तन को प्रस्तुत करती है, जिनके बारे में मैं इस्लाम से मसीह में अपनी यात्रा के दौरान जागृत हुआ हूँ। अपनी इस यात्रा के दौरान बार-बार में हैरान होता रहा कि इस्लाम की राजनीतिक प्रकृति के बारे में मुझे कैसे और क्यों अज्ञानता में रखा गया था, और मुझे कभी भी यह अनुमति नहीं दी गई थी कि मैं इस्लाम को संसार के सन्दर्भ में जानूँ, तथा सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि इसमें ईसा (यीशु) मसीह के सौन्दर्य को देख पाऊँ।

मैं बहुत आभारी हूँ कि ईसा (यीशु) मसीह ने मेरा जीवन बदल दिया है और इसलिए भी कि उसने मुझे सक्षम बनाया कि मैं धार्मिक और सांसारिक षड्यन्त्रों के बारे में मैं दूसरों को बता सकूँ, जो अनेक लोगों को, जिनमें मुसलमान भी शामिल हैं, गुमराह कर सकती हैं। मेरी प्रार्थना है कि इस पुस्तक में जो कुछ लिखा है, वह संसार भर के करोड़ों मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के लिए प्रकाश बन जाए, ताकि उन्हें शान्ति के राजकुमार ईसा (यीशु) मसीह की शरण में आने

में सहायता मिले, जिससे वे अब और सदाकाल के लिए शान्तिमय जीवन प्राप्त कर सकें।

डैनियल शायेस्तेह

परिचय

जल्दी ही मैं आपके साथ 21 विषयों के जरिए एक लम्बी बातचीत आरम्भ करने जा रहा हूँ। आरम्भ करने से पहले इस परिचय वाले भाग में मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैंने इस पुस्तक को एक बातचीत के तौर पर तैयार किया है। हालाँकि मैं आपकी आवाज़ को खुद सुन नहीं पाऊँगा, तो भी मैं इसे बातचीत ही कहूँगा, क्योंकि आप अपने विवेक को बोलने की और उस हर एक मसले का आकलन करने की अनुमति दे सकते हैं, जिसे मैं उठाने जा रहा हूँ। अगर हम अपने विवेक को अनसुना कर दें, तो फिर हमारी बातचीत सार्थक नहीं हो पाएगी। इसलिए, आइए, इस शृंखला के आरम्भ में ही हम एक दूसरे से वादा करें कि हम अपने विवेक की आवाज़ को अनसुना नहीं करेंगे।

इस शृंखला के हर एक विषय का एक शीर्षक दिया गया है, परन्तु सारी शृंखला का नाम "समझ और आज़ादी" है। ईसा (यीशु) मसीह के साथ मेरी मुलाकात अद्‌भुत रीति से हुई। उसने इस जीवन के प्रति मुझे समझ प्राप्त करने में, मेरी आस्थाओं पर तर्क करने में, अन्धे आज्ञापालन करने से बचने में और एक आज़ाद व्यक्ति के तौर पर जीने में सहायता की है।

पिछले कुछ दशकों के दौरान मैंने हजारों शिक्षित और अशिक्षित, सहनशील और उत्तेजित, धार्मिक अगुवों और साधारण मुसलमानों से व्यक्तिगत रीति से तथा रेडियो, टीवी, और इण्टरनेट के माध्यम से बात की है। मैंने उनमें से अनेक पर तर्कसंगत रीति से की जाने वाली

बातचीत के भारी प्रभाव को पड़ते देखा है और यह भी देखा है कि जीवन के हर एक क्षेत्र में आज़ादी के महत्त्व की समझ प्राप्त करने से जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बदला है। इन अनुभवों ने मुझे प्रेरित किया कि मैं इन विषयों को तैयार करूँ और उनके माध्यम से आप जैसे करोड़ों मुसलमानों तथा गैर-मुसलमानों में यह जागृति लाने का रास्ता तैयार करूँ कि समझ और आज़ादी आपस में कितनी गहराई से जुड़े हुए हैं।

अगर हम अपनी आस्थाओं और संस्कृतियों में गहराई से न देखें और उनमें पाए जाने वाले अन्धकार से आज़ादी पाने का सही रास्ता न ढूँढें, तो हम आत्मिक या सामाजिक तौर पर आज़ादी हासिल नहीं कर पाएँगे। इसलिए मैंने इस पूरी शृंखला का शीर्षक "समझ और आज़ादी" रखने का चयन किया है। समझ और आज़ादी हमारे जीवन की दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य जरूरतें हैं। एक के बिना दूसरे का वजूद सम्भव नहीं है।

अनेक आस्थाएँ और धर्म अपने अनुयायियों को अज्ञानता में रखते हैं और इस प्रकार उनकी आज़ादी से उन्हें वंचित रखते हैं। यह एक वाजिब तथ्य है कि उनका प्रभुत्व लोगों में पाई जाने वाली समझ और आज़ादी की कमी पर टिका होता है। वह आस्था लोगों की आज़ादी में सबसे बड़ी रुकावट बन जाती है जो लोगों को उनके सिद्धान्तों की तुलना दूसरों के सिद्धान्तों के साथ करने से रोकती है, ताकि वे उनमें से उत्तम को चुन पाएँ। आज़ादी का अर्थ यह है कि आपको सब बातों के बारे में स्पष्टता प्राप्त करने से रोकने का

अधिकार किसी के पास नहीं है। जिन लोगों के पास अपनी आस्थाओं के बारे में तर्क मौजूद नहीं है, वे लोग आज़ाद नहीं हैं और जानते तक नहीं हैं कि सच्ची आज़ादी क्या होती है।

आपको यह समझने की जरूरत है कि अगर आप दावा करते हैं कि आपकी आस्था सर्वोत्तम है और सिद्ध है, तो यह आपकी जिम्मेदारी बनती है कि आप इस दावे का समर्थन करने के लिए ठोस और तर्कसंगत कारण पेश करें। मेरे सामने ऐसे अनेक लोग आए हैं, जिन्होंने मेरे सामने यह दावा किया कि उनकी आस्था सर्वोत्तम और सिद्ध है। जब मैंने उनसे पूछा कि वे सर्वोत्तम और सिद्ध की परिभाषा मुझे दें, तब उन्होंने पहचाना कि उनकी आस्थाओं के बारे में उनके दावे सच्चे नहीं थे। इसलिए मैंने यह लक्ष्य बनाया है कि आपके दावों के लिए आपको तर्क प्राप्त करने में आपकी सहायता हो पाए।

मेरी बातों को सुनने के बाद आपके लिए यह समझना बहुत आसान हो जाएगा कि अपनी आस्था पर कायम रहने का उद्देश्य यह नहीं है कि उसके द्वारा दूसरों के साथ मुकाबला किया जाए या उन पर प्रभुत्व किया जाए, बल्कि इसका उद्देश्य तो यह देखना है कि आपकी आस्था आपके फैसले लेने तथा परखने की योग्यता अथवा क्षमता को महत्त्व देती है या नहीं। जरूरी है कि एक सच्ची आस्था लोगों को प्रोत्साहित करे कि वे सब बातों को गहराई से समझें। इसी कारण मुझे यह प्रेरणा मिली कि मैं इन 21 भिन्न-भिन्न विषयों के माध्यम से इस्लाम और मसीहत में भिन्न-भिन्न प्रकार की तुलना दर्शाऊँ। मैं यह

प्रमाणित करना चाहता हूँ कि सही आस्था रखने के लिए समझ बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिससे आज़ादी आती है।

इस्लामिक देशों में सबसे बड़ी बाधा यह है कि वहाँ पर इस्लाम की बारीकी से जाँच करने या अन्य आस्थाओं के साथ उसकी तुलना करने पर पाबन्दी है। लोगों के पास यह आज़ादी नहीं है कि वे अपने धर्म की जाँच-पड़ताल करें। केवल इतना ही नहीं, मुसलमानों से इस्लाम की जबरन तारीफ करवाई जाती है और गैर-इस्लामिक सिद्धान्तों की बुराई करवाई जाती है, फिर चाहे वे सिद्धान्त कितने ही लाभकारी और अच्छे ही क्यों न हों।

अपनी खुद की या दूसरों की आस्था को समझने पर लगने वाली पाबन्दी एक बन्धन है। अगर आप आज़ादी के लिए प्यासे हैं, तो पहले आपको अपनी खुद की समझ को स्पष्ट करना होगा, अपनी खुद की संस्कृति तथा आस्था में मौजूद बाधाओं को पहचानना होगा और केवल तब ही आप उन पर विजयी होने का सर्वोत्तम रास्ता ढूँढ पाएँगे। आज़ादी पाने की सबसे बड़ी कुंजी समझ है। समझ के बिना हम अपने विवेक की आवाज़ को दबा कर अन्ध-भक्तों की तरह उनके पीछे-पीछे चलते रहेंगे जिनका उद्देश्य ही हमारी अज्ञानता का फायदा उठाना है। इस कारण इस शृंखला में मेरे पहले दो विषय व्यक्तिगत ज्ञान और संस्कृति में सम्वर्धन करने पर केन्द्रित हैं, जिससे आपके विवेक को जगाया जाए और आपमें एक प्यास जगाई जाए, ताकि आप सारे बन्धनों को तोड़कर आज़ाद हो सकें।

मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि आपकी और संसार के हर एक व्यक्ति की यह गहरी चाहत होती है कि आपको तथा उन्हें सर्वोत्तम वस्तुएँ मिलें। भली और गुणकारी वस्तुएँ हमेशा आपको फायदा पहुँचाती हैं। इसी कारण हम बुरी और गुणहीन वस्तुओं से बचते रहते हैं। आस्था अथवा धर्म के मामले में भी ऐसा ही होता है। जरूरी है कि हमारी आस्था सर्वोत्तम हो। अनेक लोग ऐसे हैं जिन्हें अपनी आस्था अपने माता-पिता से या अपने समाज से विरासत में मिलती है और उन्हें यह पता भी नहीं होता कि यह गुणकारी है या नहीं। लोगों की आस्था ऐसी होनी चाहिए जो उन्हें आत्मविश्वास दे, उनकी चयन की आज़ादी का सम्मान करे और एक अच्छा मानक प्रदान करे, जिससे उन्हें एक सफल जीवन तथा अपने परिवारजनों या बाहर वालों के साथ शान्तिमय सम्बन्ध प्राप्त करने में सहायता मिले।

ऐसी सुन्दर आस्था प्राप्त करने के लिए लगन, खुलेपन, जाँच-पड़ताल तथा तुलना करने के लिए व्यक्तिगत पहल और आखिरकार सर्वोत्तम फैसला लेने के साहस की जरूरत पड़ती है। एक अच्छी और गुणकारी आस्था प्राप्त करना न केवल हमारे लिए तथा हमारे परिवार के लिए फायदेमन्द है, बल्कि यह हमारे द्वारा हमारे समाज में भी चमकती है और इस प्रकार हमारी संस्कृति को सम्वर्धित करती है। परिणामस्वरूप, संस्कृति में होने वाला सम्वर्धन लोगों को उनके जीवन के हर क्षेत्र में समृद्ध बना देगा और एक उत्तम तथा उत्पादक जीवन प्राप्त करने के अधिक रचनात्मक सिद्धान्त खोजने में उनकी अगुवाई करेगा।

अगर हम अपने दिल, दिमाग और विवेक का इस्तेमाल न करें, तो हम मौकापरस्त लोगों के धोखे में आ जाएँगे और अपने जीवन के हर क्षेत्र में उनकी बुरी चालों के शिकार होते रहेंगे। मैंने अपनी चर्चा में बहुत सारे मसले उठाए हैं, ताकि आप यह समझ सकें कि ज्ञान की कमी हमें अलग-अलग तरीकों से फँसा सकती है। लेकिन सच्चाई को जानकर हम आज़ाद हो जाएँगे।

मैंने इन विषयों को इस प्रकार से क्रमबद्ध किया है कि एक विषय का निष्कर्ष अगले विषय को बेहतर रीति से समझने में आपकी मदद करेगा। पहले दो विषय आपको समझ का महत्त्व देखने में सहायता करेंगे। ये आपको यह याद रखने में भी सहायता करेंगे कि आप सब बातों का आकलन करने और व्यक्तिगत रूप से सही फैसले लेने के योग्य और सक्षम हैं। इन दोनों विषयों के बाद मैंने अपने जीवन के उदाहरण पेश किए हैं, ताकि आप देख सकें कि कैसे अन्य लोग मेरे पास आए थे और उन्होंने मेरी मदद की कि मैं अपने दिल, दिमाग और विवेक का इस्तेमाल करूँ और परमेश्वर की ओर से मुझे मिली आज़ादी को फिर से हासिल करूँ, जिसे मौकापरस्त लोगों ने मेरी अज्ञानता के कारण मुझसे छीन लिया था। जैसे दूसरे लोगों ने मेरी मदद की थी वैसे ही मैं आपकी भी मदद करना चाहता हूँ कि आप अपनी आज़ादी हासिल करें, ताकि आप भी दूसरों को आज़ाद होने में उनकी मदद कर सकें। आज़ादी सभी के लिए अच्छी है। हम में से हर एक को आज़ादी का दूत बनना है।

मेरे उदाहरणों के बाद मैंने तुलनात्मक रूप में पाँच विषयों के द्वारा परमेश्वर के बारे में बात की है, ताकि आप परमेश्वर के बारे में किसी भी बात से वंचित न रह जाएँ। आपके धर्म में या किसी भी अन्य धर्म में परमेश्वर के वचन को एक जड़ माना जाता है। आपको पता होना चाहिए कि आप कौन सी जड़ पर खड़े हैं। अपने धर्म की जड़ के बारे में समझ प्राप्त करके आप यह फैसला लेंगे कि आप अपने धर्म में बने रहेंगे या इसे छोड़ देंगे और किसी बेहतर आस्था की खोज करेंगे। हम इस रीति से रचे गए हैं कि हम सर्वोत्तम का चयन करें।

मैं परमेश्वर के बारे में सब तथ्यों को उजागर करूँगा, ताकि आप समझ पाएँ कि परमेश्वर का वजूद है या नहीं है। अगर उसका वजूद है, तो क्या वह खुद को आप से छिपा कर रखता है या आप पर प्रकट करता है। आप यह भी सीखेंगे कि सच्चे और झूठे परमेश्वर को कैसे पहचाना जाए; क्या आपके धर्म का रब आपके लिए एक अच्छा मार्गदर्शक है या फिर आपको सच्चे परमेश्वर की खोज करने की जरूरत है।

शेष विषयों के द्वारा मैंने उन दार्शनिक, सैद्धान्तिक, और बाकी सारी नैतिक असंगति को दर्शाया है जो किसी भी धर्म में परमेश्वर की झूठी छवि के कारण एक समाज में पैदा हो सकती हैं और मनुष्यों के जीवन को अलग-अलग तरह से बर्बाद कर सकती हैं। जब मैं समस्याओं को उजागर करता हूँ, तो उनके सर्वोत्तम समाधान भी पेश करता हूँ। मैंने अपनी ओर से आपकी मदद करने का पूरा प्रयास किया है ताकि

अपनी आस्था में पाई जाने वाली समस्याओं से छुटकारा पाएँ, सारी अस्पष्टताओं पर विजय पाएँ और एक आज़ाद व्यक्ति की तरह जीएँ।

मैं अपने दिल से आपको यह सुझाव देना चाहता हूँ कि आप परमेश्वर की ओर से मिली अपनी पहचान के महत्त्व को जानें, अपने दिल, दिमाग और विवेक को मेरी बातें सुनने के लिए जगाएँ, और मेरी बातों को सुनते समय अपनी किसी भी पूर्वधारणा को अड़चन न बनने दें। मैं आपसे वादा करता हूँ कि मेरी बातों को ध्यान से सुनने से आपको फायदा होगा और साथ ही सारे मुसलमानों तथा गैर-मुसलमानों को भी फायदा होगा।

इस शृंखला में मेरे साथ आगे बढ़ने के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

डैनियल शायेस्तेह
जनवरी 2016

हमें व्यक्तिगत ज्ञान की जरूरत क्यों है?

हम जो विश्वास करते हैं या दूसरे लोग जो विश्वास करते हैं उसके बारे में व्यक्तिगत ज्ञान। सबको यह जानने की जरूरत है कि समझ और तर्क के बिना जीवन सही रीति से काम नहीं करता।

ज्ञान के बिना हम पीछे छूट जाएँगे

ज्ञान हमारे जीवन के लिए प्रकाश के समान है। हमें अपने जीवन में हर क्षेत्र के लिए ज्ञान की जरूरत है; भोजन, कपड़े, घर, कार इत्यादि खरीदने के लिए, जीवनसाथी, मित्र इत्यादि खोजने के लिए, परिवार का पालन-पोषण करने के लिए, आस्थाओं, सिद्धान्तों तथा अन्य बातों को स्वीकार करने या ठुकराने के लिए। कल्पना करें कि अगर हम अपने जीवनसाथी या मित्रों को उनके गुण या व्यक्तित्व को जाने बिना ही आँखें बन्द करके उन्हें चुन लें, तो क्या होगा। इसका नतीजा क्या निकलेगा? इसलिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम उन सिद्धान्तों को खुली आँखों के साथ चुनें जो हमारे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों को शान्तिमय, आनन्दमय और सार्थक बना सकते हैं।

सही आस्था को अपनाने के लिए सही ज्ञान जरूरी है

अगर हम सही रास्ता नहीं जानते, तो हम अपनी मंज़िल पर नहीं पहुँच पाएँगे। इसी तर्क के आधार पर कहा जाए तो अगर हम सही आस्था को नहीं जानते, तो हम आत्मिक तौर पर खो जाएँगे और परमेश्वर के साथ एक नहीं हो पाएँगे।

ज्ञान के बिना जीवन पूरी तरह बेकार है

एक मूर्ख व्यक्ति घर बनाना चाहता था, लेकिन वह यह नहीं जानता था कि घर को मजबूत नींव पर बनाया जाना चाहिए। इसलिए उसने रेत पर घर बना दिया। जब बाढ़ आई तो उसका घर ढह गया। अगर उसके पास ज्ञान होता, तो वह अपना घर इस रीति से बनाता कि वह बाढ़ का सामना कर पाता। इसलिए जैसे जीवित रहने के लिए हवा जरूरी है, वैसे ही सही आस्था पाने के लिए ज्ञान जरूरी है। असली जीवन वह होता है जिसमें खोज जारी रहती है ताकि हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिए सर्वोत्तम विकल्प को चुना जा सके। अगर हम अपने जीवन के लिए सर्वोत्तम आस्था को नहीं चुनते तो हम सर्वोत्तम भविष्य नहीं प्राप्त कर पाएँगे। खोज करने का गुण परमेश्वर ने सभी को दिया है। जाँच-पड़ताल हमारी आस्था का एक जरूरी हिस्सा होनी चाहिए। हमें उस आस्था को नहीं चुनना चाहिए जिसमें व्यक्तिगत जाँच-पड़ताल नहीं करने दी जाती और लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार आस्था चुनने की अनुमति नहीं दी जाती।

फैसला लेने के लिए हमें ज्ञान की जरूरत है

हमें व्यक्तिगत तौर पर, एक परिवार या समुदाय के सदस्य के तौर पर सही फैसले लेने के लिए ज्ञान की जरूरत है। जब हमारे फैसले हमारे व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करते हैं, तब हमारे सम्बन्धों के जरिए वे हमारे परिवार और समाज को भी प्रभावित करेंगे। इसलिए ज्ञान के साथ लिया गया फैसला सभी के लिए अच्छा और उत्पादक होगा। लेकिन ज्ञान के बिना लिया गया फैसला सभी के लिए कम उत्पादक या फिर नुकसानदेह भी हो सकता है, विशेष तौर पर तब जब यह फैसला एक परिवार में, या एक कारोबार में, या फिर एक देश में अगुवों द्वारा लिया जाता है। आप या तो अभी एक अगुवा हैं, या फिर आने वाले समय में कभी न कभी एक अगुवा बनेंगे। इसलिए एक सफल व्यक्तिगत या पारिवारिक जीवन हासिल करने के मकसद से अनिवार्य फैसले लेने के लिए आपके पास पर्याप्त ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए सब बातों में ज्ञान महत्त्वपूर्ण है।

हमारे व्यक्तिगत ज्ञान को बढ़ाने के लिए हमें कौन से कदम उठाने की जरूरत है?

ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैं आपको दस कदम देने जा रहा हूँ जो एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

पहला कदम यह है कि हम अपनी आँखें और अपने कान खोलें

आँखों का काम देखना और कानों का काम सुनना होता है। जो लोग इस साधारण सी बात के लिए भी अपनी आँखें और अपने कान बन्द रखते हैं या दूसरों के देखने तथा सुनने के रास्ते बन्द कर देते हैं, वे खुद को तथा दूसरों को परमेश्वर को नज़रों में और मनुष्यजाति की नज़रों में गिरा देते हैं। सच्चे परमेश्वर की आँखें और कान हमेशा खुले रहते हैं; मनुष्यजाति को भी सच्चा जीवन जीने के लिए इसी सिद्धान्त का पालन करने की जरूरत है। अगर हम सीखने के लिए अपनी आँखों, अपने कानों, दिल और दिमाग का इस्तेमाल करेंगे, तो हमारा जीवन अधिक उत्पादक हो जाएगा। सच्चाई से प्यार करने वाले व्यक्ति के लिए जरूरी है कि वह अन्य आस्थाओं को परखे, उनके सन्देशों को सुने, उनकी एक दूसरे के साथ तथा अपनी आस्था के साथ तुलना करे, अपने लिए सर्वोत्तम को चुने और फिर उसके तर्क को थाम कर अपना जीवन जीए। जो व्यक्ति या आस्था आपको सच्चाई की खोज करने से रोकते हैं, वह सच्चाई से प्यार करने वाले या प्यार को बढ़ावा देने वाले हो ही नहीं सकते।

दूसरा कदम यह है कि हम रूकावटों और समाधानों को खोजें

आपके सीखने में कौन-कौन सी रुकावटें आ रही हैं? क्या यह रुकावट आपकी आस्था है? क्या यह रुकावट आप खुद हैं? क्या यह रुकावट आपका परिवार है? क्या ये रुकावटें आपके समाज में

पाई जाने वाली सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ हैं? क्या यह रुकावटें आपकी सरकार या आपके अगुवे हैं?

ये रुकावटें चाहे कुछ भी हों, ये आपके खुद के, आपके परिवार के, आपके देश के और यहाँ तक कि सारे संसार के विरुद्ध हैं। आपको इन्हें पहचानना होगा और उनके प्रभाव से खुद को बचाने के लिए सबसे बढ़िया रास्ता चुनना होगा।

तीसरा कदम यह है कि हम अपने विवेक से काम लें

आपका विवेक एक ऐसा अद्‌भुत स्रोत है जो सच्चाई की पुष्टि करने और सच्चाई को बोलने में आपका साथ देता है। आपको अपने विवेक की आवाज़ को न तो अनसुना करना चाहिए और न ही उसे दबाना चाहिए। जिस व्यक्ति के विवेक की आवाज़ नहीं आती, वह व्यक्ति आत्मिक तौर पर मरा हुआ है। अगर आपका विवेक आज़ाद है, तो आप दूसरे सही लोगों से आने वाले सही सुधार को कबूल करेंगे, फिर चाहे आप उस व्यक्ति को पसन्द न भी करते हों। जो लोग दूसरों के अधिकार को अनदेखा करते आ रहे हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जो अपने विवेक की आवाज़ को अनसुना करते आ रहे हैं। जो लोग जीवन के लिए सर्वोत्तम सुझाव और तरीके को ठुकराते आ रहे हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जो अपने खुद के विवेक के महत्त्व और विश्वसनीयता को ठुकराते आ रहे हैं। जो व्यक्ति अपने खुद के विवेक को अनदेखा करता है, वह दूसरों के अधिकारों का सम्मान करने के काबिल नहीं होता। आज़ाद विवेक हमें यह अनुमति नहीं देता कि

हम दूसरों के अधिकारों और आज़ादी को तुच्छ जानें, फिर चाहे वे हमारे विरोधी या शत्रु ही क्यों न हों। आज़ाद विवेक हमें सिखाता है कि एक राजा और एक भिखारी में, एक अगुवे और एक अनुयायी में, एक स्वामी और एक दास में, एक पति और एक पत्नी में कोई भिन्नता नहीं होती; सब के सब मनुष्य हैं और सभी को आज़ादी का बराबर अधिकार है। इसलिए आपको उन सब बातों से, यहाँ तक कि अपनी आस्था से भी दूर रहने की जरूरत है, जो आपके विवेक को सीमित कर देती हैं।

चौथा कदम यह है कि हमें सर्वोत्तम के लिए प्यास जगाकर उसे खोजना है

हम पीने के लिए पानी तब तक नहीं लेंगे, जब तक कि हमें प्यास न लगी हो। इसी प्रकार सर्वोत्तम सिद्धान्तों का ज्ञान भी हम तब तक नहीं खोजेंगे जब तक कि हम उसके लिए प्यास न जगाएँ और खुद पहल न करें।

क्या आप जीवन जीने के सर्वोत्तम और सर्वाधिक फलदायी तरीके के लिए प्यासे हैं? अगर हाँ, तो फिर आपको इसके लिए प्यास जगाकर इसकी खोज करनी होगी। समझ और खोज की यही प्यास ही है जो सच्चाई को हम पर उजागर करेगी और इस तरह झूठी आस्था से हमें आज़ाद करेगी।

पाँचवाँ कदम यह है कि हमें अपनी आज़ादी को व्यक्तिगत रीति से अभ्यास में लाना है

मनुष्यों को आज़ादी के लिए सृजा गया है, वरना वे जीवन के हर एक क्षेत्र में पीछे रह जाएँगे। सच्चाई की खोज करने के लिए हमें व्यक्तिगत आज़ादी और अधिकार की जरूरत है। क्योंकि यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम अपने जीवन में सच्चाई के अनुसार जीएँ और सच्चाई को प्रकट करें, इसलिए हमें अपने ही अधिकार से सच्चाई की खोज करने की भी जरूरत है। कहने का अर्थ यह है कि अगर हमें सच्चाई को खोजने का अधिकार नहीं मिला है, तो सच्चाई के हमारे लिए कोई मायने नहीं होंगे। अधिकार और आज़ादी के बिना कोई भी व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता के साथ सच्चाई की खोज नहीं कर पाएगा। वहीं दूसरी ओर, अगर आप अपनी पूरी क्षमता के साथ सच्चाई की खोज करने के योग्य नहीं हैं, तो आप पूरी सच्चाई कभी नहीं जान पाएँगे। इसी कारण, अगर आपके समाज में, यहाँ तक कि आपकी आस्था में भी ऐसा कुछ है जो सच्चाई को खोजने के लिए परमेश्वर की ओर से आपको मिले अधिकार और आज़ादी को सीमित कर रहा है, तो आपको उस ज़ंजीर को तोड़ने और खुद को आज़ाद करने का सबसे बढ़िया तरीका खोजना होगा। सच्चाई की खोज के लिए आपको मिला अधिकार ही आपके जीवन में सटीक ज्ञान लाएगा और वह ज्ञान आपके लिए सफल जीवन प्राप्त करने का रास्ता खोलेगा।

छठा कदम यह है कि हमें उस आस्था का पालन करने की जरूरत है जिसमें आज़ादी की छूट दी गई है

आपके माता-पिता या पुरखे चाहे कितने भी बढ़िया लोग रहे हों या हैं, वे भी आपको ऐसी आस्था दे सकते हैं, जो आपकी सफलता के रास्ते में रुकावट बन सकती है। आपको उस आस्था के स्थान पर ऐसी आस्था अपनानी होगी जो आपके लिए तथा आपके समाज के लिए सफलता का दरवाज़ा खोलती है। आप अपने धर्म या अपनी आस्था का पालन करने के लिए चाहे कितने ही बाध्य क्यों न हों, अगर यह आपके अधिकार और आपकी आज़ादी के खिलाफ है, तो आपको उस धर्म या आस्था के स्थान पर किसी उत्तम आस्था को अपना लेना चाहिए। विकासशील देशों में होने वाले सारे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक सुधारों का श्रेय उन पुरुषों और स्त्रियों के साहस को दिया जाना चाहिए, जिन्होंने उस आस्था के सिद्धान्तों का पालन करने का साहस किया, जिसमें आज़ादी की छूट दी गई थी। उन्होंने न केवल खुद तरक्की की, बल्कि दूसरों की तरक्की के लिए दरवाज़े भी खोले। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने उस आस्था का पालन किया, जिसने उन्हें सिखाया कि दूसरों की तरक्की में ही उनकी खुद की तरक्की है। इसलिए मैं एक बार फिर कहना चाहूँगा कि अगर आपकी आस्था में आज़ादी की छूट नहीं है, तो आप इसे छोड़ दें और उस आस्था को अपनाएँ जिसमें आज़ादी की छूट है।

मैं आपको ईमानदारी से यह बताना चाहता हूँ कि अगर आप ऐसी आस्था का पालन करते हैं, जिसमें आपकी आज़ादी और दूसरों की आज़ादी का सम्मान किया जाता है, तो आप बन्धनों से भरी संस्कृति की वेदनाओं से छुटकारा प्राप्त कर लेंगे। सच्चाई आपको आज़ाद कर देगी।

सातवाँ कदम यह है कि हमें साहसी होना है

हमें अपनी तरक्की के लिए खुद पहल करनी होगी। अगर मैं खुद अपनी तरक्की की चाहत रखता हूँ, तो फिर मुझे अपनी तरक्की के लिए जरूरी कदम भी खुद ही उठाने होंगे। सच्चाई के लिए व्यक्तिगत चाहत हमें बल प्रदान करती है और इस प्रकार हमें बाधाओं पर विजयी बनाती है। साहसी लोग चाहे कितने भी बाहरी दबाव से घिरे हों, वे अपने लिए या अपने परिवार के सदस्यों के लिए आगे बढ़ने का रास्ता खोज ही लेते हैं। साहसी लोग अपनी बन्द मान्यताओं के चक्र से बाहर कदम रखने और सर्वोत्तम सिद्धान्त खोजने के योग्य होते हैं। साहसी बनें।

आठवाँ कदम यह है कि हमें कीमत चुकानी होगी

हमें ज्ञान प्राप्त करने और अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए कीमत चुकानी होगी। हमें अपने समय और शायद अपने धन का निवेश करना होगा। कभी-कभी ज्ञान प्राप्त करने की कीमत हमारी उम्मीद से ज्यादा भी हो सकती है। हमें उसके लिए भी तैयार रहना होगा। हमें छोटी सोच वाले और अन्धविश्वासी लोगों या ऐसे तानाशाहों के

हमलों के लिए तैयार रहना होगा, जो दूसरों की अज्ञानता की नींव पर अपने स्वार्थ के महल खड़े करते हैं। ये सारे बलिदान हमारे खुद के फायदे के लिए और हमारे परिवार, हमारे समाज और सारे संसार के फायदे के लिए हैं।

नौवाँ कदम यह है कि हमें विजय को अपना लक्ष्य बनाना है

ऐसी कोई भी बाधा नहीं है जिसका समाधान न हो। आपको अपने जीवन की हर एक ऐसी बाधा पर, यहाँ तक कि अपनी आस्था पर भी विजयी होना होगा, जो आपको अज्ञानता में रखना चाहती है। जीवन की बाधाओं पर विजयी होने का सबसे अधिक व्यावहारिक तरीका यह है कि सर्वोत्तम आस्था या जीवन जीने के तरीके को खोजा जाए और उसे अपना बना लिया जाए। जी हाँ, आपको सर्वोत्तम आस्था को खोजना होगा। मनुष्यों को इस प्रकार सृजा गया है कि वे अपने लिए खुद सर्वोत्तम को, बाधाओं पर उन्हें विजयी करने वाली सर्वोत्तम आस्था को खोज सकते और प्राप्त कर सकते हैं। अगर आप सारी बाधाओं पर विजय को अपना लक्ष्य बना लें, तो आप इसे हासिल कर पाएँगे।

दसवाँ कदम यह है कि हमें अपने समाज को जगाना होगा

केवल और केवल सच्चाई का हमारा ज्ञान और अधिक से अधिक समझ प्राप्त करने की हमारी लगन ही है जो हमारे समाज को जगा सकती है। हर सम्भव तरीके से हमें सच्चाई के प्रकाश के तौर पर चमकना है, हमारे अनुभवों से दूसरों के लिए सीखने का रास्ता तैयार

करना है और दूसरों के मध्य चमकना है। अगर आप अकेले हैं, तो आपको ऐसे दोस्त बनाने के लिए मेहनत करनी होगी, जो खुद भी सच्चाई की खोज में हैं, और आपको उनके साथ अपनी दोस्ती बढ़ानी होगी ताकि ज्यादा से ज्यादा लोगों को जगाया और आज़ाद किया जा सके। इसके साथ ही हमें उन लोगों के साथ सम्बन्ध गहरे करने होंगे, जिनका लक्ष्य हमारे जैसा ही है, ताकि सब लोग आज़ादी प्राप्त कर सकें।

हमारी जागरूकता हमारे चयनों पर निर्भर करती है

जब तक कि हम खुद बदलने का फैसला न करें, तब तक कोई भी व्यक्ति हमें न तो जबरदस्ती बदल सकता है और न ही हमारे अन्दर जागरूकता ला सकता है। चाहे सारे संसार की सेनाएँ एकसाथ जमा हो जाएँ और हमें सच्चाई के लिए जबरन जगाने का प्रयास करें, तब भी हम सच्ची जागरूकता तब तक प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि इसे हासिल करने की एक सच्ची चाहत हमारे अन्दर न आए। चाहे संसार का सबसे अधिक प्यारा और दयालु व्यक्ति हमारी सरकार का नेता बन जाए, वह भी तब तक हमें सच्चाई के पास नहीं ले जा पाएगा, जब तक कि हम अपने दिलों पर लगे ताले न तोड़ें और उस पर ध्यान न दें। जागना और बदलना हम में से हर एक व्यक्ति की खुद की जिम्मेदारी है। बदलने का फैसला हमें खुद करना होगा। आइए, खुद से आरम्भ करें, सच्चे जीवन में कदम रखें और नया जीवन प्राप्त करें। अभ्यास मायने रखता है।

निष्कर्ष

अगर आप परमेश्वर पर विश्वास करते हैं, तो आपको यह जानने की जरूरत है कि सच्चा परमेश्वर चाहता है कि लोग ज्ञान प्राप्त करें। परमेश्वर सर्वज्ञानी है और जानता है कि सच्चाई क्या है और झूठ क्या है, वह जानता है कि सर्वोत्तम क्या है और बदतर क्या है। इसी कारण परमेश्वर चाहता है कि लोग सच्चाई और झूठ में अन्तर जानें, और सच्चाई को चुनें।

परमेश्वर खुद आज़ाद है और चाहता है कि सब लोग भी आज़ाद रहें। परमेश्वर सिद्ध है और चाहता है कि हम सिद्धता में निवास करें। इसलिए जो भी आस्था हमारी आज़ादी, हमारे ज्ञान या हमारी तरक्की को सीमित करती है, वह परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकती।

सबसे पहले जिस व्यक्ति को आज़ाद होना है, वह आप खुद हैं

सबसे पहले जिस व्यक्ति को आज़ाद करने वाली आस्था की ओर दौड़ने और आज़ादी प्राप्त करने की जरूरत है, वह आप खुद हैं। कृपया ऐसा न कहें, "आज़ादी में जीने में तो कोई भी व्यक्ति दिलचस्पी नहीं ले रहा है, तो फिर मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ?" आपको आज़ादी के पास इस तरह आना और यह कहना होगा: "अगर आज़ादी ही सर्वोत्तम है, तो क्या फिर इससे दूर रहने का कोई कारण मेरे पास है?" तब आपका जवाब होगा, "नहीं, मुझे आज़ादी में जीना होगा। मुझे ऐसी आस्था को अपनाना होगा जो मेरी आज़ादी

को महत्त्व देती है और मेरे लिए ज्ञान तथा सच्चाई का दरवाज़ा खोलती है।"

आगे बढ़ते रहने में सुधार सबसे बड़ा प्रेरक है

अगर हम खुद बदलने और सुधार लाने का फैसला कर लें, तो हमारे परिवारों और मित्रों के लिए बदलाव और सुधार करने का दरवाज़ा खुल जाएगा। हमारे कारण वे भी दूसरों के लिए ज्ञान और सुधार प्राप्त करने में मददगार हाथ और पाँव बन जाएँगे। जब हम अपने आस-पास के लोगों के लिए बदलाव और सुधार का माध्यम बन जाते हैं, तो हम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उनके साथ मिलकर आगे बढ़ने लगते हैं। इसीलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हम मेहनत करें ताकि हमारे समाज के लोग यह समझ जाएँ कि जाँच-पड़ताल करने, लिखने, बोलने और आस्था अपनाने की आज़ादी सब का बराबर अधिकार है, अपने अधिकारों के लिए खड़े हों और जरूरत पड़ने पर लोगों के अधिकारों के लिए कीमत भी चुकाएँ। हमारे समाज के हर एक बच्चे को यह जानने का अधिकार है कि हम अत्याचारी आस्था से दूर रहने और आज़ादी, दया और शान्ति फैलाने वाली आस्था को अपनाने के लिए बाध्य क्यों हैं।

एक आज़ाद समाज में तानाशाही का कोई स्थान नहीं होगा

जिस समाज ने ज्ञान और आज़ादी प्राप्त कर ली है, उसमें तानाशाही का कोई स्थान नहीं होगा। यही कारण है कि तानाशाह तुलनात्मक

ज्ञान प्राप्त करने के रास्ते बन्द कर देते हैं, ताकि वे सब पर शासन कर सकें। तानाशाही और ज्ञान एकसाथ एक स्थान में नहीं रह सकते।

सच्चाई का ज्ञान हमारे परिवार और समाज में जीवन और सम्बन्धों को फलदायी और सुन्दर बना देता है।

चिन्तन का समय 1

1. कुछ कारण दें कि क्यों लोगों को उनकी अपनी और दूसरों की आस्था के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से रोका जाता है।
2. क्या ऐसे कोई तरीके हैं जिनके द्वारा हम लोगों को प्रोत्साहित कर सकते हैं कि वे अपने मनों को खोलें और अपनी आस्था तथा दूसरों की आस्था में तुलना करें और सर्वोत्तम को चुनें? ये तरीके क्या हैं?
3. क्या हममें सच्चाई के ज्ञान की कमी हमारे जीवन में परमेश्वर के वजूद पर प्रश्न-चिह्न लगाती है? कैसे?
4. समझ प्राप्त करने के क्या फायदे हैं?
5. अगर समझ अच्छी है, तो क्या इसे अनदेखा करने का कोई कारण है?

अपनी संस्कृति में सम्वर्धन की जरूरत – क्यों? कैसे?

संस्कृति क्या है और इसे सम्वर्धन की जरूरत कहाँ पड़ती है?

संस्कृति में आस्था, सिद्धान्त, भाषा, परम्पराएँ, लोकोक्तियाँ, आचार-संहिता, व्यवहार, संगीत इत्यादि शामिल होते हैं; संक्षेप में कहा जाए तो यह एक देश की पहचान को बनाती है।

इस तरह आप देख सकते हैं कि यह संस्कृति के घटक ही हैं जो किसी संस्कृति को दागी या बेदाग बनाते हैं। इसलिए सम्वर्धन भी इन्हीं घटकों में होना चाहिए ताकि एक संस्कृति को गुणवान संस्कृति बनाया जा सके। एक गुणवान संस्कृति हासिल करने का मतलब यह नहीं है कि आपको अपनी मौजूदा संस्कृति को छोड़ना पड़ेगा, बल्कि आपको उन घटकों को या तो बदलना पड़ेगा या उनमें सम्वर्धन करना पड़ेगा, जो घटक दागी हो गए हैं। इस कारण जीवन के सर्वोत्तम सिद्धान्तों के लिए आपको अपना हृदय खोलना पड़ेगा, फिर चाहे वे उन लोगों से ही क्यों न आ रहें हों जिन्हें आप पसन्द नहीं करते। क्योंकि अच्छे सिद्धान्त हमेशा अच्छे होते हैं, इसलिए वे चाहे कहीं से भी आएँ, वे सभी के लिए फायदेमन्द होते हैं। हमें अपनी संस्कृति के दागी घटकों के स्थान पर खुशी-खुशी इन अच्छे सिद्धान्तों को अपना लेना चाहिए, ताकि हमारी संस्कृति और भी सुन्दर बन जाए।

क्या आपने अपनी संस्कृति के बारे में गहराई से विचार किया है? मैं उन कुछ समस्याओं को आपके सामने रखना चाहता हूँ जो एक संस्कृति के घटकों को दागी बना देती हैं। हो सकता है कि आपकी संस्कृति भी दागी हो और उसमें सुधार की जरूरत हो।

एक दागी संस्कृति में दूसरों के जीवन में दखलअंदाजी करने की समस्या

क्या दूसरों के जीवन में दखलअंदाजी करना और उनके अधिकार को अनदेखा करना इस्लामिक संस्कृति में रोजाना का काम नहीं है? इस्लाम की सत्तावादी प्रकृति के कारण आपके संयुक्त परिवार में जो-जो व्यक्ति उम्र में आपसे बड़ा है, वह आपके जीवन में दखलअंदाजी करता रहता है, फिर चाहे आप कितने ही परिपक्व क्यों न हों और आपका खुद का परिवार भी क्यों न हो। सरकार और कभी-कभी तो लोग भी आपकी आज़ादी का सम्मान नहीं करते। अगर आपकी सोच और आपका विश्वास आपके परिवार के सदस्यों और संयुक्त परिवार के सदस्यों के जैसा नहीं है, तो वे आपके साथ कठोर व्यवहार करते हैं।

इस तरह की अनुचित दखलअंदाजी परिवार के सदस्यों में और समाज में असुरक्षा की भावना लाती है और सुधार के रास्ते में हर तरह की रुकावट खड़ी करती है। क्यों? क्योंकि लोग अपने जीवन में नयापन लाने से बचते हैं, ताकि अपने रिश्तेदारों और अगुवों को खुश रखें और किसी भी तरह की बहस से बचे रहें। रिश्तों में आने वाली

कड़वाहट के कारण समाज नई और अच्छी बातों के लिए बन्द हो जाता है।

आलोचकों का निरादर

जिस संस्कृति में आलोचना को बर्दाश्त नहीं किया जाता, उसमें जीवन बहुत कठिन हो जाता है। अनेक लोग अपने समाज में आज़ाद विचार रखने वाले सदस्यों का आदर नहीं करते क्योंकि वे अपने अगुवों से डरते हैं। उनसे उम्मीद की जाती है कि वे आलोचकों या विरोधियों से दूर रहें। अगर ये आलोचक स्त्रियाँ या लड़कियाँ हों, तो ये प्रतिक्रियाएँ हिंसक भी हो सकती हैं। राजनीतिक अगुवों की आलोचना की कीमत बहुत बड़ी होती है, और किसी उच्च अधिकारी की आलोचना का भी भारी नुकसान झेलना पड़ सकता है।

इस तरह की अत्याचारी संस्कृति में लोग नाइंसाफी देखकर भी चुप रहते हैं और अधिक से अधिक नाइंसाफी का शिकार होते चले जाते हैं। ऐसा होने पर नाइंसाफी रचनात्मकता को समाप्त कर देती है, उदासीनता, अत्याचार, और शत्रुता को बढ़ावा देती है, तथा प्रगति के रास्ते को बन्द कर देती है।

मुझे ईमानदारी से बताएँ, क्या आपके समाज में भी इस तरह के अन्धकार भरे संघर्ष पाए जाते हैं? अगर हाँ, तो फिर आपको अपनी

संस्कृति से बाहर निकलकर प्रकाश को खोजना होगा और अपनी संस्कृति में सुधार लाने की जिम्मेदारी को निभाना होगा।

अन्दर वालों का डर

हमने बहुत बार, बार-बार मुसलमानों को गुप-चुप रीति से सोचते और काम करते देखा है। वे अपने फैसलों के बारे में अपने परिवार वालों या साथी मुसलमानों को बताना नहीं चाहते। वे बाहर वालों पर ज्यादा भरोसा करते हैं, क्योंकि वे चयन करने की आज़ादी का सम्मान करते हैं, लेकिन वे अपने लोगों पर भरोसा करने से झिझकते हैं, क्योंकि उनमें आज़ादी को लेकर कोई सम्मान नहीं है।

यह डर उस असाधारण दखलअंदाजी के कारण आता है जो मुसलमानों में आम तौर पर ही पाई जाती है और जो दूसरों पर किए जाने वाले भरोसे और आपसी तालमेल को बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचाती है। कोई भी समाज डर, भरोसे तथा तालमेल की कमी में तरक्की नहीं कर सकता।

क्या आपके समाज में भी इस तरह के डर का माहौल पाया जाता है? आपको इस तरह के डर की ज़ंजीरों को तोड़ना होगा और आप किसी को भी यह मौका न दें कि वह आपको तथा आपकी गरिमा को नीचा दिखाए। मेरी इस शिक्षा का उद्देश्य आपकी सहायता करना है कि आप अपनी गरिमा को सुरक्षित रखें और दूसरों को भी ऐसा ही करना सिखाएँ।

संस्कृति के गहरे दागों को छिपाना

कुछ संस्कृतियों में नाजायज बातों को या तो जायज ठहराया जाता है या उन्हें छिपाया जाता है या फिर उनके वजूद से ही इनकार कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, इस्लाम में मुसलमान पुरुषों को यह धार्मिक अनुमति दी गई है कि वे अपनी पत्नियों की पिटाई कर सकते हैं, परन्तु मुसलमान लोग बाहर वालों के सामने इस बात को कबूल करने से इनकार करते हैं। या फिर इस्लाम मुसलमानों को यह अनुमति देता है कि वे कुछ खास हालात में झूठ बोल सकते हैं, जबकि वे बाहर वालों के सामने इस बात को कबूल करने से इनकार करते हैं।

अगर इस तरह के अत्याचारी सिद्धान्तों को उजागर न किया जाए या उन्हें चुनौती न दी जाए, तो वे संस्कृति में बने रहते हैं और उसे बहुत भारी नुकसान पहुँचाते रहते हैं। अपनी संस्कृति में सम्वर्धन करने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि अपनी संस्कृति के गहरे दागों को उजागर कर दिया जाए, ताकि बाहर वाले लोग इन्हें देख सकें और आपके लिए एक बेहतर विकल्प का सुझाव दे सकें।

बढ़ा-चढ़ा कर बोलना और सच्चाई को तोड़-मरोड़ कर पेश करना

क्या आपकी संस्कृति में किसी दिखावे पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है, हार को जीत के तौर पर पेश किया जाता है या छोटी-छोटी सफलताओं को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जाता है? क्या आपने इस

अन्धकार से दूर रहने की कोशिश की है? अगर नहीं, तो फिर आपको किसी अच्छी संस्कृति में से अच्छे सिद्धान्तों को अपनाने की, अपनी संस्कृति के इन क्षेत्रों में नयापन लाने की और इस तरह के अन्धकार से खुद को और अपने परिवार को आज़ाद करने की जरूरत है।

आपको बचपन से ही सिखाया गया है कि आप बुरी बातों को अपने अन्दर छिपाए रखकर भी खुद को अच्छा पेश कर सकते हैं। यह शिक्षा ईमानदारी की शिक्षा नहीं है। अगर आप अन्धकार को अपने अन्दर छिपाए रखेंगे, तो उस अन्धकार का असर आपके सारे जीवन पर पड़ेगा, और आपकी खुशी स्थाई नहीं रह पाएगी, बल्कि यह केवल दिखावे की खुशी बन कर रह जाएगी। आपको अपनी ज़ुबान को सुधारने और अपनी संस्कृति में से ऐसे हानिकारक अन्धकार को मिटाने की जरूरत है।

पक्षपात

कुछ लोग पक्षपात को अपने अन्दर छिपा कर रखते हैं, जो समाज के लिए बहुत नुकसानदेह होता है। पक्षपात आगे चलकर अराजकता, भेदभाव और गड़बड़ी को जन्म देता है। पक्षपात किसी भी समाज की संस्कृति में तब ज्यादा बर्बादी लाता है, जब किसी अनुभवी व्यक्ति का स्थान किसी अनाड़ी को दे दिया जाता है। पक्षपात ऐसे लोगों को अगुवाई में लाने के लिए रास्ता खोल देता है, जो अगुवाई के लिए पूरी तरह से अयोग्य होते हैं, जिससे उस संस्कृति की दशा और भी बदतर हो जाती है।

अगर आपकी आस्था में पक्षपात को बढ़ावा दिया जाता है, तो आपको ऐसी आस्था को अपनाना होगा जो इस तरह के अन्धकार को ठुकराती है और बेहतर जीवन के लिए रास्ता खोलती है।

गैरजिम्मेदारी पैदा करना

कुछ आस्थाओं में लोगों को उकसाया जाता है कि वे खुद मेहनत करके कमाई करने की बजाय दूसरों की दौलत का सहारा लें। ऐसी ही एक आस्था इस्लाम है जिसमें इसके अनुयायियों को सिखाया जाता है कि वे गैर-मुसलमानों को लूटें। जिस आस्था में दूसरों का निरादर किया जाता है, उसकी संस्कृति अच्छी हो ही नहीं सकती। इसके स्थान पर आपको ऐसी आस्था अपनानी होगी जो मेहनत करने वाले लोगों की सराहना करती है और सबके अधिकारों का सम्मान करती है, फिर चाहे वे बेगाने ही क्यों न हों। एक अच्छी संस्कृति या आस्था अपने लोगों को सिखाती है कि वे आलस छोड़कर जिम्मेदार लोग बनें, ताकि वे अपने खुद के पाँव पर खड़े हों और दूसरों का माल हड़पने की बजाय उत्पादक नागरिक बनें।

कट्टरपंथी राष्ट्रवादी

कट्टरपंथी राष्ट्रवादी व्यक्ति वह होता है, जो ऐसी बातें बोलता है: "हमारे लोग दूसरों से बेहतर हैं। हमें बदलने की जरूरत नहीं है। हम केवल उन्हीं को सुनेंगे जिनकी सोच हमारे जैसी है। बेगाने तो बेगाने होते हैं। हमें उन्हें अपने अधिकार के नीचे रखना है।"

ऐसा राष्ट्रवाद भला नहीं होता। भला राष्ट्रवाद वह होता है जिसमें न केवल अपनी खुद की संस्कृति को महत्त्व और बढ़ावा दिया जाता है, बल्कि जिसमें दूसरों की संस्कृति को जानने के लिए खुलापन और जिज्ञासा भी होते हैं। जो राष्ट्रवाद लोगों में गुटबन्दी करके उन्हें बाँट देता है, वह एक गतिहीन संस्कृति बन जाता है।

संस्कृति में अनिश्चितता

कुछ संस्कृतियों में जीवन के अनेक पहलुओं को लेकर अनिश्चितता पाई जाती है। इस अनिश्चितता का सबसे बड़ा कारण वहाँ की आधिकारिक आस्था होती है जो भविष्य के बारे में आश्वासन लाने की बजाय अस्पष्टता को बढ़ावा देती है। इस प्रकार के सन्देह जीवन के हर एक भाग में, जैसे कि सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों में घुस जाते हैं और लोगों में भरोसे की कमी पैदा कर सकते हैं।

अनिश्चितता एक आत्मिक अन्धकार है और अगर इस पर काबू न पाया जाए तो यह भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्धकार ले आता है। जिस संस्कृति में अनिश्चितता पाई जाती है, उसमें पुरखों की बनाई हुई गलत परम्पराओं को तोड़ने का साहस कम होता है। आलोचना को बर्दाश्त नहीं किया जाता और नयापन लाने की चाहत दर्शाना बहुत महंगा साबित हो सकता है। सभी को मजबूर किया जाता है कि वे अपनी आस्था और अपने अधिकारियों की तारीफ करें और सब गलत निर्देशों या कामों के बारे में चुप रहें। आम तौर पर कहा जाए

तो लोगों को मजबूर किया जाता है कि वे वह सब कबूल कर लें जो उनके अगुवे उन पर थोपते हैं।

इस अनिश्चितता और अस्पष्टता का एक अच्छा उदाहरण इस्लामिक देशों में देखा जा सकता है, जहाँ पर एक ही समूह में अगुवे अपने साथियों पर भरोसा नहीं करते। कभी-कभी तो लोगों को धर्म या राजनीति के नाम पर उनके अपने परिवार या किसी समूह के सदस्यों की ओर से बेइज्जत किया जाता है, कैद में डाल दिया जाता है, या फिर उन्हें मार भी डाला जाता है।

मुहम्मद के उत्तराधिकारियों में 1400 वर्ष पहले सुन्नी और शिया समूहों के बीच इसी प्रकार का तनाव पैदा हुआ था। यह उसकी मौत के बाद आरम्भ हुआ था और आज तक जारी है।

आप देख सकते हैं कि कैसे एक आस्था में पाई जाने वाली अनिश्चितता, सम्बन्धों में अनिश्चितता पैदा कर देती है, जिसके कारण धोखाधड़ी भरी चालबाज़ियों और स्वार्थी संस्कृति का जन्म होता है। ईरान के लोगों में एक कहावत इस प्रकार है: 'यहाँ तक कि एक कुत्ता भी अपने मालिक को नहीं पहचानता,' जो इसी अनिश्चितता की ओर किया जाने वाला इशारा है। एक कुत्ता अपने मालिक के लिए जो वफादारी रखता है, उसे तोड़ना बहुत मुश्किल होता है। लेकिन अगर मालिक ही अनिश्चितता से भरा हुआ है, तो फिर तो उसका कुत्ता भी खो जाता है और भटक जाता है।

कुछ संस्कृतियों में आपसी भरोसे की बहुत अधिक कमी पाई जाती है और इसके साथ बहुत सारी शर्तें जुड़ी होती हैं। आपसी तालमेल में कोई गहराई नहीं पाई जाती बल्कि यह केवल दिखावे के लिए ही होता है और केवल दिखावटी प्रेम पर निर्भर होता है। हालाँकि लोग बेहतर सम्बन्ध चाहते तो हैं, लेकिन उनकी संस्कृति में पाई जाने वाली अनिश्चितता के कारण ऐसी बहुत सारी अदृश्य दीवारें मौजूद होती हैं जो उनमें आपसी प्रेम को आने से रोकती हैं। आपसी प्रेम की इसी कमी के कारण दूसरों के अधिकारों को कम महत्त्व दिया जाता है और उन्हें आसानी से अनदेखा कर दिया जाता है। दोस्ती आम तौर पर अस्थायी होती है और किसी छोटी या बड़ी बात को लेकर तुरन्त ही नफरत में बदल जाती है।

क्या आपकी संस्कृति में ऊपर बताई गई समस्याएँ पाई जाती हैं?

अगर हाँ, तो इसे बदलने में अपनी जिम्मेदारी निभाएँ। कैसे?

आपको अपने खुद के सन्दर्भ में आरम्भ करना होगा

उन बातों से दूर रहें जो आपके जीवन और आपकी संस्कृति को भ्रष्ट करती हैं। अगर आपकी आस्था या धर्म ने आपकी संस्कृति पर नकारात्मक प्रभाव डाला है, तो इस दिशा में कदम उठाना आरम्भ करें; पता करें कि ऐसा क्यों हुआ है और ऐसी आस्था की खोज करें जो आज़ादी और शान्ति को बढ़ावा देती है और साथ ही दोस्तों और

बेगानों का एक बराबर सम्मान करती है। इस दिशा में कदम न उठाना आपके समाज के लिए बहुत नुकसानदेह हो सकता है।

बुरी बातों का प्रभाव हमेशा नुकसानदेह होता है

संसार का कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति बुरी बातों को लाभकारी नहीं बताएगा। किसी भी संस्कृति के नुकसानदेह पहलू बहुत अधिक नुकसान करते हैं। ऐसे बुरे कामों से दूर रहना आप में से हर एक व्यक्ति की व्यक्तिगत और सामाजिक जिम्मेदारी है। अन्य संस्कृतियों से अच्छी बातों को अपनाएँ और उन्हें अपने जीवन में लागू करें तथा नयापन प्राप्त करें। आपका नया जीवन आपकी संस्कृति और आपके समाज के लिए प्रकाश बन जाएगा। दूसरे अनेक लोग भी आपसे सीखेंगे, आपके जैसा ही करेंगे और आपकी संस्कृति पर सकारात्मक प्रभाव डालेंगे।

अपनी संस्कृति में अच्छी बातों को शामिल करने की अपनी जिम्मेदारी से कभी भी मुँह न मोड़ें

मैं आपको उदासीनता का एक उदाहरण देना चाहता हूँ ताकि आप यह देख सकें कि यह आपके लिए और दूसरों के लिए कितनी खतरनाक स्थिति पैदा कर सकती है।

मार्टिन नीमोलर[1] नाम के एक जर्मन पासबान ने बताया कि उदासीनता ने कैसे उसके जीवन और दूसरों के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाला। उसने बताया कि जब हिटलर साम्यवादियों की हत्याएँ करवा रहा था, तो इस पासबान ने सोचा कि वह खुद तो साम्यवादी नहीं है, इसलिए उसे इन साम्यवादियों की रक्षा के लिए कदम उठाने की जरूरत नहीं है। जब हिटलर ने यहूदियों और अन्य लोगों की हत्याएँ करवानी आरम्भ की तो तब भी वह यही बहाना बनाकर चुप हो गया। बाहर वालों की हत्या करने के बाद अब हिटलर ने उन अन्दर वालों का भी खात्मा करना आरम्भ कर दिया जो उसका विरोध कर रहे थे। उस समय के दौरान मार्टिन को भी जेल में डाल दिया गया। उसने कहा कि उसे हिटलर से बचाने के लिए एक भी साहसी व्यक्ति नहीं बचा था। अगर उसने और उसके जैसे अन्य लोगों ने उन लोगों की रक्षा के लिए कदम उठाए होते जिन्हें उनसे पहले घात कर दिया गया था, तो आज बहुत सारे लोग उसकी अपनी रक्षा के लिए खड़े हो गए होते।

उदासीन होकर चुप्पी साधे रहना एक सांस्कृतिक अन्धकार है जो एक समाज में बुराई को फैलने का ऐसा मौका दे देता है जिससे जल्दी ही सारा समाज उसका शिकार हो जाता है। इसी कारण आपको अपनी संस्कृति का सम्वर्धन करने की जरूरत है। संस्कृति गतिहीन नहीं होती, बल्कि यह गतिशील और परिवर्तनशील होती है। हम अन्धकार को मिटाने वाले गुणकारी सिद्धान्तों को अपनाने के द्वारा

[1] https://en.wikipedia.org/wiki/First_they_came_...

अपनी संस्कृति में सुधार ला सकते हैं। यह जिम्मेदारी आपके कन्धों पर है कि आप अपनी व्यक्तिगत और राष्ट्रीय संस्कृति का सम्वर्धन करें।

चिन्तन का समय 2

1. भिन्न-भिन्न आस्थाओं और विरोधी सिद्धान्तों से भरे इस संसार में शान्ति और आपसी तालमेल लाने का सर्वोत्तम तरीका क्या है?
2. हमारी संस्कृति का सम्वर्धन मायने क्यों रखता है?
3. हम अपनी संस्कृति का सम्वर्धन कहाँ से आरम्भ करें?
4. क्या साहस, सांस्कृतिक सम्वर्धन और प्रगति में कोई परस्पर सम्बन्ध है?
5. क्या आपकी संस्कृति के सम्वर्धन में आपकी कोई जिम्मेदारी बनती है?

डैनियल के जीवन में से व्यक्तिगत बदलाव के उदाहरण

मेरे साथ कुछ अद्‌भुत अनुभव हुए हैं जो मैं आपको बताना चाहता हूँ। मैंने बातचीत की इस शृंखला का आरम्भ आपको यह बताने के लिए किया है कि हमारी आज़ादी की कुंजी समझ है। हमें हर बात के लिए व्यक्तिगत ज्ञान की आवश्यकता है, जिसमें हमारी आस्था का ज्ञान भी शामिल है, ताकि हम न केवल खुद को झूठी आस्थाओं से बचाकर रखें, बल्कि इसलिए भी कि हम अपने जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति सर्वोत्तम सिद्धान्तों के साथ कर सकें। मैंने आपको यह भी बताया है कि अगर हम आज़ादी पाना चाहते हैं, रचनात्मक होना चाहते हैं और अपने परिवार तथा समाज में सम्बन्धों को बेहतर बनाना चाहते हैं, तो उसके लिए हमारी संस्कृति का सम्वर्धन करने की जिम्मेदारी हमारे कन्धों पर है।

अगर मैंने खुद ऐसे बदलाव का अनुभव नहीं किया है, परन्तु दूसरों को इस बदलाव के लिए खुद को खोलने के लिए कहूँ, तो मेरे लिए यह किसी ढोंग और धोखे से कम नहीं है। इस कारण मेरी बातचीत के इस भाग में मैंने अपने खुद के जीवन में हुए बदलावों के बारे में बात करने का फैसला किया है ताकि यह समझ पाएँ कि मेरी यह बातचीत उन अच्छे बदलावों का नतीजा है जो मेरे खुद के जीवन में आए हैं। मैं आपको एक सच्ची कहानी बताना चाहता हूँ। मैं बदल गया हूँ, मेरा दिल और दिमाग नया हो गया है, और मेरे जीवन में

आए बदलावों से मुझे बहुत आशिषें मिली हैं। मैं चाहता हूँ कि आप मेरे तर्क को परखें, मेरे नएपन पर गौर करें और आप भी आशीष पाएँ।

ईसा (यीशु) ने मुझे सिखाया कि अगर पहले मैंने ही नयापन हासिल नहीं किया है, तो दूसरों को बदलने की मेरी उम्मीद बेकार होगी। इससे पहले कि मैं दूसरों का ध्यान अच्छी बातों पर लाऊँ, जरूरी है कि मेरा खुद का ध्यान उन बातों पर लगा हुआ हो। अगर एक शान्तिमय, दयालु और प्रेमी सम्बन्ध मेरे वजूद में दिखाई नहीं दे रहा है, अगर धीरज और क्षमा मेरे लिए केवल खोखले शब्द हैं और मेरे रोजाना के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाते, अगर मेरे लिए इंसाफ के मायने सिर्फ इतने हैं कि यह दूसरों के जीवन में दिखाई दे, तो फिर मेरी पूरी कहानी, मेरी बातचीत, और मेरे सुझाव बेकार और व्यर्थ होंगे।

मैं एक ऐसे माहौल में पला-बढ़ा हूँ जहाँ सच्चाई की बजाय दिखावे पर अधिक बल दिया जाता था। अक्सर लोग चाहते थे कि दूसरे बदल जाएँ, पर उन्हें खुद को न बदलना पड़े। इस कारण मुझे तब बहुत गुस्सा आने लगा जब लोग मेरे साथ वह करने लगे जो मैं दूसरों के साथ किया करता था। ऐसा व्यवहार दर्शाता है कि हमारा जीवन कितना अधिक स्वार्थी है, जो दूसरों के अधिकारों को बहुत हीन मानता है। ईसा (यीशु) मसीह सिखाता है कि अगर दूसरों का जीवन आपके लिए मायने नहीं रखता, अगर दूसरों का दर्द देखकर आपको दुख नहीं होता, तो फिर उनके लिए आपकी शिक्षाएँ और बातचीत कोई मायने नहीं रखेंगी।

मेरे जीवन में ईसा (यीशु) मसीह की अगुवाई ने ऐसा किया कि मेरे विवेक को एक झरनी के तौर पर इस्तेमाल करते हुए मेरे शब्दों और व्यवहारों को छानना आरम्भ किया, ताकि मैं उन बातों को थामें रखूँ जो मेरे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं, और उन बातों को अपने जीवन से निकाल कर फेंक दूँ, जो मुझे उदासीनता, अनदेखी, निरादर, भेदभाव, नफरत या लड़ाई की ज़ंजीरों में जकड़ती हैं।

एक बार मैंने एक देश में टीवी पर आने वाले एक विज्ञापन को देखा, जिसमें नागरिकों को प्रोत्साहित किया जा रहा था कि वे सड़कों पर कचरा न फेंके और अपने नगर तथा वातावरण को साफ रखें। ऐसा होने पर लोग नगर की सफाई का आनन्द ले पाएँगे। इस विज्ञापन में एक स्त्री सड़क पर गाड़ी खड़ी करके उसमें बैठी हुई थी और एक फल खा रही थी, जिसके छिलके वह सड़क पर फेंक रही थी। वहाँ से एक पुरुष गुज़रा और उसने वे छिलके उठाकर वापिस कार में फेंक दिए। वह स्त्री उस पर गुस्सा हो गई क्योंकि उसने उसकी कार गन्दी कर दी थी। उस व्यक्ति ने इस स्त्री को जवाब दिया कि उसने उसके साथ वही किया, जो वह दूसरों के साथ कर रही थी और अगर उसके काम सही हैं तो फिर वह गुस्सा क्यों हो रही है।

यह विज्ञापन अच्छा और ज्ञानवर्धक था। इसमें दिखाया गया कि वह अपने विवेक को देख नहीं पा रही थी, वह अपने खुद के व्यवहार में पाई जाने वाली एक बड़ी समस्या को नहीं देख पा रही थी, लाखों लोगों के इस नगर को गन्दा कर रही थी, परन्तु तब गुस्सा हो रही थी जब किसी ने उसके साथ ऐसा ही करते हुए उसकी कार को गन्दा कर

दिया। जरूरी था कि कोई उसके विवेक को जगाए ताकि वह अपने विवेक में झाँक सके और उसमें पाई जाने वाली स्वार्थ की समस्या को पहचान सके। और इस प्रकार दूसरों के साथ शान्तिमय सम्बन्ध का कोई अन्य समाधान ढूँढ सके।

मनुष्यों को सबसे बड़ी आशीष के तौर पर विवेक दिया गया है, ताकि वे विचार करें, अपने आस-पास की बातों का आकलन करें और जो सर्वोत्तम है उसे अपनाएँ। मेरा विश्वास करें कि अगर हमारे भीतर विवेक न होता, तो मैं आपके साथ यह बातचीत करता ही नहीं। क्योंकि विवेक के बिना हम दोनों एक दूसरे की बातों को समझ ही नहीं पाते। लेकिन अच्छी बात है कि हमारे पास विवेक है और इसी के कारण मेरी दिली इच्छा हुई है कि मैं आपसे बात करूँ, अपनी कहानी आपको बताऊँ और इस उम्मीद के साथ अपना दिल तथा ज्ञान आपके साथ बाँटूँ कि ऐसा करने से नएपन की कुंजी आप पर प्रकट हो जाए।

मैंने ईसा (यीशु) मसीह की इंजील से यह सीखा है कि मुझे अपने विवेक पर निर्भर होना है और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रोत्साहित करना है, वरना हम सच्चाई के रास्ते में रुकावट बन जाएँगे। इंजील में 2 कुरिन्थियों की पुस्तक के अध्याय 4 की आयत 2 ऐसा लिखा है: परन्तु हम ने लज्जा के गुप्त कामों को त्याग दिया, और न चतुराई से चलते, और न परमेश्वर के वचन में मिलावट करते हैं; परन्तु सत्य को प्रगट करके, परमेश्वर के सामने हर एक मनुष्य के विवेक में अपनी भलाई बैठाते हैं।

इंजील सही है। सच्चाई को बेईमानी और छल की जरूरत नहीं होती। सच्चाई लोगों के मनों, दिलों और विवेक में सीधे तौर पर बात करती है और अपने असली होने को साबित करने के काबिल होती है। सच्चाई लोगों के जीवनों में दाखिल होने के लिए बेईमानी और छल का इस्तेमाल नहीं करती।

ईसा (यीशु) मसीह की इस महान बुद्धि के प्रकाश में मैं यह भी विश्वास करता हूँ कि आपके विवेक ने आपको इस काबिल बनाया है कि आप सबकुछ माप-तौल कर देखें और पता करें कि ये बातें सच हैं या नहीं। आपका दिल और दिमाग तो झूठ के पीछे लग सकता है, लेकिन आपका विवेक ऐसा कभी नहीं करेगा। इसी कारण, मैं अपनी कहानी, अपने अनुभव, अपने ज्ञान और अपनी समझ को आपके विवेक के पास लाना चाहता हूँ। मैं यह उम्मीद और दुआ कर रहा हूँ कि आप अपने विवेक को आवाज़ उठाने दें और सही फैसला लेने में आपकी अगुवाई करने दें।

मेरे जीवन में जो बदलाव आए हैं वे जड़ से लेकर डालियों तक आए हैं। मैंने ईसा (यीशु) मसीह की इंजील में से एक बुद्धिमानी की एक अद्भुत बात सीखी है। इसमें रोमियों की पुस्तक के अध्याय 11 की आयत 16 में ऐसा लिखा है: जब जड़ पवित्र ठहरी, तो डालियाँ भी ऐसी ही हैं। इसका मतलब यह निकलता है कि हमारे भौतिक और आत्मिक जीवन में सबकुछ हमारी जड़ पर निर्भर करता है। हमारा जीवन उस नींव अर्थात उस जड़ को प्रतिबिम्बित करता है जिस पर हमारा जीवन स्थापित है। अगर हमारी जड़ अथवा नींव अच्छी है,

तो हमारा जीवन भी अच्छा होगा। वरना हमारा जीवन अच्छा नहीं हो पाएगा।

इसलिए हमारे लिए यह बहुत जरूरी है कि हम एक सच्ची नींव अर्थात जड़ को चुनें ताकि हम जड़ पर स्थापित हो सकें और उससे मिलने वाला सच्चा पोषण प्राप्त करते हुए जी सकें। लेकिन सच्चाई तो यह है कि हमें सच्ची जड़ तब तक नहीं मिल सकती जब तक कि हमारी आस्था सच्ची न हो। केवल एक सच्ची आस्था ही हमें सच्ची जड़ दे सकती है।

यह जड़ परमेश्वर या आपकी आस्था का संस्थापक है। इसीलिए मुझे सच्चे परमेश्वर या अगुवे को खोजना है ताकि मैं उसके सिद्धान्तों पर खुद को स्थापित कर सकूँ। यह परमेश्वर या अगुवा ऐसा होना चाहिए जो चयन करने की मेरी आज़ादी का सम्मान करे और मुझे सिखाए कि मुझे अपने परिवार और दूसरों की आज़ादी का सम्मान करना है। यह अगुवा वह परमेश्वर है जिसे ईसा (यीशु) ने मेरे लिए प्रकट किया है। न केवल वह लोगों की चयन करने की आज़ादी का सम्मान करता है, बल्कि वह लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने की भी इच्छा रखता है ताकि उनके लिए सब अच्छी बातें व्यक्तिगत रूप से उन पर प्रकट कर सके। वह इस्लाम के रब जैसा नहीं है, वह खुद को उन लोगों से छिपाकर नहीं रखता जो उसे पाना चाहते हैं। उसने हमें रचा ही इसलिए है ताकि हम व्यक्तिगत रूप से उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

क्या यह एक अच्छी और अद्‌भुत बात नहीं है कि हम उस परमेश्वर के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर पाएँ, जिसने हमें जीवन दिया है और जो सब अच्छी बातों का स्रोत है? हाँ, यह बहुत अच्छी बात है। इसी कारण मैं आपको तथा संसार को एक अद्‌भुत कहानी बताना चाहता हूँ। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मेरे साथ क्या हुआ और परमेश्वर के साथ मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध क्यों है।

देखिए, मैं "क्या और क्यों" शब्दों का इस्तेमाल कर रहा हूँ। मुझे "क्यों, क्या और कैसे" शब्द बहुत पसन्द हैं। मैंने ईसा (यीशु) से सीखा कि ये शब्द हमारे जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये शब्द हमें झूठ, डर और अन्धविश्वास में किए जाने वाले आज्ञापालन से बचाते हैं, और सच्चाई, साहस और स्वेच्छा से लिए जाने वाले फैसले पर स्थापित करते हैं। इस्लाम में आपको "क्यों, क्या और कैसे" शब्दों का इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं है। क़ुरआन में दिए गए मुहम्मद और उसके रब के शब्दों पर सवाल उठाने की मनाही है। इस्लाम में मुसलमान अगुवों की आलोचना करने की भी भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। इसके नतीजे में, अगर आप मुसलमान ही रहना चाहते हैं, तो आपके पास आज़ादी नहीं रह पाती।

परन्तु बाइबल का परमेश्वर हम सभी को बुलाता है कि हम उसकी नबूवतों या निर्देशों का पालन करने से पहले उन्हें माप-तौल कर देख लें। अगर ईसा (यीशु) ने यह समझने के लिए, कि उसका रास्ता सच्चा रास्ता है या नहीं, मुझे "क्या, क्यों और कैसे" शब्दों का इस्तेमाल करने की आज़ादी नहीं दी होती, तो मैं उसका अनुकरण

करने का फैसला कभी नहीं लेता। ईसा (यीशु) का अनुकरण करने का सबसे पहला कदम आज़ादी है। यही कारण है कि वह अपने शत्रुओं की आज़ादी का भी सम्मान करता है।

इसलिए मैं ऐसे परमेश्वर का अनुकरण करने लगा हूँ जिसने मुझे चयन करने की आज़ादी के साथ सृजा है। परमेश्वर के लिए मेरी आज़ादी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी आस्था को मेरे ऊपर थोपे। क्या यह बात अद्‌भुत नहीं है? इसलिए मैंने ईसा (यीशु) से कहा कि वह मुझे उसकी जड़ पर स्थापित कर दे, जो मुझे सांसारिक और आत्मिक क्षेत्र के हर एक पहलू में मेरी आज़ादी को पक्का करती है। उसकी जड़ पर स्थापित होकर मैं हर राष्ट्र, भाषा, जाति और रंग के लोगों के साथ सच्चा, दयालु, प्रेमी और शान्तिमय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए काबिल और तैयार हो गया हूँ। अब सारे संसार के मनुष्यों में से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे मैं अपना शत्रु कह सकता हूँ। मेरा शत्रु केवल शैतान है, जो चयन की आज़ादी के खिलाफ है और लोगों को उदासीनता और अज्ञानता के अन्धेरे में रखना चाहता है।

क्या अब आप यह पहचान पा रहे हैं कि कैसे सच्चा परमेश्वर अथवा मानक अथवा नींव अथवा जड़ का प्रभाव आपके जीवन के हर एक क्षेत्र पर पड़ता है और आपके जीवन का आनन्द लेने तथा सभी के लिए एक ज्योति बनने के लिए आपको तैयार करता है? यह ज्योति आपके जीवन में किसी भी तरह के अन्धेरे को आकर घोसला बनाने

और उससे आपका जीवन तथा दूसरों के साथ आपका सम्बन्ध बर्बाद नहीं होने देगी।

अब मैं इस परमेश्वर का अनुकरण करने लगा हूँ। ईसा (यीशु) ने मुझे इस जड़ पर स्थापित कर दिया है, जिसने मुझे एक नई पहचान के साथ-साथ एक नया दिल और नए राजनीतिक, सामाजिक तथा नैतिक सिद्धान्तों से भरा हुआ एक नया नज़रिया दिया है, ताकि मैं सभी से प्यार कर सकूँ, यहाँ तक कि अपने शत्रुओं से भी। ईसा (यीशु) मसीह ने मुझ पर यह प्रकट किया है कि एक उत्तम चयन करने के द्वारा जड़ से डालियों तक एक विस्तृत समझ पहुँचती है। यदि हम स्वस्थ जीवन जीना चाहते हैं, तो हम सभी को अच्छे चयन करने ही होंगे। मैंने अच्छे चयन करने के लिए उसकी बात मान ली। मैंने ईसा (यीशु) में सच्ची जड़ का अनुकरण करने का फैसला किया, जिससे मेरे जीवन की हर एक डाली तसल्ली और खुशहाली से भर गई। सबसे पहली तसल्ली मुझे मेरी मौत के बाद के समय के आत्मिक आश्वासन के तौर पर मिली। मैंने जान लिया कि अगर एक व्यक्ति परमेश्वर की जड़ पर स्थापित हो गया है, तो वह उस जड़ पर हमेशा के लिए स्थापित रहेगा, क्योंकि यह जड़ अनन्त है। अब मैं इस बात को लेकर सुनिश्चित हूँ कि पृथ्वी पर मेरा जीवन सौ प्रतिशत उसका है और उसके बाद भी हमेशा के लिए मैं उसके साथ रहूँगा। मुझे नरक के बारे में चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं परमेश्वर की जड़ पर स्थापित हूँ। क्या यह आत्मविश्वास अद्भुत और तसल्ली देने वाला नहीं है? हाँ, यह है।

ईसा (यीशु) मसीह के साथ मेरी मुलाकात होने से पहले सब मुसलमानों की तरह मैं भी इस्लाम में अपने भविष्य को लेकर बहुत चिन्ता करता था। इस्लाम ने मौत के बाद के समय के बारे में मेरे अन्दर जो भरोसे की कमी पैदा की थी, उसे मैं दूर करना चाहता था। क़ुरआन में लिखा है कि कोई भी व्यक्ति अपने भविष्य के बारे में नहीं जानता, और मुहम्मद ने भी बार-बार यही कहा कि वह भी अपने भविष्य को लेकर सुनिश्चित नहीं है। यह बात मुझे बहुत परेशान कर रही थी। मुझे कहा गया था कि मैं इस्लाम के रब के लिए सबकुछ करूँ, मुहम्मद के पदचिह्नों पर चलूँ, लेकिन यह सब करने के बाद भी भविष्य का कोई आश्वासन नहीं है। लेकिन मसीही साहित्य पढ़ने पर मैंने जाना, "अगर परमेश्वर दयालु है, तो उसे पृथ्वी पर मेरे जीवन में अपनी दया को साबित करना होगा। ऐसा करने के लिए उसने मुझे आत्मविश्वास दिया कि इस जीवन में मैं उसका हूँ और इस जीवन के बाद भी हमेशा के लिए मैं उसके साथ रहूँगा।"

परमेश्वर से मैं सबसे बड़ी दया यही चाहता हूँ कि वह मुझे मेरे संशय से बचाए। उसने मुझे जो कुछ भी दिया है, मेरे लिए उस सबसे महत्त्वपूर्ण मेरा आत्मिक आश्वासन है। मुझे अब मुक्ति चाहिए। मुझे अब आत्मिक अनिश्चितता से छुटकारा चाहिए ताकि मैं आज़ाद हो सकूँ। सच्चा और दयालु परमेश्वर लोगों से नहीं कहता कि वे एक अज्ञात भविष्य के लिए उस पर भरोसा करें। वास्तव में, परमेश्वर का सबसे बड़ा उद्देश्य ही यह है कि वह लोगों को उनके भविष्य के बारे में हर तरह के संशय से आज़ाद करे और उनका भरोसा जीते।

हमारे दैनिक जीवन में भी ऐसा ही होता है। हम किसी व्यक्ति पर तब तक भरोसा नहीं करते जब तक कि वह खुद को भरोसे के लायक साबित नहीं करता। जब हम इस क्षेत्र में क़ुरआन की तुलना ईसा (यीशु) मसीह की इंजील से करते हैं, तो क़ुरआन की सबसे बड़ी कमज़ोरी दिखाई देती है।

इंजील सिखाती है कि अगर आप अब ईसा (यीशु) मसीह का अनुकरण करते हैं, तो आप अब और हमेशा के लिए बचाए जाते हैं। लेकिन क़ुरआन सिखाता है कि अगर आप मुहम्मद के पीछे हो लेते हैं, तो आप अभी बचाए नहीं जाते और आप यह भी पक्के तौर पर नहीं जान सकते कि मौत के बाद भी आप बचाए जाएँगे या नहीं। इसलिए ईसा (यीशु) का अनुकरण करने से मैं पृथ्वी पर अपने जीवन में परमेश्वर की दया का अनुभव कर पाया, मुक्ति और अनन्तता का आश्वासन हासिल कर पाया।

ईसा (यीशु) मसीह की जड़ से जो दूसरी अद्भुत बात मुझे मिली है, वह यह है कि अब मैं ज्योति, प्रेम, दया, इंसाफ, धार्मिकता, पवित्रता और शान्ति की सन्तान बन गया हूँ। ये बातें मेरी पहचान बन गई हैं और उन सब लोगों की भी जो ईसा (यीशु) का अनुकरण करने लगे हैं। अगर परमेश्वर ज्योति, प्रेम, दयालु, इंसाफ-पसन्द, धर्मी, पवित्र और शान्ति-पसन्द है, तो ये सारे गुण मुझ में भी पाए जाते हैं, क्योंकि मैं उसकी जड़ पर स्थापित हूँ। ये गुण अब मुझे मिल गए हैं और मैं जान गया हूँ कि मुझे मित्रों, विरोधियों और शत्रुओं के साथ कैसा बर्ताव करना है। मैं मित्रों, विरोधियों और शत्रुओं के लिए ज्योति हूँ

और मुझे उनके लिए ज्योति तथा दयालु बने रहने की तथा किसी भी कारण से दूसरों के साथ नाइंसाफी करने से बचने जरूरत है। जरूरी है कि मैं अपना दिल उनके लिए खोलूँ और उन्हें प्रोत्साहित करूँ कि हम एक साथ मिलकर लम्बा चलने वाला मजबूत सम्बन्ध स्थापित करने का सर्वोत्तम रास्ता खोजें।

क्या यह सोचना अद्‌भुत नहीं है कि आप यह विश्वास करने लगें कि अगर आप प्यार भरी बुद्धि के साथ अपने शत्रुओं के पास जाएँ और उन्हें प्रोत्साहित करें कि वे आपके साथ लम्बा चलने वाला मजबूत सम्बन्ध स्थापित करने का रास्ता खोजें, तो आपका बुरे से बुरा शत्रु भी आपका अच्छा मित्र बन सकता है? यह सचमुच अद्‌भुत है। मैंने खुद उन लोगों के साथ अपने सम्बन्ध में इस बात का अनुभव किया है, जो मसीह में मेरे विश्वास के कारण मुझे पसन्द नहीं करते थे। मैं आपको कुछ उदाहरण देना चाहता हूँ।

एक दिन एक व्यक्ति ने मुझे कहा कि वह मसीहत के बारे में कुछ भी नहीं सुनना चाहता, क्योंकि वह इसे बकवास मानता है। मैंने उससे पूछा क्या वह सचमुच इसे बकवास मानता है। उसने हाँ में जवाब दिया। मैंने उससे कहा, "फिर तो मुझे आपकी मदद चाहिए। मैं मसीहत को अपने दिल में लेकर जी रहा हूँ। ईमानदारी से कहूँ तो मैं अपने दिल में ऐसा कुछ भी लेकर नहीं जीना चाहूँगा जो बकवास हो। क्या इस बकवास को मेरे दिल में से निकालने में आप मेरी मदद करेंगे?" उसने मुझसे पूछा, "आप किस क्षेत्र में मेरी मदद चाहते हैं?" मैंने उससे कहा कि ईसा (यीशु) ने ऐसा कहा है: "अपने पड़ोसी से

अपने जैसा प्यार करो, अपने शत्रुओं से प्यार करो और उन्हें आशीर्वाद दो, और अपने जीवनसाथी को अपनी देह जैसा प्यार करो।" वह हमें कह रहा है कि लम्बा चलने वाला मजबूत सम्बन्ध स्थापित करने का रास्ता प्रेम और दया है। "इनमें से कौन सी बात आपको बकवास लगती है?" उसने कहा ये बातें तो अच्छी हैं। फिर मैंने उससे कहा कि ईसा (यीशु) ने यह भी कहा है: "तुममें से जो बड़ा होना चाहे वह सब का दास बने।" ईसा (यीशु) कि इस तरह की सादगी भरी अगुवाई ही लोगों को इंसाफ और शान्ति की ओर ले जा सकती है। शान्ति और इंसाफ के साथ-साथ तानाशाही आगे नहीं बढ़ सकती। इनमें से कौन सी बात आपको बकवास लगती है? उसने कहा कि उसे तो पता ही नहीं था कि इंजील में ये सारी बातें लिखी हुई हैं। उसने मुझसे माफी माँगी और कहा कि वह भी इंजील को पढ़ेगा।

एक बार एक मस्जिद के एक इमाम ने मुझ पर हमला बोलना शुरू कर दिया क्योंकि मैं क़ुरआन की कुछ आयतें लोगों के सामने रख रहा था। मैंने उससे कहा, "इमाम साहब, क्या आप यह नहीं मानते कि आपका ईमान आखरी और सिद्ध ईमान है? तो फिर ऐसा क्यों है कि जो ईमान सिद्ध कहलाता है और जिसमें दूसरों के साथ शान्तिमय बातचीत के लिए सिद्ध बुद्धि मौजूद है, उसका पालन करने वाले हिंसा करते हैं? आप मसीहत को त्रुटिपूर्ण बताते हैं, तो फिर अगर मेरा ईमान त्रुटिपूर्ण है, तो हिंसा तो मुझे करनी चाहिए, लेकिन वास्तव में हो यह रहा है कि आप हिंसा कर रहे हैं और मैं शान्तिमय हूँ।"

इस बात ने उसके विवेक को छू लिया और उसने ध्यान दिया कि मैंने उसे सही चुनौती दी है कि वह शान्ति के साथ बात करे। मेरी यह छोटी सी और शान्तिमय बातचीत छः महीने तक चली मित्रता से भरी बातचीत का आधार बन गई। आखिरकार उसने अपना दिल ईसा (यीशु) को दे दिया। मस्जिद का एक इमाम इस्लाम को छोड़ कर ईसा (यीशु) का अनुयायी बन गया!

क्या इस बात से आपको हैरानी नहीं होती कि अब मैं हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं देता? मेरी पृष्ठभूमि बहुत हिंसक रही है। मैं एक कट्टरपन्थी मुस्लिम अगुवा, राजनेता और विद्वान था। मैंने यही सीखा था कि जो लोग इस्लाम को "न" बोलते हैं, उनके लिए एकमात्र जवाब हिंसा है। लेकिन अब ईसा (यीशु) मसीह की अगुवाई में चलते हुए मैं अपने विरोधियों से उसके प्रेम, दया और तर्क के साथ बात करता हूँ, उनके विवेक को छूता हूँ ताकि उन्हें गहराई से सोचने, सच्चाई को खोजने और मेरे मित्र बनने का अवसर मिले। इस्लाम से मसीह में मेरी यात्रा सबके लिए, यहाँ तक कि मेरे विरोधियों के लिए भी आशीष का जरिया बनी है।

यह मेरी कहानी है। ईसा (यीशु) मसीह ने मुझे छूआ, मुझे नया बनाया और मुझे अनन्त भरोसा दिया। अब मैं एक नया व्यक्ति बन गया हूँ, अब मैं अपना दिमाग, अपना दिल और अपना विवेक इस्तेमाल करने के लिए आज़ाद हूँ, ताकि लोगों का ध्यान सच्ची आज़ादी की ओर ला सकूँ। मेरी कहानी को सुनने के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद!

चिन्तन का समय 3

1. क्या यह बात जायज़ है कि मैं खुद तो भलाई न सीखूँ, लेकिन दूसरों से उम्मीद करूँ कि वे भलाई करें?
2. हमें अपने दिल, दिमाग और विवेक को काम में लाने की जरूरत क्यों है?
3. हमारी आस्था हमारे आत्मिक और सामाजिक जीवन को कितना प्रभावित करती है? अगर यह प्रभाव नकारात्मक है, तो क्या हमें कोई दूसरा विकल्प खोजना चाहिए?
4. अगर आप परमेश्वर पर विश्वास करते हैं, तो क्या यह अच्छी बात है कि आप उसे जानें, उसके साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करें और अनन्त भरोसा प्राप्त करें?
5. डैनियल ने ईसा (यीशु) पर विश्वास क्यों किया?
6. आप किस तरह से डैनियल जैसा महसूस करते हैं?

परमेश्वर – क्या परमेश्वर वजूद में है?

परमेश्वर के वजूद में होने या न होने पर होने वाली दार्शनिक चर्चाओं की जड़ें इतिहास में गहराई तक जाती हैं। ऐतिहासिक प्रमाण हमें पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में ले जाते हैं, सुकरात से भी पहले उनके पास ले जाते हैं जिन्होंने पहली बार प्रकृति के कार्य का विवरण परमेश्वर से हटकर किया था। उस युग और उस आन्दोलन के प्रमुख व्यक्ति का नाम थेल्स था।

साम्यवादी और डारविन के समर्थक आन्दोलन के बाद परमेश्वर पर अविश्वास लाने की विचारधारा गति पकड़ने लगी। आगे चलकर इस विचारधारा ने परमेश्वर तथा उसके द्वारा सृष्टि की जाने के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार को रोकने के लिए राजनीतिक रूप ले लिया।

जो लोग परमेश्वर के वजूद पर विश्वास नहीं करते, वे कहते हैं: यदि परमेश्वर को देखा या छूआ नहीं जा सकता, तो इसका अर्थ है कि परमेश्वर का वजूद नहीं है। हम पक्के तौर पर नहीं जानते कि परमेश्वर वजूद में है या नहीं क्योंकि विज्ञान ने उसके वजूद को अभी तक प्रमाणित नहीं किया है। इस कारण वे इस नतीजे पर भी पहुँच जाते हैं कि संसार अपने आप ही और एक दुर्घटना के कारण वजूद में आया था, और इसका कोई सृष्टिकर्ता नहीं है। लेकिन जो लोग परमेश्वर के वजूद पर विश्वास करते हैं, वे कहते हैं: क्योंकि संसार में पाई जाने वाली हर एक वस्तु का कोई न कोई आविष्कारक और रचने वाला

होता है, इसलिए इससे हमें यह संकेत मिलता है कि खुद इस संसार का भी अपना एक सृष्टिकर्ता है।

वजूद की सांयोगिक विचारधारा के विरुद्ध प्रमाण

पहला प्रमाण हर एक वस्तु की बनावट है

इस संसार में हर एक वस्तु की बनावट सुनियोजित और क्रमबद्ध है, जो संयोग वश होना सम्भव नहीं है। जब भी हम किसी वस्तु में नियमित क्रम को देखते हैं, तो इससे हमें पता चलता है कि इस नियमितता की स्थापना के पीछे बुद्धि, ज्ञान और प्रबन्ध काम कर रहा है। अगर ऐसा है तो वजूद की सांयोगिक विचारधारा न केवल अर्थहीन है, बल्कि विज्ञान की तर्क शक्ति के विरुद्ध भी है।

दूसरा प्रमाण शरीर के अंगों का काम करने का तरीका है

मनुष्य और पशुओं के शरीर का हर एक अंग उसके स्थान पर असाधारण बुद्धिमत्ता और एक विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित किया गया है। यह बुद्धिमत्ता सांयोगिक विचारधारा के साथ मेल नहीं खाती। उदाहरण के लिए, जिराफ का दिल 13 किलोग्राम वजन का होता है और हाथी के दिल की तुलना में उसका रक्तचाप दोगुना होता है, ताकि उसके रक्त को उसकी लम्बी गर्दन में से होते हुए उसके सिर तक पहुँचाया जा सके। जिराफ के दिमाग के पास एक विशिष्ट पात्र

जैसा एक अंग होता है[2] जो एक स्पंज के समान काम करता है और सिर नीचे होने की अवस्था में रक्त को कोमलता से सोख लेता है ताकि रक्तचाप को कम किया जा सके, वरना उसका सिर फट जाएगा। अगर रक्तचाप बहुत ज्यादा हो जाए, तो यह स्पंज जिराफ को संकेत देता है कि नुकसान होने से पहले-पहले वह अपना सिर ऊपर कर ले।

क्या बुद्धिमानी से रची गई इस बनावट को सांयोगिक विचारधारा के द्वारा समझाया जा सकता है? बिल्कुल नहीं।

तीसरा प्रमाण मानवजाति में पाई जाने वाली नैतिक परम्पराएँ हैं

दैनिक जीवन में पाई जाने वाली नैतिक परम्पराएँ सांयोगिक घटनाक्रमों का परिणाम नहीं हो सकतीं। उदाहरण के लिए, अनुभव और मानक के बिना हम यह नहीं कह पाएँगे कि यह अच्छा है और वह बुरा है, या यह गलत है और वह सही है। लेकिन अगर हम अपने अनुभवों और मानकों पर इस तरह से निर्भर करते हैं, तो सांयोगिक विचारधारा अर्थहीन हो जाती है। क्यों? क्योंकि अतीत में हमने उनका अनुभव किया है और अतीत के अनुभवों का यह ज्ञान अब हमारे जीवन का मानक बन गया है। इस जानकारी के साथ हम खुली

[2] https://en.wikipedia.org/wiki/Giraffe#Neck; http://www.africam.com/wildlife/giraffe_drinking.

आँखों के साथ भविष्य में आगे बढ़ सकते हैं ताकि नकारात्मक और नुकसानदेह वस्तुओं से बचा जा सके।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ये मानक संयोग वश बनने की बजाय हमारी आकलन करने की क्षमता और बुद्धिमानी से फैसला लेने की योग्यता के परिणाम स्वरूप सामने आए हैं, ताकि हमें हमारे वांछित लक्ष्यों की ओर ले जा सकें। इसलिए सांयोगिक विचारधारा सिर्फ एक परिकल्पना है और हमारे जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से मेल नहीं खाती।

संसार के हर एक परिवार में पाया जाने वाला नैतिक क्रम भी सांयोगिक विचारधारा के विरुद्ध है

सारे मानवीय इतिहास में देखा जा सकता है कि माता-पिता, यहाँ तक कि वे भी जो परमेश्वर पर विश्वास नहीं करते, अपने बच्चों के आपस में विवाह नहीं करवाते। इस तरह के एक बने-बनाए क्रम पर निर्भर होना सांयोगिक विचारधारा के एकदम विरुद्ध है। इसके अलावा, कोई भी व्यक्ति संयोग वश यह चुनाव नहीं कर सकता कि वह व्यक्ति मेरा जीवनसाथी होगा या हमने उस बच्चे को पैदा करने का फैसला किया है; क्योंकि चुनाव या प्रबन्ध करना सांयोगिक विचारधारा या जीवनशैली का हिस्सा हो ही नहीं सकता।

इस तरह आप देख सकते है कि संसार की हर एक वस्तु, यहाँ तक कि विज्ञान भी वजूद की सांयोगिक विचारधारा से मेल नहीं खाती,

बल्कि एक सृष्टिकर्ता की ओर संकेत करती है, जिसने ब्रह्माण्ड की बनावट तैयार की और उसे सृजा।

इस संसार को परमेश्वर ने सृजा है। इसे समझने के लिए हमें केवल अपने आस-पास की वस्तुओं को देखने की जरूरत है।

यह परमेश्वर कौन है?

देखिए, अलग-अलग धर्मों में परमेश्वर की अलग-अलग व्याख्या दी गई है। लेकिन इनमें से कौन सी व्याख्या सच्ची है? मेरा मकसद इस पुस्तक में अलग-अलग धर्मों द्वारा दी जाने वाली परमेश्वर की व्याख्या पर चर्चा करना नहीं है, परन्तु मेरा उद्देश्य परमेश्वर पर मुस्लिम और मसीही दृष्टिकोणों की तुलना करना है। क्या इस्लाम और मसीहत परमेश्वर को अलग-अलग प्रकार से देखते हैं? आइए, इस विषय पर जितना विस्तार से सम्भव हो सके, देखें।

इस्लाम और मसीहत में परमेश्वर

क्या इन दोनों आस्थाओं में से किसी में परमेश्वर मनुष्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकता है?

बाइबल में लिखा है: परमेश्वर खुद को प्रकृति के द्वारा प्रकट करता है। वह वैसे ही लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रखना चाहता है

जैसे बाइबल में अनेक लोगों के साथ उसने व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित किए।[3]

क़ुरआन में लिखा है: अल्लाह ने खुद को प्रकृति में प्रकट नहीं किया है और मनुष्यों के साथ उसका व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। यह बात यूनानी विचारधारा से मेल खाती है: यूनानी विचारधारा के अनुसार परमेश्वर का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है और वह खुद को प्रकट नहीं कर सकता। मुस्लिम विद्वानों द्वारा यूनानी विचारधारा से यह बात लेने का कारण यह है कि अल्लाह की प्रकृति केवल यूनानी विचारधारा से ही मेल खाती है।

बाइबल में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर देखता है, सुनता है, मनुष्यों से सीधे तौर पर बोलता है और जिस पर चाहे उस पर खुद को प्रकट करता है। लेकिन क़ुरआन में सूरह अल-अनाम (6) की आयत 103 में लिखा है कि अल्लाह सबकुछ देखता है लेकिन स्वयं अदृश्य है, और सूरह अंश-शूरा (42) की आयत 51 में लिखा है कि अल्लाह

[3]बाइबल के परमेश्वर के पास निजी तौर पर पहुँचा जा सकता है और उसके साथ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इसलिए वह पूरी तरह से अदृश्य परमेश्वर नहीं हो सकता, बल्कि वह दृश्य परमेश्वर है। उसे उसकी प्रकृति में देखा जा सकता है, वैसे ही जैसे उसने खुद को पुराने नियम में कुछ लोगों पर प्रकट किया, सब नबियों से उसने सीधे तौर पर बात की और नए नियम में अपने आप को उसने एक पुरुष के तौर पर प्रकट किया। कुछ परिस्थितियों में वह अपने खुद के सिद्धान्तों या फैसले के आधार पर अपने आप को अदृश्य रखता है।

किसी से भी सीधे बात नहीं करता, लेकिन केवल परदे के पीछे से बात करता है। इस प्रकार क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर खुद को छिपाता है और कभी भी खुद को प्रकट नहीं करता, जबकि बाइबल में लिखा है कि परमेश्वर खुद को प्रकट करता है।

अब, तर्क पर आधारित चर्चा में जाने से पहले मैं आपसे एक साधारण सा सवाल पूछना चाहता हूँ। क्या आप अपने सृजनहार को आमने-सामने देखना चाहेंगे?

मुझे बहुत हैरानी हुई जब मैंने अलग-अलग धर्म के लोगों से यह सुना कि वे अपने सृजनहार को आमने-सामने देखना चाहेंगे। इस्लामिक दृष्टिकोण के विरुद्ध मध्य-पूर्वी देशों के कुछ मुस्लिम दार्शनिकों धर्म-शास्त्रियों और कवियों ने परमेश्वर को आमने-सामने देखने की चाहत दर्शाई है।

संक्षेप में, मैं आपको बताना चाहता हूँ कि परमेश्वर ने कभी नहीं चाहा कि अगर आप उसे देखना चाहते हैं, तो वह खुद को आपसे छिपाए।

परमेश्वर को खुद को क्यों नहीं छिपाता

परमेश्वर निजी तौर पर अपना प्रेम प्रकट करता है

परमेश्वर प्रेम का परमेश्वर है; वह अपने प्रेम को छिपाता नहीं है। आप किसी व्यक्ति को तब तक प्यारा नहीं कह सकते जब तक कि वह अपने सम्बन्धों में प्रेम को प्रकट नहीं करता। परमेश्वर भी ऐसा ही है;

वह अपने प्रेम को आपके साथ और अपने सृजे हुए प्राणियों को साथ सम्बन्ध में प्रकट करता है। ऐसा होने के लिए जरूरी है कि परमेश्वर पहले हमारे साथ सम्बन्ध स्थापित करे और फिर हमारे लिए अपना प्रेम प्रकट करे। आदि में परमेश्वर ने सृष्टि की योजना बनाई और उस योजना में अपने प्रेम को भी शामिल किया। सृष्टि में उसने खुद को आदम और हव्वा पर प्रकट किया, और वे परमेश्वर तथा उसके प्रेम को व्यक्तिगत तौर पर देख सकते थे।

अगर आपका रब खुद को प्रकट नहीं करता, तो इसका मतलब है कि वह रब सम्बन्ध नहीं चाहता और आपके जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं लेता।

अगर परमेश्वर खुद को प्रकट करता है तो हम उसे बेहतर रीति से जान पाएँगे

हर एक व्यक्ति जिसे परमेश्वर ने सृजा है, उसे अपने सृजनहार को व्यक्तिगत तौर पर जानना ही चाहिए। क्या यह अच्छी बात नहीं है कि आप किसी भी बिचोलिए के बिना परमेश्वर को जान पाएँ? किसी बिचोलिए के बिना किसी व्यक्ति को जानने से घनिष्ठता आती है। मान लीजिए कि आप परिवार बसाना चाहते हैं, तो क्या आपके लिए यह लाभकारी नहीं होगा कि आप अपने भावी जीवनसाथी को व्यक्तिगत तौर पर जानें और उसके साथ एक हो जाएँ? परमेश्वर के साथ भी ऐसा ही होता है। अगर आप परमेश्वर के साथ एक होना चाहते हैं, तो आपको उसे व्यक्तिगत तौर पर जानना होगा।

अगर हम परमेश्वर को व्यक्तिगत तौर पर नहीं जानते, तो हम उसके वचनों के साथ सीधे तौर पर नहीं जुड़ पाएँगे। वहीं दूसरी ओर, परमेश्वर के बारे में हमें इससे बेहतर कोई अन्य व्यक्ति क्या बताएगा कि परमेश्वर खुद अपने आप को हम पर प्रकट करे। तो फिर परमेश्वर खुद को हम पर निजी तौर पर प्रकट क्यों न करे? परमेश्वर खुद को छिपाता नहीं है। अगर आपका धर्म कहता है कि परमेश्वर खुद को प्रकट नहीं करता और खुद को जानने नहीं देता, तो वह धर्म परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकता।

अगर कोई व्यक्ति निजी तौर पर परमेश्वर को नहीं जानता, तो क्या वह परमेश्वर का पैगम्बर हो सकता है? नहीं। परमेश्वर का सच्चा पैगम्बर वही होता है, जिसे परमेश्वर खुद भेजता है। अगर किसी व्यक्ति ने परमेश्वर को देखा नहीं है, उसकी आवाज़ को सुना नहीं है और उसे जानता नहीं है, तो फिर किस तर्क के आधार पर वह यह कह सकता है कि उसे परमेश्वर ने भेजा है? इसमें कोई तर्क है ही नहीं। जरूरी है कि एक सच्चे पैगम्बर का परमेश्वर के साथ, उसकी आवाज़ के साथ और उसके वचनों के साथ सीधा व्यक्तिगत सम्बन्ध हो, वरना वह यह सच्चा दावा कर ही नहीं सकता कि उसे परमेश्वर ने भेजा है। और अगर किसी धर्म में तर्क के लिए कोई आधार ही नहीं है, तो फिर उसके सन्देश को कबूल करवाने के लिए धोखे, बल या तलवार का सहारा लिया जाता है। इसलिए अगर आपका धर्म सिखाता है कि आपका नबी परमेश्वर से कभी व्यक्तिगत तौर पर मिला ही नहीं है, तो फिर आपको किसी दूसरी आस्था की खोज

करनी होगी, जिसमें परमेश्वर और उसके पैगम्बरों में परस्पर व्यक्तिगत सम्बन्ध पर बल दिया जाता है।

प्रेमी परमेश्वर व्यक्तिगत तौर पर अपने लोगों की अगुवाई करना चाहता है

क्या आपने लोगों को यह कहते नहीं सुना है, "परमेश्वर आपके संग रहे"? ऐसा इसलिए कहा जाता है, क्योंकि लोग चाहते हैं कि परमेश्वर व्यक्तिगत तौर पर उनके संग रहते हुए उनकी अगुवाई करे। मेरा विश्वास है कि आप सब मेरे साथ इस बात पर सहमत होंगे कि जब इंसाफ, धार्मिकता, पवित्रता और कृपा की बात होती है तो परमेश्वर इसमें सर्वोत्तम और सर्वोच्च है। तो फिर परमेश्वर की तुलना में और कौन है जो लोगों की अगुवाई कर सकता है? कोई नहीं। परमेश्वर जानता है कि अगर वह खुद आपकी अगुवाई करेगा, तो शैतान आपके नजदीक भी नहीं आ पाएगा। लेकिन अगर एक नबी आपकी अगुवाई करेगा, तो फिर आपके पास यह गारण्टी नहीं है कि आप शैतान के प्रभाव से बचे रहेंगे। यही कारण है कि परमेश्वर खुद को छिपाता नहीं है, बल्कि खुद को प्रकट करना चाहता है ताकि व्यक्तिगत तौर पर आपकी अगुवाई करे। इसलिए आपके लिए यह सुरक्षित होगा कि आप किसी बिचोलिए या नबी की अगुवाई में चलने की बजाय व्यक्तिगत तौर पर खुद परमेश्वर की अगुवाई में चलें। इस कारण अगर आपका धर्म आपको परमेश्वर के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर नहीं देता, और आपको

मजबूर करता है कि आप अपनी आँखें बन्द करके अपनी नबी के पीछे चलते रहें, तो आपका धर्म परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकता।

परमेश्वर व्यक्तिगत तौर पर पृथ्वी पर इंसाफ लाना चाहता है

अगर इंसाफ का सर्वोच्च अधिकारी परमेश्वर है और नाइंसाफी का सर्वोच्च अधिकारी शैतान है, तो फिर परमेश्वर के अलावा और कौन है जो शैतान को परास्त कर सकता है और पृथ्वी पर आपके जीवन में इंसाफ ला सकता है? परमेश्वर के अलावा और कोई ऐसा नहीं कर सकता। अगर ऐसा है तो फिर परमेश्वर को खुद को प्रकट करना ही होगा और पृथ्वी पर इंसाफ लाना ही होगा, क्योंकि एक नबी अपने खुद के बल पर शैतान को परास्त नहीं कर सकता। इसलिए अगर आपका धर्म सिखाता है कि हमारी ओर से शैतान के खिलाफ लड़ने के लिए परमेश्वर खुद को व्यक्तिगत तौर पर प्रकट नहीं करता, तो यह आपको गलत दिशा में ले जा रहा है और इस बारे में जानता तक नहीं है कि परमेश्वर ने इंसाफ की स्थापना किस प्रकार कर दी है।

परमेश्वर मनुष्यजाति को व्यक्तिगत तौर पर बचाना चाहता है

नाइंसाफी का सर्वोच्च अधिकारी शैतान है और उसने मनुष्यों को जकड़ा हुआ है। अगर ऐसा है तो फिर मनुष्यजाति को शैतान और पाप की जकड़ से कौन आज़ाद कर सकता है? क्या शैतान की जकड़ में फँसा हुआ व्यक्ति खुद को आज़ाद कर सकता है? नहीं। सबसे पहली बात तो यह है कि वह एक आत्मिक कैदी है और एक कैदी खुद को आज़ाद नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि इस आत्मिक

कैद का अधिकारी शैतान है, जो मनुष्यों से अधिक ताकतवर है, मनुष्यों से नफरत करता है, और नहीं चाहता कि मनुष्य आज़ाद हों या मुक्ति प्राप्त करें। कोई भी मनुष्य खुद को आज़ाद नहीं कर सकता। हर एक व्यक्ति को जरूरत है कि खुद परमेश्वर उसके पास आए और उसे व्यक्तिगत तौर पर बचाए। अगर परमेश्वर को खुद आना पड़ेगा, तो इसका मतलब है कि वह खुद को छिपा नहीं सकता।

अगर आपका धर्म आपसे कहता है कि आप अपने भले कामों के द्वारा खुद को शैतान से बचा सकते हैं, तो आपका धर्म आपसे झूठ बोल रहा है। अगर हम आत्मिक तौर पर मुक्त और आज़ाद नहीं हैं, तो फिर परमेश्वर से दूर रहने वाली यह अवस्था हमें स्वर्ग की इच्छा के अनुसार ऐसा कोई काम करने ही नहीं देगी जिससे परमेश्वर को सन्तुष्टि मिले। प्रेम और इंसाफ का स्रोत परमेश्वर है। अगर आप खुद परमेश्वर के प्रेम और इंसाफ में प्रवेश न करें, तो आप परमेश्वर के अनुसार न तो सोच पाएँगे, न बोल पाएँगे और न ही काम कर पाएँगे। कहने का भाव यह है कि अगर आपका सम्बन्ध शैतान और पाप से नहीं टूटा है और आप परमेश्वर के साथ एक नहीं हुए हैं, तो फिर आपके भले कामों का परमेश्वर के सामने कोई मूल्य नहीं होगा। परमेश्वर चाहता है कि पहले सारी मनुष्यजाति शैतान से मुक्त हो जाए। शैतान से आज़ादी परमेश्वर के लिए भले कामों का आरम्भ है। कहने का भाव यह है कि परमेश्वर का सबसे पहला उद्देश्य आपको मुक्त करने के लिए खुद को प्रकट करना है। परमेश्वर को सचमुच सन्तुष्ट करने वाले भले कामों का आरम्भ आपकी मुक्ति और आज़ादी से होता है।

इसलिए प्रेमी परमेश्वर न तो खुद को छिपाता है और न ही मौत के बाद के जीवन के लिए मुक्ति में देरी करता है।

जो व्यक्ति मुक्ति के लिए आज पुकार रहा है, क्या उसकी मुक्ति को कल तक टालना सही है?

अगर शैतान ने मनुष्यजाति को परमेश्वर से और पृथ्वी पर उसके राज्य से अलग कर दिया है और उन्हें पापी बना दिया है, तो उनकी मुक्ति का काम भी पृथ्वी पर ही होना चाहिए। पृथ्वी पर जो लोग एक दूसरे से जुदा हो जाते हैं, क्या वे जल्दी से जल्दी एक दूसरे के साथ फिर से एक नहीं हो जाना चाहते? अगर उनके एक होने में देरी हो जाए तो क्या यह पीड़ादायक नहीं होगा? परमेश्वर का और हमारा दिल एक जैसा है। परमेश्वर नहीं चाहता कि उसके साथ हमारे एक हो जाने में कोई देरी हो। वह यहाँ पृथ्वी पर खुद को हम पर प्रकट करना चाहता है। अगर हमारी मुक्ति में देरी होगी तो हमारे दिलों को भी चैन नहीं मिलेगा। इसलिए अगर आपका धर्म परमेश्वर को छिपाता है और मुक्ति को मौत के बाद के लिए छोड़ देता है, तो फिर यह परमेश्वर के दिल से मेल ही नहीं खाता।

आप देख सकते हैं कि कैसे बाइबल परमेश्वर को प्रकट करती है, परन्तु क़ुरआन उसे छिपाता है। इस बात से आपको खुशी नहीं होगी कि सबसे सुन्दर व्यक्ति को आप से छिपा लिया जाए। ईसा (यीशु) ने सिखाया कि परमेश्वर कभी भी खुद को आपसे नहीं छिपाएगा। वह आपसे प्यार करता है। साथ ही, ये तर्कपूर्ण और वास्तविक शब्द

जो मैंने आपके साथ बाँटे हैं, उनका सृजनहार खुद ईसा (यीशु) है। अगर ये शब्द आपके दिल को सही लगते हैं, तो आपको भी ईसा (यीशु) का अनुकरण करने की जरूरत है।

चिन्तन का समय 4

1. यह मानना तर्कहीन क्यों है कि संसार अपने आप ही या संयोग से वजूद में है?
2. संसार के अधिकतर लोग अपने अच्छे भविष्य की योजना बनाते हैं। ऐसी योजना के लिए एक मानक जरूरी होता है। अतीत के अनुभवों के साथ तुलना किए बिना एक अच्छा मानक स्थापित ही नहीं किया जा सकता। क्या हमारे जीवन में ऐसे योजनाबद्ध प्रबन्धन और फैसले लेने की क्षमता के साथ वजूद की सांयोगिक विचारधारा मेल खा सकती है?
3. क्या हमारे पास तर्क[4] करने और सच्चाई की खोज करने की क्षमता है?

[4] सभी धर्मों के अनुयायियों में ऐसे लोग पाए जाते हैं जो कहते हैं कि उनका परमेश्वर ही एकमात्र सच्चा परमेश्वर है और उनके परमेश्वर ने उन्हें सर्वोत्तम अथवा सिद्ध धर्म दिया है। कल्पना करें कि संसार के सभी धर्मों के अनुयायियों की मानसिकता एक समान है, वे तुलना, तर्क और दूसरों के साथ मिलकर सच्चाई की खोज में विश्वास नहीं करते अथवा वे किसी भी चुनौती या प्रश्न के बिना ही अपना जीवन जी रहे हैं। अगर कोई तुलना हो ही नहीं रही, तो फिर सच्चे परमेश्वर की खोज कैसे सम्भव हो पाएगी?

4. रोमियों 2:14-16 को देखें, फिर 2 कुरिन्थियों 4:2 को देखें और अन्त में गलातियों 3:24 को देखें और पता करें कि क्या हम लोगों के विवेक के द्वारा उनमें मौजूद परमेश्वर के व्यवस्था-विधान (गवाही) के प्रति उन्हें जागरूक कर सकते हैं, ताकि परमेश्वर का यह व्यवस्था-विधान उन्हें ईसा (यीशु) के पास ले आए।
5. क्या लोग अपने दिलों की गहराई से अपने सृजनहार को देखना और उसके साथ एक हो जाना चाहते हैं?
6. सच्चा परमेश्वर खुद को क्यों नहीं छिपाता?
7. यदि कोई व्यक्ति निजी तौर पर परमेश्वर को नहीं जानता, तो क्या वह परमेश्वर का पैगम्बर हो सकता है?
8. अगर मुक्ति आज उपलब्ध है, तो फिर इस मौत के बाद के लिए क्यों छोड़ा जाए? क्या अभी मुक्ति पाना अच्छा नहीं है?

सच्चे और झूठे परमेश्वर में भिन्नता कैसे करें?

ब्रह्माण्ड में केवल एक ही परमेश्वर है, लेकिन अलग-अलग धर्म अपने-अपने रब को सामने लाते हैं और वे इस परमेश्वर से बिल्कुल भिन्न हैं। वह कौन सा धर्म है जो सच्चे परमेश्वर को मनुष्यों के सामने लाता है?

क्या हम यह जान सकते हैं कि कौन से धर्म में सच्चा परमेश्वर पाया जाता है?

जी हाँ। हमारे पास आँखें हैं ताकि हम पढ़ सकें और देख सकें, हमारे पास कान हैं ताकि हम सुन सकें, हमारे पास दिमाग है ताकि हम समझ सकें और तुलना कर सकें, हमारे पास दिल हैं ताकि हम आकलन कर सकें और सच्चाई का पता लगा सकें तथा हमारे पास एक विवेक है ताकि हम कीमत की परवाह किए बिना सच्चाई के लिए खड़े हो सकें। सो हमारे पास यह क्षमता है कि हम सच्चे परमेश्वर को खोजें, उसे पा लें और उसके साथ जीएँ। अलग-अलग धर्मों के ग्रन्थों या पुस्तकों को पढ़कर या सुनकर उनके रब के बारे में कोई भी व्यक्ति जानकारी प्राप्त कर सकता है। हम उनकी परस्पर तुलना कर सकते हैं और फिर हम झूठे रब तथा सच्चे परमेश्वर में भिन्नता कर सकते हैं।

सच्चे परमेश्वर को खोजने के मानदण्ड कौन-कौन से हैं?

ये निम्नलिखित हैं:

1. दार्शनिक मानदण्ड
2. सैद्धान्तिक शिक्षा का मानदण्ड
3. सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक मानदण्ड

दार्शनिक मानदण्ड

पहला दार्शनिक मानदण्ड यह है कि परमेश्वर व्यक्तित्व युक्त होना चाहिए

मनुष्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने और उनकी सहायता करने के लिए जरूरी है कि परमेश्वर का अपना एक व्यक्तित्व हो। जो रब व्यक्तित्वहीन होता है, वह किसी भी मनुष्य के साथ न तो व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, न उसे बचा सकता और न ही उसकी अगुवाई कर सकता है। इस कारण ऐसा रब निराश्रय और आशाहीन होता है। उदाहरण के लिए, इस्लाम का रब व्यक्तित्वहीन है। क्योंकि इस्लाम का नबी, मुहम्मद, परमेश्वर को देख नहीं पाया, इसलिए उसने यह घोषणा कर दी कि परमेश्वर पूरी तरह से अदृश्य है और ऐसा रब है जो खुद को प्रकट नहीं करता। उसकी मौत के बाद मुस्लिम विद्वानों ने अपनी दार्शनिक विचारधारा को मुहम्मद के अनुभव पर आधारित

कर दिया और परमेश्वर को ऐसे परमेश्वर के तौर पर प्रस्तुत किया जो न केवल व्यक्तित्वहीन है, बल्कि न उस तक पहुँचा जा सकता है और न ही उसे जाना जा सकता है।

अगर एक रब पूरी तरह से अदृश्य है, तो वह अपने विचारों, अपने शब्दों या अपने कामों को प्रकट नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह भी हुआ कि परमेश्वर के पास अपनी योजना को प्रकट करने के लिए विचार नहीं हैं, अपनी योजना को बताने के लिए शब्द नहीं हैं, और अपनी योजना को कार्यरत करने के लिए अनिवार्य योग्यता नहीं है। कहने का भाव यह है कि वह बोल नहीं सकता, क्योंकि जिसके पास अपना व्यक्तित्व है वह बोल सकता है, वह नहीं जिसके पास अपना व्यक्तित्व ही नहीं है। साथ ही, वह कोई रचना भी नहीं कर सकता, क्योंकि रचना करने के लिए शब्दों की आवश्यकता पड़ती है; जैसा कि हम कहते हैं, "परमेश्वर ने जो बोला, वह हो गया।" क्योंकि इस्लाम का रब बोल नहीं सकता, इसलिए सृष्टि को उसका काम नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार इस्लाम के रब की व्यक्तित्वहीन प्रकृति ने उसे खुद को मुहम्मद पर प्रकट नहीं करने दिया और न ही उसके साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने दिया। क्योंकि वह किसी के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता, इसलिए वह न तो किसी की मदद कर पाएगा और न ही किसी को बचा पाएगा, क्योंकि किसी की मदद करने के लिए या उसे बचाने के लिए खुद को प्रकट करना और उसके साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना जरूरी होता है।

बहुत सारे मुस्लिम हर दिन दुआ करते हैं और अपने रब से माँगते हैं कि वह उन्हें सही रास्ते पर लाए। वह मनुष्यों को सही रास्ते पर कैसे ला सकता है क्योंकि वह उनकी अगुवाई करने और उनकी रक्षा करने के लिए खुद को प्रकट कर नहीं कर सकता? अगुवाई और सुरक्षा तभी आ सकती है जब एक व्यक्तिगत सम्बन्ध मौजूद हो, जबकि क़ुरआन में लिखा है कि अल्लाह खुद को प्रकट नहीं करता और किसी से भी व्यक्तिगत तौर पर नहीं जुड़ता।

इसलिए सच्चे परमेश्वर के लिए सबसे पहला और बुनियादी मानदण्ड यही है कि मनुष्यों को शैतान और पाप से बचाने के लिए वह खुद को प्रकट करे। सो परिणाम स्वरूप यदि आपके धर्म का रब या सर्वोच्च वास्तविकता खुद को प्रकट नहीं करती, तो वह सच्चा परमेश्वर नहीं है।

दूसरा दार्शनिक मानदण्ड यह है कि परमेश्वर की उपस्थिति हर जगह होनी चाहिए और कार्यरत होनी चाहिए

परमेश्वर व्यावहारिक तरीके से हमारे संग रहने में सक्षम है। क्योंकि परमेश्वर में हममें व्यक्तिगत गुण मौजूद हैं, इसलिए यदि परमेश्वर हमारे संग और हममें है, तो हम परमेश्वर की उपस्थिति को निजी तौर पर महसूस कर सकते हैं।

अगर हम यह कह रहे हैं कि परमेश्वर की उपस्थिति हममें है, तो ऐसा करने के हमारे पास वैध कारण होने चाहिएँ। अनेक मुस्लिम लोग क़ुरआन में परमेश्वर के बारे में दी गई विचारधारा के विरुद्ध जाकर

यह दावा करते हैं कि परमेश्वर उनके संग है। मैंने बहुत बार मुसलमानों को यह दावा करते सुना है, "परमेश्वर उनके खून में है। वह तो उनके सिर से मुँह तक खून लाने वाली नस से भी अधिक उनके समीप है।" क्या परमेश्वर सचमुच मुसलमानों के संग है? क्या इस दावे को तर्क के साथ प्रमाणित किया जा सकता है? नहीं। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि ऐसा क्यों नहीं किया जा सकता।

अगर परमेश्वर आपके संग है, तो इसका अर्थ है कि परमेश्वर अपने सारे आश्वासन, कृपा और प्रेम के साथ आपके संग है। क्योंकि वह एक भला, कृपालु और प्रेमी परमेश्वर है, इसलिए वह आपके जीवन के किसी भी भाग में आपको आश्वासन के बिना नहीं छोड़ेगा, बल्कि आपको आपके भविष्य के लिए 100% आश्वासन देगा। अगर आप कहते हैं कि वह आपको ऐसा आश्वासन नहीं देता अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाए तो, सिद्ध रूप में आपकी अगुवाई नहीं करता, तो वह सच्चा परमेश्वर नहीं है।

आप एक मुसलमान होने के नाते दावा कर रहे हैं कि परमेश्वर आपके संग है, आपकी राहों का उजाला है और सिद्ध रूप में आपकी अगुवाई करता है। तो फिर मैं आपसे एक महत्त्वपूर्ण आत्मिक सवाल पूछना चाहता हूँ। क्या आपने मुक्ति पा ली है और आप पक्के तौर पर कह सकते हैं कि आप स्वर्ग अथवा जन्नत हासिल करेंगे? आपका जवाब, आपके नबी का जवाब और क़ुरआन का जवाब "नहीं" होगा। इसका मतलब यह हुआ कि आपके रब ने आपको आपके भविष्य के लिए आश्वासन नहीं दिया है। ऐसा कैसे हो सकता

है कि आश्वासन देने वाला परमेश्वर आपके संग है, लेकिन आपके पास आश्वासन नहीं है? तो फिर इसका मतलब तो यह हुआ है कि आश्वासन देने वाला परमेश्वर अर्थात सच्चा परमेश्वर आपके संग है ही नहीं, वरना आपके पास आश्वासन जरूर होता। कहने का अर्थ यह है कि आपका धर्म आपको सच्चे परमेश्वर के पास नहीं ले जा सकता। तो फिर हमारे भीतर परमेश्वर की उपस्थिति तभी प्रमाणित हो सकती है, जब परमेश्वर इस पृथ्वी पर ही हमें मुक्ति प्रदान करता है और हमें आश्वासन देता है कि हम स्वर्ग अथवा जन्नत में जा रहे हैं।

तीसरा दार्शनिक मानदण्ड यह है कि परमेश्वर को जानना सम्भव होना चाहिए

सच्चा परमेश्वर वह होता है जिसे व्यक्तिगत तौर पर जानना आपके लिए सम्भव हो और उसके साथ अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर आप उसका अनुकरण कर सकें। आप ऐसे व्यक्ति का अनुकरण कभी नहीं करते, जिसे आप जानते नहीं हैं। परमेश्वर के साथ भी ऐसा ही है। वह नहीं चाहता कि आप आँखें बन्द करके उसके पीछे हो लें या किसी बिचोलिए के द्वारा उसका अनुकरण करें। वह चाहता है कि आप अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उसके साथ एक हों।

सच्चे परमेश्वर को खोजने के लिए सैद्धान्तिक शिक्षा का मानदण्ड

सैद्धान्तिक शिक्षा का पहला मानदण्ड यह है कि परमेश्वर पूर्ण रूप से धर्मी होना चाहिए

इसका अर्थ यह है कि पूर्ण रूप से धर्मी परमेश्वर में बुरे और अनैतिक काम नहीं पाए जाते और न ही वह उन्हें स्वीकृति देता है; क्योंकि उसका खुद का स्वभाव सिद्ध रूप में भला होता है और बुराई से मुक्त होता है। इसलिए अगर आप अपने रब की पुस्तक में देखते हैं कि उसने पाप और बुराई को सृजा है, या कुछ परिस्थितियों में ऐसे कामों को स्वीकृति दी है, तो इसका अर्थ है कि वह रब सच्चा परमेश्वर नहीं हो सकता। अगर आप पता करना चाहते हैं कि आपकी आस्था स्वर्ग पर आधारित है या नहीं, तो आपको अपने रब के शब्दों और कामों का आकलन करना होगा।

सैद्धान्तिक शिक्षा का दूसरा मानदण्ड यह है कि परमेश्वर पूर्ण रूप से न्यायी होना चाहिए

इसका अर्थ है कि परमेश्वर न तो अन्याय की बातें बोल सकता है और न ही अन्याय के काम कर सकता है। उदाहरण के लिए: परमेश्वर अपने नबी को या अगुवों को अन्य लोगों से अधिक अधिकार नहीं दे सकता, क्योंकि वह पूर्ण रूप से न्यायी है। वह न तो पुरुषों को स्त्रियों से अधिक अधिकार दे सकता है और न ही वह पतियों को

अपनी पत्नी की पिटाई करने का अधिकार दे सकता है। वह अपने कुछ अनुयायियों को दूसरों से अधिक अधिकार नहीं दे सकता। वह साम्प्रदायिकता को बढ़ावा नहीं दे सकता और न ही लोगों को उकसा सकता है कि वे दूसरों के अधिकारों को अनदेखा करें। अगर आप पाते हैं कि आपके रब ने ऐसी अन्याय से भरी बातों को स्वीकृति दी हुई है, तो वह सच्चा और न्यायी परमेश्वर नहीं हो सकता।

सैद्धान्तिक शिक्षा का तीसरा मानदण्ड यह है कि परमेश्वर पूर्ण रूप से पवित्र होना चाहिए

इसका अर्थ है कि परमेश्वर न तो खुद पाप कर सकता है, न पाप को पैदा कर सकता है, न पाप के लिए उकसा सकता है, और न ही किसी परिस्थिति में पाप को स्वीकृति दे सकता है। क्या यह सम्भव है कि पवित्र परमेश्वर दूसरों को भ्रष्ट करे और उन्हें पापी बनाए? बिल्कुल नहीं। इसलिए अगर आप देखते हैं कि आपके रब ने दूसरों को भ्रष्ट किया है और उन्हें पापी बनाया है, तो वह पवित्र नहीं हो सकता। ऐसा रब लोगों के लिए एक अच्छा आदर्श नहीं हो सकता।

सैद्धान्तिक शिक्षा का चौथा मानदण्ड यह है कि परमेश्वर प्रेमी और कृपालु होना चाहिए

इसका अर्थ है कि परमेश्वर लोगों का सम्मान करता है और उनसे प्रेम करता है, और अपनी बुद्धि, कृपा और शान्ति के द्वारा लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचता है। क्योंकि परमेश्वर ही है जिसने हमें रचने की इच्छा रखी थी, इसलिए वही है जो हममें एकता लाने के लिए कृपा

और प्रेम से भरे हुए साधन देता है। जैसे माता-पिता अपने बच्चों के साथ करते हैं, वैसे ही वह भी आपके पास प्रेम के साथ आए और आपको सिखाए, ताकि आप भी पूरे जोश के साथ उसके पास आएँ और उसके साथ एक हो जाएँ। परमेश्वर क्रूर नहीं हो सकता, जो आपके चयन की आज़ादी को अनदेखा करे और आपके साथ अन्याय करे। अगर आपके रब में ऐसा प्रेम और ऐसी कृपा नहीं है, तो वह सच्चा परमेश्वर नहीं हो सकता, और उसका धर्म मनुष्यों में प्रेम, कृपा और शान्ति नहीं ला सकता।

अब मैं आपको सच्चे परमेश्वर को खोजने के लिए कुछ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक मानदण्ड देना चाहता हूँ।

सामाजिक मानदण्ड

सच्चा परमेश्वर लिंग, जाति, राष्ट्रीयता, आस्था, पदवी और लोगों में विभाजन लाने वाली हर प्रकार की बात से परे होता है। अगर आपका रब पुरुषों को स्त्रियों से अधिक, स्वामियों को दासों से अधिक और अपने अनुयायियों को दूसरों से अधिक अधिकार देता है तो वह सच्चा परमेश्वर नहीं हो सकता।

राजनीतिक मानदण्ड

सच्चा परमेश्वर तानाशाही की बजाय सादगी से भरे नेतृत्व को स्थापित करता और उसे बढ़ावा देता है। सच्चे परमेश्वर की नज़रों में

सबसे बड़ा व्यक्ति वह होता है जो सबसे अधिक दीन और सबका सेवक होता है। अगर आपका रब अपने नबी को या अपने किसी अनुयायी को तानाशाहों जैसा अधिकार देता है, तो वह सच्चा परमेश्वर नहीं हो सकता।

आर्थिक मानदण्ड

सच्चा परमेश्वर मानता है कि उसके अनुयायियों को और अन्य लोगों को उनके समय और काम के लिए एक समान वेतन मिलना चाहिए। सच्चा परमेश्वर उन लोगों के अधिकारों को न तो सीमित करता है, न उन्हें अनदेखा करता है, और न ही उन पर भारी जज़ीया (टैक्स) लगाता है, जो उसके अनुयायी नहीं हैं।

नैतिक मानदण्ड

सच्चा परमेश्वर कभी भी झूठ, धोखे और किसी भी परिस्थिति में किसी भी प्रकार की अनैतिकता को स्वीकृति नहीं देता। सच्चा परमेश्वर पवित्र परमेश्वर है, और उसकी पवित्रता हमेशा पाप के विरुद्ध होती है, फिर चाहे यह पाप उसके अनुयायी द्वारा या अन्य किसी भी व्यक्ति द्वारा क्यों न किया जाए। अगर आपका रब अपने अनुयायियों से कहता है कि वे दूसरों को धोखा दे सकते हैं या उनसे झूठ बोल सकते हैं, तो फिर वह सच्चा परमेश्वर नहीं हो सकता।

संसार में बहुत सारे झूठे रब और आस्थाएँ पाई जाती हैं। अगर आप यह न सीखें कि सच्चा परमेश्वर कौन है, तो आप यह नहीं समझ पाएँगे कि आप सच्चे परमेश्वर का अनुकरण कर रहे हैं या किसी झूठे रब का। इन मानदण्डों ने मेरी सहायता की कि मैं सच्चे परमेश्वर को खोज पाऊँ और अपने सृजनहार तथा मुक्तिदाता का अद्‌भुत अनुभव हासिल कर पाऊँ। मेरी प्रार्थना है कि ये मानदण्ड आपके लिए भी लाभकारी बन जाएँ, ताकि आप भी परमेश्वर के अनन्त आनन्द में भागी हो सकें।

चिन्तन का समय 5

1. अगर आपको परमेश्वर के स्वरूप में सृजा गया है, तो क्या आप सृजनहार को जानने में सक्षम नहीं हो सकते?
2. अगर हम सही और गलत में, भलाई और बुराई में भिन्नता करने में सक्षम हैं, तो क्या हम सच्चे और झूठे परमेश्वर में भिन्नता करने में सक्षम नहीं हैं?
3. अगर कोई रब लोगों को पाप करने के लिए उकसाता है, तो क्या वह सच्चा परमेश्वर हो सकता है?
4. क्या परमेश्वर के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना अच्छा है या नहीं?
5. हम कब यह प्रमाणित करने में सक्षम हो पाते हैं कि परमेश्वर की उपस्थिति हम में है?

6. परमेश्वर का बेहतर रीति से परिचय कौन दे सकता है; वह जिसका परमेश्वर के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध है, या वह जिसे परमेश्वर के साथ कभी कोई अनुभव प्राप्त नहीं हुआ है?
7. अगर आप विश्वास करते हैं कि परमेश्वर एक व्यक्तिगत परमेश्वर है, तो आप उससे प्रार्थना करें कि वह आपका व्यक्तिगत मार्गदर्शक बने।

इस्लाम के रब और मसीहत के परमेश्वर में अन्तर

कुछ लोग कहते हैं कि मुसलमान और मसीही लोग एक ही परमेश्वर को मानते हैं। वे यह नहीं जानते कि इस्लाम का क़ुरआन जिस रब को पेश करता है वह मसीहत के परमेश्वर से एकदम भिन्न है। इसी कारण, मैं क़ुरआन और बाइबल की विभिन्न आयतों की तुलना करना चाहता हूँ ताकि आप इस्लाम के रब और मसीहत के परमेश्वर में पाई जाने वाली बहुत बड़ी भिन्नता को देख सकें।

पहली भिन्नता: इस्लाम का रब लोगों की मदद करने में सक्षम नहीं है

पिछले अध्यायों में भी मैं कह चुका हैं कि क़ुरआन और मुस्लिम विद्वानों के अनुसार इस्लाम का रब किसी से भी सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम ही नहीं है। इसलिए वह लोगों की मदद करने के लिए उनसे सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। शायद आप कहें कि हालाँकि इस्लाम का रब खुद लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता, तो भी वह लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने और उनकी मदद करने के लिए अपने फरिश्ते भेजता है। यह एक गलत विचारधारा है। क्यों? क्योंकि अगर एक फरिश्ता सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम है, तो फिर वह उस रब के साथ कैसे सम्बन्ध रख सकता है जो खुद दूसरों के साथ सम्बन्ध रखने में सक्षम ही नहीं है,

और ऐसा होने पर वह उसकी ओर से मनुष्यजाति के लिए एक पैगम्बर कैसे बन सकता है। जो रब खुद दूसरों के साथ सम्बन्ध नहीं रख सकता, उसके पास ऐसे पैगम्बर हो ही नहीं सकते जो दूसरों के साथ सम्बन्ध रखने में सक्षम हों।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि इस्लाम के रब से मदद की उम्मीद नहीं रखी जा सकती क्योंकि उसकी प्रकृति ही ऐसी है। परन्तु मसीहत का परमेश्वर लोगों की मदद करने में सक्षम है। बाइबल के परमेश्वर का अपना एक व्यक्तित्व है, वह सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, वह एक क्रियाशील परमेश्वर है और लोगों की मदद कर सकता है। बाइबल में यशायाह की पुस्तक के अध्याय 45 की आयत 2 में मसीहत का परमेश्वर कहता है: मैं तेरे आगे आगे चलूँगा और ऊँची ऊँची भूमि को चौरस करूँगा। सो आप देख सकते हैं कि परमेश्वर अपने लोगों के साथ-साथ चल रहा है।

परमेश्वर ने मसीहत को एक उद्देश्य के साथ सृजा है। हमारे जीवन में एक उद्देश्य आने के लिए परमेश्वर की निरन्तर बनी रहने वाली व्यक्तिगत उपस्थिति और मार्गदर्शन अनिवार्य है। "उपस्थिति और मार्गदर्शन" जैसे शब्द केवल उस परमेश्वर के लिए ही उपयोग में लाए जा सकते हैं जो सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हैं, उस रब के लिए नहीं जो सम्बन्ध स्थापित कर ही नहीं सकता। इसी कारण ईसा (यीशु) मसीह के रसूलों ने लिखा कि उन्होंने परमेश्वर का प्रकाशन प्राप्त किया। रसूल यूहन्ना ने लिखा कि परमेश्वर देहधारी हुआ; और

अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण होकर हमारे बीच में डेरा किया, और हम ने उसकी ऐसी महिमा देखी... (यूहन्ना 1:14 पढ़ें) ।

इस प्रकार आप देख सकते है कि इस्लाम का रब लोगों की मदद करने के लिए खुद को प्रकट करने में सक्षम नहीं है। परन्तु मसीहत का परमेश्वर खुद को प्रकृति के द्वारा प्रकट कर रहा है, लोगों की मदद करने के लिए खुद को प्रकट करता है, और व्यक्तिगत तौर पर लोगों का उद्धार करता तथा उनका मार्गदर्शन करता है।

दूसरी भिन्नता: इस्लाम के रब ने भलाई और बुराई दोनों को सृजा है

मसीहत का परमेश्वर केवल भली वस्तुओं का ही सृजनहार है। इस्लाम के रब को भलाई और बुराई दोनों को ही सृजने के लिए शक्तिशाली बताया गया है तथा उसी ने मनुष्यजाति को पाप करने के लिए उकसाया और उन्हें भ्रष्ट कर दिया। मसीहत के परमेश्वर को केवल भलाई करने के लिए ही शक्तिशाली बताया गया है। उसकी प्रकृति पूरी तरह से पवित्र और धर्मी है। वह तो लोगों को भ्रष्ट करने या पाप को रचने के बारे में सोच भी नहीं सकता।

क़ुरआन में सूरह अल-हदीद (57) की आयत 22, सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 16 और सूरह अश-शम्स (91) की आयत 8 में यह पुष्टि की गई है कि इस्लाम के रब ने ही सारे दुर्भाग्य, पाप और बुराई को अनन्तता से तैयार करके रखा हुआ था और वही इसे सृष्टि में

लेकर आया। परन्तु बाइबल का परमेश्वर पाप को गढ़ने, उसकी योजना बनाने या पाप तथा भ्रष्टता को रचने से बहुत दूर है। प्रेमी, धर्मी, न्यायी, शान्तिप्रिय और कृपालु परमेश्वर लोगों को भ्रष्ट कर ही नहीं सकता। उसका काम तो उन्हें शुद्ध करना है। अगर इस्लाम का रब झूठ और पाप का रचने वाला है, तो फिर वह ईमानदारी से लोगों को न तो सच्चाई के पास बुला पाएगा और न ही उन्हें सच्चाई में ले जा पाएगा।

यह दावा करके कि परमेश्वर ने झूठ और पाप को सृजा है, क़ुरआन लोगों को गुमराह कर रहा है। पाप को रचना ही अपने आप में एक पाप है, इसलिए इस्लाम का रब पापी है, जबकि सच्चा परमेश्वर पापी हो ही नहीं सकता। दूसरी बात, लोग पाप से बचने का कोई कारण ही नहीं ढूँढेंगे, क्योंकि इस्लाम का रब तो खुद भी पाप से नहीं बच पाया। अगर रब ने खुद लोगों के लिए पाप को रचा है, तो फिर लोगों को पाप के लिए अपने दिल क्यों नहीं खोल देने चाहिएँ? पाप को रचने वाला रब समाज में सच्चाई का प्रसार करने में एक बहुत बड़ी बाधा है। सच्चाई तो यह है कि सच्चा परमेश्वर झूठ और पाप की रचना कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी खुद की प्रकृति पवित्र है। इसलिए क़ुरआन जिस रब को पेश कर रहा है, वह सच्चा परमेश्वर हो ही नहीं सकता।

बाइबल का परमेश्वर सच्चा परमेश्वर है। ईसा (यीशु) मसीह की इंजील में 1 यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 2 की आयत 21 में लिखा है, "कोई झूठ, सत्य की ओर से नहीं।" और याकूब की पुस्तक के

अध्याय 3 की आयत 17 में लिखा है, "पर जो ज्ञान ऊपर से आता है वह पहले तो पवित्र होता है फिर मिलनसार, कोमल और मृदु भाव और दया और अच्छे फलों से लदा हुआ और पक्षपात और कपट रहित होता है।"

तीसरी भिन्नता: इस्लाम का रब चयन की आज़ादी के विरुद्ध है

सूरह अल-अहज़ाब (33) की आयत 36 में लिखा है कि किसी को भी इस्लाम के नबी मुहम्मद की बातों को चुनौती देने का अधिकार नहीं है। परन्तु मसीहत का परमेश्वर व्यवस्थाविवरण की पुस्तक के अध्याय 18 की आयत 22 में कहता है कि आपको किसी भी नबी के शब्द आँखें बन्द करके स्वीकार नहीं कर लेने चाहिएँ; बल्कि आपके पास यह अधिकार है कि समझ तथा ज्ञान का सहारा लेते हुए या तो आप उनके शब्दों को स्वीकार करें या फिर ठुकरा दें।

चौथी भिन्नता: इस्लाम का रब सबको बराबरी के अवसर देने के विरुद्ध है

क़ुरआन और अन्य इस्लामिक पारम्परिक पुस्तकों में हम यह पाते हैं कि मुहम्मद के पास अन्य मुसलमानों से अधिक अधिकार हैं, मुस्लिम पुरुषों के पास मुस्लिम महिलाओं से अधिक अधिकार हैं, गोरे मुसलमानों के पास काले मुसलमानों से अधिक अधिकार हैं और सामान्य तौर पर मुसलमानों के पास गैर-मुसलमानों से अधिक

अधिकार हैं।[5] परन्तु मसीह ईसा (यीशु) में विश्वास आप सबको एक दूसरे के साथ बराबरी के अधिकार देता है, फिर चाहे आप यहूदी हों या गैर-यहूदी, चाहे गुलाम हों या आज़ाद, चाहे पुरुष हों या स्त्री (गलातियों 3:28; कुलुस्सियों 3:11)।

पाँचवीं भिन्नता: इस्लाम का रब मानता है कि पुरुषों का दर्जा स्त्रियों से ऊपर है

सूरह अन-निसा (4) की आयत 34 और सूरह साद (38) की आयत 44 में क़ुरआन कहता है कि पुरुषों के पास अपनी पत्नियों को पीटने का भी अधिकार है। सूरह अन-निसा (4) की आयत 15 से 16 के अनुसार पुरुषों को यह अधिकार भी है कि यदि उनकी पत्नियाँ व्यभिचार कर बैठें, तो वे उन्हें एक कमरे में बन्द कर दें, यहाँ तक कि उनकी मृत्यु हो जाए। लेकिन अगर यही गुनाह किसी पुरुष द्वारा किया जाता है तो उसे केवल कुछ कोड़े मारे जाते हैं और छोड़ दिया जाता है।

ईसा (यीशु) मसीह की इंजील ऐसी दिल दहला देने वाली बातों की अनुमति नहीं देती; इसमें इफिसियों की पुस्तक के अध्याय 5 की आयत 25 और 28 में लिखा है कि पुरुष अपनी पत्नी के साथ वैसा प्यार करे जैसा वह अपनी खुद की देह के साथ करता है। मत्ती की

[5] आगामी सन्दर्भों और "इस्लाम में अगुवाई अव्यवस्थित है" शीर्षक वाले पाठ में दिए गए सन्दर्भों को देखें।

पुस्तक के अध्याय 7 की आयत 12 और लूका की पुस्तक के अध्याय 6 की आयत 31 में लिखा है: जो कुछ तुम चाहते हो कि मनुष्य तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो।

छठी भिन्नता: इस्लाम का रब पक्षपात को बढ़ावा देता है

क़ुरआन में सूरह अत-तौबा (9) की आयत 28 में लिखा है कि गैर-मुसलमान अपवित्र हैं; सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 55 में लिखा है कि गैर-मुसलमान बुरे पशु हैं; सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 65; सूरह अल-माइदा (5) की आयत 60 और सूरह अल-जुमा (62) की आयत 5 में लिखा है कि यहूदी और ईसाई सूअर, बन्दर और गधे हैं। परन्तु ईसा (यीशु) मसीह की इंजील बताती है कि यहूदियों में और गैर-यहूदियों में कोई भिन्नता नहीं है। परमेश्वर की दृष्टि में सभी एक समान हैं, क्योंकि परमेश्वर ने सभी को अपने हाथों से अपने स्वरूप में सृजा है।

सातवीं भिन्नता: इस्लाम का रब अनैतिकता लाता है

सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 30 और सूरह यूनुस (10) की आयत 21 में लिखा है कि अल्लाह चालें चलने (धोखा देने) में सबसे माहिर है। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 225, सूरह आले-इमरान (3) की आयत 28 और सूरह अल-नहल (16) की आयत 106

मुसलमानों से कहती हैं कि अगर हालात माँग करें, तो तुम झूठ बोल सकते हो। परन्तु इंजील में 1 यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 2 की आयत 21 में लिखा है: कोई झूठ, सत्य की ओर से नहीं। तौरात में निर्गमन की पुस्तक के अध्याय 23 की आयत 1 और 2 में लिखा है: झूठी बात न फैलाना। अन्यायी साक्षी होकर दुष्ट का साथ न देना। बुराई करने के लिये न तो बहुतों के पीछे हो लेना; और न उनके पीछे फिरके मुक़द्दमे में न्याय बिगाड़ने को साक्षी देना।

क्या आप इन भिन्नताओं को देख पा रहे हैं? मसीहियों का परमेश्वर कहता है कि झूठ न बोलो, जबकि इस्लाम का रब कहता है, जरूरत पड़ने पर झूठ बोला जा सकता है।

आठवीं भिन्नता: इस्लाम का रब तानाशाहों को बढ़ावा देता है

सूरह अल-अंबिया (21) की आयत 23 में लिखा है: जो कुछ वह करता है उससे उसकी कोई पूछ नहीं हो सकती, किन्तु इनसे पूछ होगी। सूरह अल-अहज़ाब (33) की आयत 36 में लिखा है: न किसी ईमानवाले पुरुष और न किसी ईमानवाली स्त्री को यह अधिकार है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले का फ़ैसला कर दें, तो फिर उन्हें अपने मामले में कोई अधिकार शेष रहे। सूरह अल-मुजादला (58) की आयत 20 और 21 में लिखा है: निश्चय ही जो लोग अल्लाह और उसके रसूल का विरोध करते हैं वे अत्यन्त अपमानित लोगों में से हैं। अल्लाह ने लिख दिया है, "मैं और मेरे

रसूल ही विजयी होकर रहेंगे।" निस्संदेह अल्लाह शक्तिमान, प्रभुत्वशाली है।

आप देख सकते हैं कि इस्लाम में पाया जाने वाला नेतृत्व जड़ से लेकर डालियों तक तानाशाही पर आधारित है। लेकिन हम देख सकते हैं कि बाइबल में नेतृत्व लोगों की आज़ादी के लिए तैयार किया गया है।

तौरात में व्यवस्थाविवरण की पुस्तक के अध्याय 18 की आयत 22 में लिखा है कि अगर एक नबी सही नहीं है, तो आपको उससे डरने की और उसकी आज्ञा मानने की जरूरत नहीं है।

> *जब कोई नबी यहोवा के नाम से कुछ कहे, तब यदि वह वचन न घटे और पूरा न हो जाए, तो वह वचन यहोवा का कहा हुआ नहीं; परन्तु उस नबी ने वह बात अभिमान करके कही है, तू उस से भय न खाना।* (व्यवस्थाविवरण 18:22)

यशायाह की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 18 में लिखा है, यहाँ तक कि परमेश्वर भी लोगों से कहता है: आओ, हम आपस में वादविवाद करें। आप देख सकते हैं कि बाइबल में लोगों को यह अधिकार दिया गया है कि वे परमेश्वर से मिली हुई चयन की आज़ादी का उपयोग करके परमेश्वर और उसके नबियों की कही हुई बातों पर भी प्रश्न उठा सकते हैं और अन्धेपन में किए जाने वाले आज्ञापालन से बचे रहे सकते हैं। क्यों? चयन की आज़ादी परमेश्वर की ओर से

है और वह इस आज़ादी का सम्मान करता है। जब ईसा (यीशु) के नेतृत्व की बात होती है तो यह सब और भी अधिक अद्भुत हो जाता है। एक अगुवा होते हुए भी उसने अपने चेलों के पाँव धोए (यूहन्ना 13:5)। और अगुवों की गुणवत्ता के बारे में उसने कहा: तुम जानते हो कि अन्यजातियों के हाकिम उन पर प्रभुता करते हैं; और जो बड़े हैं, वे उन पर अधिकार जताते हैं। परन्तु तुम में ऐसा नहीं होगा; परन्तु जो कोई तुम में बड़ा होना चाहे, वह तुम्हारा सेवक बने; और जो तुम में प्रधान होना चाहे, वह तुम्हारा दास बने। (मत्ती 20:25-27)

इस तरह आप देख सकते हैं कि ईसा (यीशु) सिखा रहा है कि आपको अपने दिल में से तानाशाही के बीज को ही खत्म करना होगा। इससे आपको हर एक व्यक्ति की आज़ादी का सम्मान करने में सहायता मिलेगी, फिर चाहे वे किसी भी राष्ट्रीयता, जाति, रंग और आस्था ही के क्यों न हों।

नौवीं भिन्नता: इस्लाम के रब में बुद्धि की कमी है

यह कैसी बुद्धि है कि अल्लाह खुद ही लोगों को पाप और अधर्म में डालता है और फिर उनसे कहता है कि ऐसा करने के लिए वे उसकी प्रशंसा करें? सच्ची बुद्धि लोगों को पाप की ज़ंजीरों में नहीं जकड़ती, बल्कि उनके लिए आज़ादी की रोशनी बनती है। बाइबल के परमेश्वर ने मनुष्य को पापी बनाकर नहीं सृजा था। मनुष्य के पाप में गिरने का कारण मनुष्य खुद था। परन्तु परमेश्वर ने अपने पिता जैसे हृदय के कारण उन्हें बचाने के लिए बलिदानी कदम उठाए और आज भी ऐसे

कदम उठा रहा है। इस्लाम के रब और मसीहियों के परमेश्वर में बहुत बड़ी भिन्नता है।

दसवीं भिन्नता: इस्लाम के रब ने खुद शैतान को भ्रष्ट किया और उसे मनुष्यजाति का शत्रु बना दिया

सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 16 में लिखा है कि शैतान को गुमराही में डालकर मनुष्यों को धोखा देने वाला अल्लाह ने ही बनाया है। क्यों? क्योंकि उसके मन को भाया कि वह मनुष्यों को लिए मुसीबत खड़ी करने वाले किसी प्राणी को बनाए, खास तौर पर उनके लिए जो उसका विरोध करेंगे। क्या यह बात अजीब नहीं है कि इस रब को क़ुरआन के हर एक अध्याय में दयावान कहा गया है?

मसीहियों का परमेश्वर एकदम भिन्न है। उसने शैतान को भ्रष्ट नहीं किया। शैतान ने अपनी चयन की आज़ादी का खुद गलत इस्तेमाल किया, परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह किया और संसार में पाप तथा अधर्म का जनक बना (उत्पत्ति 1:31; यहेजकेल 28:14-17; यहूदा 6)। परमेश्वर हर पहलू से शैतान के विरुद्ध है और चाहता है कि मनुष्य, यहाँ तक कि उसे अपना शत्रु मानने वाले भी शैतान के हाथों से आज़ादी प्राप्त करें।

ग्यारहवीं भिन्नता: इस्लाम का रब इस्लाम को फैलाने के लिए दुष्टात्माओं का इस्तेमाल करता है

सूरह अल-जिन्न (72) की आयत 1-13 में लिखा है कि इस्लाम को फैलाने के लिए अल्लाह जिन्नों (दुष्टात्माओं) को इस्तेमाल करता है। मुहम्मद की जीवनी (इब्न इशाक़ द्वारा लिखी गई) में पेज 106 और 107 पर लिखा है कि मुहम्मद पक्के तौर पर नहीं जानता कि उस पर प्रकाशित किया गया क़ुरआन का सबसे पहला अध्याय सूरह अल-अलक़ (96) उस पर शैतान द्वारा प्रकाशित किया गया था या अल्लाह द्वारा।

इस्लाम के रब द्वारा अपने मिशन को फैलाने के लिए दुष्टात्माओं को इस्तेमाल किए जाने का कारण यह है कि उसमें खुद में बहुदेववादी रब के गुण पाए जाते हैं। केवल बहुदेववाद में ही दुष्टात्माओं पर भरोसा किया जाता है। सच्चा परमेश्वर अपने धर्म को फैलाने के लिए दुष्टात्माओं के साथ हाथ मिलाकर आगे नहीं बढ़ सकता। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि इस्लाम की संस्कृति को बहुदेववादी संस्कृति से अलग करके देखना बहुत मुश्किल है। बहुदेववादी संस्कृति और आस्थाएँ क़ुरआन का हिस्सा बन चुकी हैं, जिसे पाक और आसमानी किताब कहा जाता है। क़ुरआन में हम यह भी पढ़ते हैं कि दुष्टात्माएँ नबियों की सेवा करती हैं।

मसीहियों का परमेश्वर अपने वचन को फैलने के लिए दुष्टात्माओं का उपयोग नहीं करता, बल्कि वह तो लोगों को दुष्टात्माओं से मुक्त

कराता है और उन्हें चंगा करता है। परमेश्वर पवित्र, न्यायी और धर्मी है, और भली-भाँति जानता है कि दुष्टात्माएँ अन्याय फैलाती हैं तथा सच्चाई के सन्देश के बारे में तो बात कर ही नहीं सकतीं।

बारहवीं भिन्नता: इस्लाम का रब अपने धर्मी अनुयायियों को उनके भविष्य के बारे में पक्का आश्वासन नहीं देता

क़ुरआन में सूरह अल-मरयम (19) की आयत 68 में लिखा है कि धर्मी मुसलमानों को उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद नरक में ले जाया जाता है और वे न्याय के दिन तक दुष्टों के साथ वहीं पर रहेंगे। इस आयत ने कट्टरपन्थी मुसलमानों में, यहाँ तक कि मुहम्मद में भी बहुत डर पैदा किया था और वे इस बात को बिल्कुल भी पक्के तौर पर नहीं जानते कि वे न्याय में खरे उतरेंगे या नहीं। अनिश्चितता पैदा करने वाले इस आत्मिक डर ने सभी कट्टरपन्थी मुसलमानों के दिलों को तोड़ा है और उनमें से किसी के पास भी इस प्रश्न का पक्का जवाब नहीं है कि वे बचाए जाएँगे या नहीं। उनका जवाब सिर्फ इतना ही होता है, "सिर्फ अल्लाह ही जानता है।"

परन्तु धर्मी मसीही अपनी मृत्यु के तुरन्त बाद स्वर्ग में परमेश्वर के पास जाएँगे। मसीहियों के लिए जीवन और मृत्यु का सवाल इसी जीवन में सुलझा दिया जाता है। अगर आप ईसा (यीशु) पर ईमान लाते हैं, जो इस समय जीवित है और स्वर्ग में है, तो पृथ्वी पर अपने जीवनकाल के दौरान ही आप अनन्त जीवन के राज्य में प्रवेश कर

जाते हैं। अगर आप ऐसा करते हैं तो आप न्याय में से पार हो जाएँगे और मौत के बाद आपका न्याय नहीं होगा। आप सीधे स्वर्ग ले जाए जाएँगे।

तेरहवीं भिन्नता: इस्लाम का रब संसार की पहुँच से बाहर है

इस्लाम के अनुसार इस संसार में जीवित रहते हुए परमेश्वर के राज्य में पहुँच पाना सम्भव ही नहीं है। क्योंकि परमेश्वर तक नहीं पहुँचा जा सकता, इसलिए उसके राज्य में भी प्रवेश नहीं किया जा सकता।

अपने रोजाना के जीवन में मुसलमान अक्सर बोलते हैं कि परमेश्वर उनके संग है। लेकिन यह बात क़ुरआन और इस्लाम की शिक्षा के विरुद्ध है, जिसमें यह माना जाता है कि परमेश्वर खुद को प्रकट नहीं करता। जबकि मसीहियों का परमेश्वर खुद को प्रकट करता है और उस तक हमारी पहुँच सम्भव है। उसने आपको बचाने के लिए तथा अपने साथ एक करने के लिए खुद को ईसा (यीशु) मसीह में प्रकट किया, ताकि आप उसके साथ अनन्त सम्बन्ध रख सकें। जब आप ईसा (यीशु) के नाम से मुक्ति पाकर उसके पास आते हैं, तो आप हमेशा के लिए उसके हो जाते हैं और कोई भी आपको उससे जुदा नहीं कर पाएगा।

चौदहवीं भिन्नता: इस्लाम के रब का स्वर्ग सांसारिक प्रतीत होता है

पूरे क़ुरआन में इस्लाम की जन्नत में परमेश्वर की उपस्थिति का कोई हवाला नहीं दिया गया है। लेकिन क़ुरआन लगातार दावा करता है कि सारे जिहादियों और अल्लाह का फ़ज़ल पाने वाले सारे लोगों को जन्नत नसीब होगी, जो वहाँ पहुँचकर कुँवारियों के साथ ऐश परस्ती करेंगे (क़ुरआन 37:48; 78:33)। यह धारणा मुहम्मद के समय में बहुदेववादियों में बहुत प्रचलित थी।

मसीहियों की पवित्र पुस्तक में बताया गया स्वर्ग पुरुषों की वासना को पूरा करने की अड्डा नहीं है और यह इस्लामिक जन्नत के एकदम विपरीत है। यह परमेश्वर का सिंहासन है, यह परमेश्वर के साथ अनन्त शान्ति और आनन्द का स्थान है। मसीह ने अपनी इंजील में सिखाया है कि उसके अनुयायी स्वर्ग में परमेश्वर के संग रहेंगे (यूहन्ना 14:1-6)। ईसा (यीशु) मसीह की इंजील कहती है:

सब जातियों, सब कुलों, सब लोगों और सब भाषाओं में से एक बड़ी भीड़ परमेश्वर के सिंहासन के सामने खड़ी होगी और उद्धार के लिए उसकी स्तुति करेगी (प्रकाशितवाक्य 7:9)।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि मसीहियों की पवित्र पुस्तक में बताया गया स्वर्ग इस्लामिक जन्नत की अनैतिकताओं से बिल्कुल भिन्न है। मसीहियों का परमेश्वर इस्लाम के रब से एकदम भिन्न है।

वह हर पहलू से अल्लाह से कहीं अधिक भरोसेमन्द और उत्तम है (प्रकाशितवाक्य 19:16)।

मैंने ये सारे कारण आपके सामने इसलिए रखे हैं ताकि आप खुद ईसा (यीशु) मसीह की इंजील पढ़ने के लिए प्रोत्साहित हों और सच्चाई को अपनी आँखों से देखें। मेरे साथ समय बिताने के लिए आपका धन्यवाद!

चिन्तन का समय 6

1. क्या इस्लाम का रब अपने लोगों के संग चल सकता है और उनके जीवन को उद्देश्य दे सकता है? क्यों?
2. सब लोगों को क़ुरआन के रब की बजाय बाइबल के परमेश्वर पर ईमान लाने की जरूरत क्यों है?
3. क्या इस्लाम के रब के गुण उसका अनुकरण करने वाले लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं?
4. हमारे लिए यह कितना महत्त्वपूर्ण है कि हम सच्चे परमेश्वर का अनुकरण करें और दूसरों के सामने उसे प्रकट करें?
5. आइए सच्चे परमेश्वर से कहें कि वह व्यक्तिगत तौर पर हमारी अगुवाई करे ताकि हम दूसरों के सामने उसकी सच्चाई का प्रतिबिम्ब बन सकें।

क्या इस्लाम का रब एक अच्छा मार्गदर्शक हो सकता है?

इस सवाल का जवाब हम तब तक सही रीति से नहीं दे पाएँगे, जब तक कि हम एक अच्छे मार्गदर्शक के गुणों को न समझ लें और यह न देख लें कि हमारे विवेक की आँखों से उसका काम कैसा दिखना चाहिए। आइए एक अच्छे मार्गदर्शक के गुणों और कामों को देखें।

एक अच्छा मार्गदर्शक अपने अनुयायियों को एक अच्छी और सुरक्षित मंज़िल दिखाता है

आपको अपनी मंज़िल पर पहुँचना है; वहाँ पहुँचने का रास्ता वह जानता है और आपको उसके सटीक, सीधे, खरे और कोमलता से भरे मार्गदर्शन की आवश्यकता है। जब एक अच्छा मार्गदर्शक आपसे वादा करता है कि वह आपको आपकी मंज़िल तक लेकर जाएगा, तो इसका अर्थ है कि वह अपने वादे पर खरा उतरेगा और किसी भी कीमत पर उसे पूरा करेगा। वह आपको गारण्टी देता है कि आपको आपकी मंज़िल तक पहुँचाएगा; खास तौर पर इसलिए क्योंकि वह हर एक बाधा को तोड़ने के लिए सामर्थी है, तब उस पर आपका भरोसा 100% स्थिर हो जाता है। एक अच्छा मार्गदर्शक मंज़िल तक पहुँचने तक रास्ते में आने वाले सब जोखिमों और खतरों को जानता है और उनमें से हर एक का सामना करने का सर्वोत्तम समाधान उसके पास होता है। एक अच्छा मार्गदर्शक कभी भी बुरे लोगों के साथ

हाथ नहीं मिलाता कि वह उसके खुद के अनुयायियों के विरुद्ध जोखिम बन जाएँ, बल्कि वह तो उनके खिलाफ खड़ा होता है ताकि अपने अनुयायियों के दिलों में अडिग भरोसा कायम करे।

क्या अल्लाह के पास अपने अनुयायियों के लिए एक सुरक्षित और भली मंज़िल मौजूद है और क्या वह उन्हें आश्वासन देता है कि वह खुद उनके लिए एक जोखिम नहीं बनेगा? क्या उसमें ऐसे गुण मौजूद हैं कि लोग उस पर भरोसा कर सकें कि वह उनकी सुरक्षित अगुवाई करेगा? आइए देखें कि अल्लाह के साथ होने वाले सफर की मंज़िल क्या है।

क़ुरआन में सूरह अल-मरयम (19) की आयत 67 से 72 में से हम सीखते हैं कि अल्लाह अपने धर्मी अनुयायियों को बुरे लोगों के साथ इकट्ठा करके नरक में ले जाएगा ताकि वहाँ पर उनका न्याय हो। न्याय के बाद बुरे लोग नरक में ही रहेंगे, लेकिन धर्मियों में से वे थोड़े से लोग ही जन्नत जा पाएँगे जिनके भले काम उनके बुरे कामों से अधिक होंगे और साथ ही अगर वे सीरत[6] के सकरे पुल पर से चलकर पा हो पाएँगे।

---

[6] इस्लाम की मान्यता है कि नरक और जन्नत के बीच में 'सीरत' नाम का एक बहुत सकरा पुल है, जो तलवार की धार जितना ही चौड़ा है। ऐसा माना जाता है कि केवल धर्मी लोग ही उस पर चलते हुए पार होकर जन्नत में प्रवेश कर सकते हैं। लेकिन इस्लाम के नबी में भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह इस पुल को पार करने के काबिल होगा।

इन आयतों में इस्लाम का रब अपने धर्मी मुसलमानों से कुछ ऐसा कह रहा है, "सुनो, तुम मुझे खुश करने के लिए दूसरों से अधिक विश्वासयोग्य रहे हो। लेकिन मैं तुम्हें इसका फल देने की गारण्टी नहीं दे सकता। हो सकता है कि इतना सब करने के बाद भी तुम्हें नरक में ही रहते हुए अनन्तकाल के लिए तड़पना पड़े।" कितना बढ़िया मार्गदर्शक है यह!

आप देख सकते हैं कि इस्लाम के रब के मार्गदर्शन में बुरे लोगों को वह मिल रहा है जिसके वे लायक हैं। उन्होंने इस संसार वह सब किया जो वे करना चाहते थे, वे जानते थे कि वे नरक ही के लायक हैं और अब अल्लाह उन्हें नरक ले जा रहा है। लेकिन अल्लाह के बेचारे धर्मी अनुयायियों ने अल्लाह पर भरोसा रखा और खुद को हर एक सांसारिक वस्तु से दूर रखा और यह उम्मीद रखी कि अल्लाह उन्हें जन्नत ले जाएगा, लेकिन अब उन्हें पता चल रहा है कि उनकी मंज़िल भी वही है, जो बुरे लोगों की है। वाह!

इस प्रकार अधर्मियों के लिए क़ुरआन का सन्देश साफ है; लेकिन इसमें उन्हें कोई अच्छी खबर नहीं मिलती, वे नरक में सड़ते रहेंगे। लेकिन इसमें तो धर्मी मुसलमानों के लिए भी कोई अच्छी खबर नहीं है; हो सकता है कि उन्हें भी नरक में ही सड़ना पड़े। इसमें कोई शक नहीं है कि अल्लाह उनका बैरी है जो इस्लाम को कबूल नहीं करते। इन आयतों के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि वह तो अपने धर्मी मुसलमानों पर भी दया नहीं करेगा। वह तो अपने धर्मी मुसलमानों के विरुद्ध एक बैरी जैसा बर्ताव करता है। क़ुरआन के हर एक सूरह

के आरम्भ में वह खुद ऐलान करता है कि "अल्लाह बड़ा कृपाशील अत्यन्त दयावान है," लेकिन अपने धर्मी मुसलमानों के साथ ही कठोरता से बर्ताव करता हुआ उन्हें नरक ले जाता है ताकि वहाँ पर उनका न्याय करे।

ऐसा क्यों होगा कि एक रब, जो खुद को दयावान कहता है, धर्मियों के साथ वैसा ही बर्ताव करेगा जैसा वह अधर्मियों के साथ करता है? क्या क़ुरआन के अनुसार "दया" की परिभाषा यही है? अगर अल्लाह की दया अपने धर्मी मुसलमानों की रक्षा ही नहीं कर पा रही है तो फिर इसके अलावा और क्या नतीजा निकाला जा सकता है कि अल्लाह की दया विश्वासघाती और अत्याचारी है? यह अल्लाह के गुमराह करने वाले स्वभाव का एक बहुत अच्छा उदाहरण है।

क्या ऐसा नहीं होना चाहिए कि सच्चा परमेश्वर अपने सब धर्मियों को सीधे स्वर्ग में ले जाए? जी हाँ। सच्चा परमेश्वर ऐसा ही करता है। लेकिन इस्लाम का रब ऐसा नहीं करता, क्योंकि वह सच्चा परमेश्वर नहीं है। कोई मुसलमान अपने इस्लाम के रब के लिए चाहे जितने भी धर्मी क्यों न बने रहें, वह उन्हें पहले नरक लेकर जाएगा और उस भयानक स्थान में उनका न्याय करेगा। और यह भी सम्भव है कि उन्हें हमेशा के लिए वहीं रहना पड़े।

क़ुरआन में लिखा है कि जन्नत में प्रवेश अनिश्चित है

सूरह लुक़मान (31) की आयत 34 में लिखा है: निस्संदेह उस घड़ी का ज्ञान अल्लाह ही के पास है ... कोई व्यक्ति नहीं जानता कि कल वह क्या कमाएगा ...।

कहने का भाव यह है कि इस्लाम का रब जानता है कि कौन सा धर्मी नरक में रहेगा, लेकिन वह यह रहस्य किसी को नहीं बताता, यहाँ तक कि मुहम्मद को भी नहीं। उसने अपने सभी धर्मियों को अनिश्चितता में छोड़ दिया है।

क्या आप इस्लाम के रब के मार्गदर्शन से हैरान नहीं हैं? वह आपसे कहता है कि आप उसके पीछे हो लें, लेकिन आप यह जानते ही नहीं है कि वह आपको कहाँ ले जा रहा है। क्या आप ऐसे किसी व्यक्ति के पीछे हो लेते हैं जो अपने मनसूबों को गुप्त रखता है और आपको बताता तक नहीं कि वह आपको कहाँ ले जा रहा है? अगर आप ऐसा नहीं करते, तो फिर आप ऐसे रब के पीछे कैसे हो सकते हैं, जो आपके साथ ऐसा ही करता है? इस्लाम के रब ने तो मुहम्मद को भी अनिश्चितता में छोड़ दिया था।

सूरह अल-अहक़ाफ़ (46) की आयत 9 में मुहम्मद कहता है: मैं नहीं जानता कि मेरे साथ क्या किया जाएगा और न यह कि तुम्हारे साथ क्या किया जाएगा।

आप देख सकते हैं कि इस्लाम के नबी ने भी ऐसे रब का अनुकरण किया, जिसके मनसूबे गुप्त हैं और इसी कारण वह खुद की मुक्ति को लेकर भी सुनिश्चित नहीं है। क्या यह खेद की बात नहीं है कि मुहम्मद और बाकी के धर्मी मुसलमान न तो जानते थे और न ही उनमें आश्वासन था कि वे कहाँ जा रहे हैं, लेकिन फिर भी उन्होंने दूसरों को भी इस अज्ञात भविष्य की ओर धकेल दिया? यहाँ तक कि उन्होंने ऐसे अनेक लोगों को मौत के घाट उतार दिया जिन्होंने उनका अनुकरण नहीं किया।

इससे भी अधिक खेद की बात तो यह है कि अल्लाह के मार्गदर्शन की इस अनिश्चितता को मुहम्मद ने "शुभ समाचार" कहा! सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 188 में मुहम्मद कहता है: यदि मुझे परोक्ष (ग़ैब) का ज्ञान होता तो बहुत-सी भलाई समेट लेता और मुझे कभी कोई हानि न पहुँचती। मैं तो बस सचेत करनेवाला और शुभ-समाचार देने वाला हूँ, उन लोगों के लिए जो ईमान लाएँ।

इस आयत में मुहम्मद कहना चाहता है कि परमेश्वर की धार्मिकता को कमाने की बजाय उसने शैतान के लाए हुए बुरे कामों को कमाया, क्योंकि परमेश्वर ने उसे पर्याप्त ज्ञान और बुद्धि नहीं दी। इस आयत के अन्त में लिखा है कि मुहम्मद तो सचेत करने वाला और शुभ समाचार देने वाला है। इस ज्ञान की कमी को, भले कामों की कमी को और बुराई के स्पर्श को "शुभ समाचार" कह रहा है। क्या आप इस पर विश्वास कर सकते हैं? क्या आप ज्ञान की कमी को शुभ समाचार कहते हैं? क्या आप उस खबर को "अच्छी खबर" कह

सकते हैं, तो आपको बुराई की ओर से मिलती है? क्या आप नरक में प्रवेश को शुभ समाचार कहते हैं? क्या आप जन्नत जाने की अनिश्चितता को शुभ समाचार कहते हैं? क्या आप अल्लाह द्वारा धर्मी मुसलमानों को त्याग दिया जाना शुभ समाचार कहते हैं? क्या आप अल्लाह को सचमुच एक अच्छा आत्मिक मार्गदर्शक बुलाते हैं, जिसने अपने नबी और अनुयायियों को उनके भविष्य के बारे में अनिश्चितता में रखा हुआ है?

काश कि आप इंजील पढ़ें और देखें कि कैसे परमेश्वर अपने अनुयायियों की देखभाल करता है। वह सिखाता है कि जीवन की सुनिश्चितता से बढ़कर महत्त्वपूर्ण और कुछ नहीं है।

मुहम्मद का भविष्य बनाम बाइबल के नबियों का भविष्य

आइए मुहम्मद के भविष्य में और बाइबल के नबियों के भविष्य में भिन्नता को देखें।

तौरात में निर्गमन की पुस्तक के अध्याय 32 की आयत 31-32 में लिखा है कि मूसा का नाम अनन्त जीवन की पुस्तक में लिखा हुआ है और वह स्वर्ग का वासी है। इस प्रकार जब मूसा अपने अनुयायियों के मध्य जीवित था, तभी से वह जानता था कि वह बचाया गया है और परमेश्वर ने स्वर्ग में उसके लिए एक स्थान तैयार किया हुआ है। नबी दानिय्येल अपनी पुस्तक के अध्याय 12 की आयत 1 में कहता

है कि परमेश्वर के लोगों के नाम अनन्त जीवन की पुस्तक में लिखे हुए हैं। बाइबल का यह नबी कहता है कि सच्चे परमेश्वर के लोगों पर किसी तरह का कोई डर नहीं आना चाहिए क्योंकि उनका अनन्त स्थान स्वर्ग में परमेश्वर के साथ है।

मूसा, दानिय्येल, अन्य नबियों और परमेश्वर के सभी अनुयायियों के नाम जीवन की पुस्तक में लिखे हुए हैं। लेकिन क़ुरआन में लिखा है कि न तो मुहम्मद का नाम और न ही किसी मुसलमान का नाम जीवन की पुस्तक में लिखा है। इस्लाम में कोई भी व्यक्ति अपने भविष्य को लेकर सुनिश्चित नहीं है। क्या आप इस भिन्नता को देख पा रहे हैं?

ईसा (यीशु) मसीह अपने अनुयायियों का मार्गदर्शन करता है और उन्हें आश्वासन देता है

इंजील बताती है कि जिस समय से ही आप ईसा (यीशु) पर ईमान लाते हैं, उसी घड़ी से ही नरक के साथ आपका नाता टूट जाता है और आप बुराई से बचाए जाते हैं। पृथ्वी पर जीवन के लिए मुक्ति का आश्वासन ही इंजील का केन्द्रीय सन्देश है, क्योंकि सच्चा परमेश्वर अपने लोगों को अनिश्चितता में नहीं छोड़ता।

ईसा (यीशु) ने इंजील में यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 5 की आयत 24 में कहा: मैं तुमसे सच सच कहता हूँ, जो मेरा वचन सुनकर मेरे भेजने वाले पर विश्वास करता है, अनन्त जीवन उसका है; और उस

पर दण्ड की आज्ञा नहीं होती परन्तु वह मृत्यु से पार होकर जीवन में प्रवेश कर चुका है।

क्या यह खेद की बात नहीं है कि मुस्लिम अगुवे आश्वासन से भरी तौरात और इंजील को नापाक किताबें बोलते हैं, जबकि क़ुरआन को पाक किताब बोलते हैं, जबकि उसमें आश्वासन है ही नहीं?

अल्लाह लोगों को गुमराह करता है

मैं अल्लाह के मार्गदर्शन की तरीके के बारे में आपको कुछ और हैरानीजनक बातें बताना चाहता हूँ। एक तो अल्लाह अच्छा मार्गदर्शक नहीं है, उसके ऊपर वह लोगों को गुमराह भी करता है। क़ुरआन में सूरह इब्राहीम (14) की आयत 4 में लिखा है कि अल्लाह जिसे चाहता है पथभ्रष्ट कर देता है।

कल्पना करें कि एक मार्गदर्शक की छाती पर यह नोटिस लिखा है, "मैं लोगों को गुमराह करता हूँ।" क्या आप ऐसे व्यक्ति पर भरोसा करेंगे कि वह आपकी अगुवाई करे? अगर नहीं, तो फिर आपको अल्लाह पर भी भरोसा नहीं करना चाहिए क्योंकि वह लोगों को पथभ्रष्ट करता है।

मैं आपको अल्लाह के मार्गदर्शन का एक और दिल तोड़ देने वाला उदाहरण देना चाहता हूँ। सूरह अन-निसा (4) की आयत 88 में लिखा है: क्या तुम उसे मार्ग पर लाना चाहते हो जिसे अल्लाह ने

गुमराह छोड़ दिया है? हालाँकि जिसे अल्लाह मार्ग न दिखाए, उसके लिए (ओ मुहम्मद) तुम कदापि कोई मार्ग नहीं पा सकते।

क़ुरआन के इस अध्याय में इस्लाम का रब कह रहा है कि जिसे वह पथभ्रष्ट कर देता है, उसके लिए तो मुहम्मद की दुआएँ भी बेकार हैं। आप ऐसे किसी के पीछे क्यों हो लेना चाहते हैं, जो आपके इस तरह से पथभ्रष्ट कर सकता है कि आपकी वापसी का कोई समाधान ही नहीं बचेगा? इस प्रकार आप देख सकते हैं कि इस्लाम में आप एक ऐसे रब के सामने खड़े हैं, जो आपसे साफ-साफ तौर पर कह रहा है कि वह खुद आपके आत्मिक जीवन के लिए सबसे बड़ा खतरा है और अगर आप उस पर भरोसा रखेंगे तो आपको कोई भी नहीं बचा पाएगा।

इसी कारण मैंने इस्लाम छोड़ दिया। मैंने पहचान लिया कि एक ओर तो इस्लाम का रब एक अच्छा मार्गदर्शक नहीं है, वहीं दूसरी ओर वह मेरे आत्मिक जीवन के लिए भी खतरा है। इसलिए मुसलमान रहने का मेरे लिए एकमात्र अर्थ मेरे आत्मिक जीवन का नुकसान था।

बाइबल में परमेश्वर एक अच्छे चरवाहे के समान है

अब मैं आपको बाइबल में से कुछ उदाहरण देना चाहता हूँ। आप बाइबल के परमेश्वर का अपने लोगों के लिए प्रेमी दिल देखकर हैरान रह जाएँगे और समझ पाएँगे कि मैंने मसीहियों के परमेश्वर का अनुकरण करने का फैसला क्यों लिया। देखें कि बाइबल का परमेश्वर अपने अनुयायियों के लिए क्या करता है।

तौरात (उत्पत्ति 48:15) में याकूब कहता है: परमेश्वर मेरे जन्म से लेकर आज के दिन तक मेरा चरवाहा बना है।

नबी दाऊद भजन संहिता की पुस्तक के अध्याय 23 की आयत 1 और 3 में कहता है: यहोवा मेरा चरवाहा है; ... वह मेरे जी में जी ले आता है। धर्म के मार्गों में वह अपने नाम के निमित्त मेरी अगुवाई करता है।

नबी यशायाह कहता है: वह (परमेश्वर) चरवाहे के समान अपने झुण्ड को चराएगा, वह भेड़ों के बच्चों को अँकवार में लिए रहेगा और दूध पिलाने वालियों को धीरे-धीरे ले चलेगा (यशायाह 40:11)।

नबी यहेजकेल कहता है: मैं आप ही अपनी भेड़-बकरियों का चरवाहा हूँगा, और मैं आप ही उन्हें बैठाऊँगा, परमेश्वर यहोवा की यही वाणी है (यहेजकेल 34:15)।

देखिए कि खुद ईसा (यीशु) क्या कहता है: अच्छा चरवाहा मैं हूँ; अच्छा चरवाहा भेड़ों के लिये अपना प्राण देता है (यूहन्ना 10:11)।

बाइबल के परमेश्वर का दिल क़ुरआन के रब के दिल से एकदम भिन्न है।

इस्लाम का रब स्थिर नहीं है

मैं आपको कुछ अन्य उदाहरण भी देना चाहता हूँ कि इस्लाम का रब सच्चा परमेश्वर और अच्छा मार्गदर्शक क्यों नहीं हो सकता।

पहले पहल तो इस्लाम के रब का मानना था कि अपने धर्म को दूसरों पर थोपा नहीं जाना चाहिए।

जब मुहम्मद मक्का में था और उसके पास ज्यादा अनुयायी और राजनीतिक ताकत नहीं थी, उस समय उसके रब ने सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 256 में इस तरह कहा था: धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं। और सूरह अल-कहफ़ (18) की आयत 29 उसने मुहम्मद से कहा था: यह सत्य है तुम्हारे रब की ओर से। तो अब जो कोई चाहे माने और जो चाहे इनकार कर दे।

लेकिन आगे चलकर इस्लाम के रब ने अपना मन बदल लिया। जब मुहम्मद के अनुयायियों की गिनती बहुत बढ़ गई और उसने अपनी एक फौज तैयार कर ली, तब उसके रब ने सूरह अत-तौबा (9) की आयत 33 में उससे कहा कि इस्लाम को बाकी सब धर्मों पर विजयी कर दे।

सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 12 अल्लाह कहता है: मैं इनकार करनेवालों के दिलों में रोब डाले देता हूँ। तो तुम उनकी गरदनें मारो और उनके पोर-पोर पर चोट लगाओ!

फिर से हम देखते हैं कि जब मुहम्मद की ताकत कम थी, तब उसके रब ने सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 62 में कहा था: निस्संदेह, ईमानवाले और जो यहूदी हुए और ईसाई और साबिई, जो भी अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान लाया और अच्छा कर्म किया तो ऐसे लोगों का उनके अपने रब के पास (अच्छा) बदला है, उनको

न तो कोई भय होगा और न वे शोकाकुल होंगे। लेकिन सूरह अल-बय्यिनह (98) की आयत 6 में लिखा है: निस्संदेह किताबवालों और मुशरिकों (बहुदेववादियों) में से जिन लोगों ने इनकार किया है, वे जहन्नम की आग में पड़ेंगे; उसमें सदैव रहने के लिए। वही पैदा किए गए प्राणियों में सबसे बुरे हैं।

क्या आप देख सकते हैं कि इस्लाम का रब क्या कर रहा है? पहले वह यहूदियों और मसीहियों से कहता है कि अगर वे अपने ईमान पर कायम रहें तो वे जन्नत जाएँगे। लेकिन आगे चलकर वह कहता है कि अगर में इस्लाम को कबूल नहीं करेंगे तो वे नरक जाएँगे। क्या सच्चा परमेश्वर ऐसी उलझन पैदा करता है? जो रब खुद ही उलझन में वह दूसरों की सही रास्ते पर अगुवाई कैसे कर सकता है?

एक सूरह में तो इस्लाम का रब अपने ही शब्दों का विरोध करता है। सूरह आले-इमरान (3) की आयत 55 में लिखा है: तेरे अनुयायियों (ईसाइयों) को क़ियामत के दिन तक उन लोगों के ऊपर रखूँगा, जिन्होंने (ईसा अर्थात यीशु का) इनकार किया। लेकिन इसी सूरह की आयत 19 और 85 में वह कहता है: दीन (धर्म) तो अल्लाह की नज़र में इस्लाम ही है। इस्लाम के अतिरिक्त कोई और दीन (धर्म) स्वीकार न किया जाएगा।

क्या यह बात हैरानीजनक नहीं है कि एक सूरह में अल्लाह कहता है कि उसके लिए मसीह का अनुकरण करना सबसे ऊपर का आत्मिक अधिकार है, लेकिन फिर वह अपनी कही हुई बात को भूल जाता है

और इसी सूरह में कहता है कि हर एक को इस्लाम का ही पालन करना होगा?

सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 65 में इस्लाम का रब कहता है कि वह उन यहूदियों से नफरत करता है, जिन्होंने मूसा की शरीअत में बताए गए सब्त के दिन अर्थात शनिवार के मानने में मर्यादा का उल्लंघन किया था और उन्हें कहा कि वे बन्दर बन जाएँ। वहीं दूसरी ओर वह मुसलमानों से कहता है कि यहूदियों से जबरन सब्त को छुड़वाएँ, उन्हें मुसलमान बनाएँ और उनसे शुक्रवार की नमाज पढ़वाएँ।

क्या यह अजीब बात नहीं है? एक ओर तो इस्लाम का रब यहूदियों से कहता है कि अपना दीन धर्म न छोड़ो, लेकिन दूसरी ओर अगर वे सब्त को छोड़कर मुसलमान नहीं बनते तो उनकी हत्या करवाता है!

क्या एक ईमानदार और सर्वज्ञानी परमेश्वर ऐसा कर सकता है कि एक दिन तो वह कहे कि ये धर्म अच्छे हैं, लेकिन अगले दिन अपना मन बदल ले और कहे कि ये धर्म बुरे हैं और उनके अनुयायियों को मार डाला जाना चाहिए? बिल्कुल नहीं। इस्लाम के रब ने ठीक ऐसा ही किया क्योंकि वह सच्चा परमेश्वर और मार्गदर्शक नहीं है।

अल्लाह मुसलमानों को ईसा (यीशु) के बारे में भी गुमराह करता है

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 55 में लिखा है: ऐ ईसा! मैं तुझे अपने क़ब्ज़े में ले लूँगा और तुझे अपनी ओर उठा लूँगा और अविश्वासियों (की कुचेष्टाओं) से तुझे पाक कर दूँगा। लेकिन सूरह अन-निसा (4) की आयत 157 और 158 में लिखा है कि यहूदियों ने ईसा (यीशु) को सूली पर नहीं चढ़ाया और न ही उसका क़त्ल किया, बल्कि परमेश्वर ने उसे अपने पास उठा लिया। साथ ही, सूरह अल-माइदा (5) की आयत 117 में लिखा है कि ईसा (यीशु) ने परमेश्वर से कहा: ... जब तक मैं उनमें रहा उनकी ख़बर रखता था, फिर जब तूने मुझे उठा लिया (فَلَمَّا تَوَفَّيْتَنِي = फ़लाम्मा तवाफ़ायतानी) तो फिर तू ही उनका निरीक्षक था...। और सूरह अल-मरयम (19) की आयत 33 में लिखा है कि ईसा (यीशु) ने कहा: सलाम है मुझपर जिस दिन कि मैं पैदा हुआ और जिस दिन कि मैं मरूँ और जिस दिन कि जीवित करके उठाया जाऊँ!

सो आप खुद ही साफ तौर पर देख सकते हैं कि कैसे इस्लाम का रब मुसलमानों को ईसा (यीशु) के बारे में गुमराह करता है। एक ओर तो वह कहता है कि ईसा (यीशु) की मौत हुई, लेकिन दूसरी ओर वह कहता है कि ईसा (यीशु) मरा ही नहीं। अल्लाह का मार्गदर्शन लोगों को उलझा देता है और उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

अल्लाह के अपने ही शब्दों के साथ विरोधी सन्देशों के दो और उदाहरण मैं आपको देना चाहता हूँ।

सूरह अल-अंबिया (21) की आयत 34 और 35 में अल्लाह मुहम्मद से कहता है कि उसने मुहम्मद से पहले भी किसी के लिए अमरता नहीं रखी। हर जीव को मौत का स्वाद चखना है...। सूरह आले-इमरान (3) की आयत 185 में फिर से लिखा है कि प्रत्येक जीव मृत्यु का स्वाद चखने वाला है।

इन आयतों के अनुसार मुहम्मद से पहले के सभी लोगों की, यहाँ तक कि मूसा, ईसा (यीशु), और अन्य लोगों की भी मौत हुई और मुहम्मद की भी मौत होगी।

क्या इस्लाम का रब जानता है कि वह क्या कर रहा है? वह फिर से पक्के तौर पर सूरह आले-इमरान, सूरह अल-माइदा, सूरह मरयम और सूरह अल-अंबिया में कहता है कि ईसा (यीशु) की मौत हुई और सभी को मरना होगा, लेकिन सूरह अन-निसा में वह ईसा (यीशु) की मौत से इनकार करता है। इसका अर्थ यह हुआ है कि इस्लाम का रब पक्के तौर पर जानता ही नहीं है कि वह क्या कहना चाहता है और ईसा (यीशु) के साथ क्या हुआ था। इतनी बड़ी उलझन? क्या सच्चा परमेश्वर इस तरह उलझन में पड़ सकता है? बिल्कुल नहीं।

इसके साथ ही, इस्लाम का रब यह भी कहता है कि मुहम्मद की मौत हुई लेकिन ईसा (यीशु) जिन्दा है और स्वर्ग में है। ईसा (यीशु) जिन्दा है और मुहम्मद मर चुका है! तो फिर अल्लाह ने मुसलमानों को ईसा

(यीशु) का अनुयायी होने के लिए क्यों नहीं कहा, जो हमेशा के लिए जिन्दा है, लेकिन मुहम्मद के अनुयायी होने के लिए कहा, जो कि हमेशा के लिए मर चुका है?

ऐसा क्यों हुआ कि क़ुरआन में ऐसे रब के बारे में बताया गया है जो लोगों को गुमराह करता है और अपने धर्मी अनुयायियों को नरक ले जाता है?

बहुदेववाद का प्रभाव

केवल बहुदेववादी ही मानते हैं कि उनके देवता ऐसे काम कर सकते हैं। मुहम्मद ने बहुदेववादियों की मूर्तियों को तो नाश कर दिया, लेकिन वह यह नहीं पहचान पाया कि परमेश्वर की जो छवि उसके खुद के मन में है, वह खुद एक बहुदेववादी रब की है और सबसे पहले उसे उसकी इस छवि को अपने मन और दिल में से निकालने की जरूरत थी।

ये अनैतिक गुण जो मैंने आपके सामने रखे हैं, उस परमेश्वर के नहीं हैं, जिसे ईसा (यीशु) प्रकट करता है। सच्चा परमेश्वर एक अच्छा मार्गदर्शक है, जो प्रेमी है और अपने अनुयायियों को आश्वासन देता है कि वे उसके साथ स्वर्ग में रहेंगे। आपको ईसा (यीशु) के अनुयायी हो जाने की जरूरत है।

चिन्तन का समय 7

1. परमेश्वर को सर्वोत्तम मार्गदर्शक होना चाहिए। सर्वोत्तम मार्गदर्शक के गुण क्या हैं?
2. किसी के द्वारा गुमराह किए जाने पर कैसा लगता है? अगर कोई रब आपको गुमराह करे तो आपको कैसा लगेगा?
3. इस्लाम का रब एक अच्छा मार्गदर्शक क्यों नहीं हो सकता?
4. क्या पृथ्वी पर हमें एक सच्चे आत्मिक मार्गदर्शक की जरूरत है? क्यों?
5. अगर हम सच्चे परमेश्वर के अनुयायी नहीं हो जाते, तो क्या हमें स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा?
6. एक अच्छे मार्गदर्शक का अनुकरण करना कितना महत्त्वपूर्ण है?

क्या इस्लाम के द्वारा परमेश्वर के साथ आपका मेल हो सकता है?

क्या इस्लाम के द्वारा परमेश्वर के साथ आपका मेल हो सकता है? क्या आप कह सकते हैं, "मैं सौ प्रतिशत परमेश्वर के संग हूँ, परमेश्वर के स्वर्ग का वासी हूँ और मौत के बाद नरक नहीं जाऊँगा"?

सच्ची आस्था आपके लिए यह सब कर सकती है। यह आपके हाथों को परमेश्वर के हाथों में रख देती है और मौत के बाद अनन्त जीवन के प्रवेश की गारण्टी देती है।

क्या इस्लाम वह सच्ची आस्था है जिसके द्वारा शान्ति स्थापित हो सकती है?

क्या अभी तक इस्लाम आपके हाथ परमेश्वर के हाथों में रख पाया है और आपको यह बता पाया है कि परमेश्वर के साथ आपका सम्बन्ध अनन्त है? क्या आप कह सकते हैं कि इस्लाम के कारण आपके दिल में आत्मविश्वास और शान्ति आई है और आप अनन्तता के लिए बिल्कुल भी चिन्तित नहीं हैं? क्या आप इतिहास में से किसी ऐसे मुसलमान को जानते हैं, जो यह कह पाया था, "अब मैं आज़ाद हूँ, मैं बचाया गया हूँ, मैं परमेश्वर के साथ सचमुच एक हो गया हूँ, और हमेशा के लिए उसके साथ रहूँगा"?

आप और मैं जानते हैं कि खुद मुहम्मद भी परमेश्वर के साथ इस प्रकार एक हो जाने की गवाही नहीं दे पाया था कि वह उसके साथ हमेशा के लिए रहेगा और उसे अनन्त आश्वासन मिल गया था। उसने तो सिर्फ यही कहा कि उसे नहीं पता कि मौत के बाद उसका क्या होगा।

परमेश्वर अस्थाई या आधी-अधूरी एकता में दिलचस्पी नहीं लेता। परमेश्वर सिद्ध है और इसलिए सिद्ध एकता चाहता है, क्योंकि सिद्ध एकता ही परमेश्वर और उसके लोगों के मध्य, खास तौर पर उनमें जो उसके नबी होने का दावा करते हैं, अनन्त शान्ति स्थापित कर सकती है। इसलिए जब एक नबी कहता है कि वह मौत के बाद अपने जीवन के बारे में नहीं जानता, तो इसका मतलब यह हुआ कि वह परमेश्वर के साथ एकता में नहीं है और जानता ही नहीं है कि परमेश्वर के साथ सच्ची एकता और शान्ति क्या होती है।

इस बिन्दु पर आकर तब मैं अपने आत्मिक जीवन को लेकर बुरी तरह से डर गया था जब मैं मुसलमान था। मैंने सोचा कि इस्लाम का नबी तो सबसे अधिक पवित्र मुसलमान है। इस्लाम के आदेशों का पालन करने और अपने रब के लिए वफादार रहने में तो वह सबसे आगे है। उसके सारे भले कामों के बावजूद उसने कहा कि वह अपने भविष्य के बारे में जानता ही नहीं है कि उसे जन्नत नसीब होगी या नहीं।

मैंने पहचान लिया कि इस्लाम में कुछ तो गड़बड़ है, वरना इसमें ऐसी अनिश्चितता होनी ही नहीं चाहिए थी जिससे सारे मुसलमान भय

खाते हैं। इस्लाम का अरबी में अर्थ "अधीनता" होता है। मुसलमान का अर्थ "परमेश्वर की अधीनता में रहने वाला" होता है। क्या इस अधीनता से मुसलमानों को अपने भविष्य के लिए आश्वासन नहीं मिलना चाहिए था? अगर नहीं तो फिर इस्लाम के रब की अधीनता में आने का क्या फायदा है? मैंने अपने आप से पूछा, "मैं ऐसा क्यों करूँ कि दूसरों को इस्लाम की अधीनता में आने के लिए कहूँ और उन्हें अपनी तरह ही अनिश्चितता में धकेल दूँ? मैं इस्लाम का पालन क्यों करूँ और इस अनिश्चितता के कारण अपने मन में रोजाना परेशानी आने दूँ?" मैं कितना सौभाग्यशाली था कि ये प्रश्न मेरे रोजाना के जीवन का हिस्सा बन गए थे।

क्या आपको अपने मन में ऐसे सवाल उठाने के मौके मिले हैं और आपने उनके उत्तर खोजने के प्रयास किए हैं? आपके लिए जरूरी है कि आप ऐसा एक रास्ता खोजें जो आपको हर तरह की अनिश्चितता से मुक्त कर दे, आपको परमेश्वर के साथ एक कर दे और आपके दिल में अनन्त शान्ति ले आए। सच्चा परमेश्वर चाहता है कि आप पृथ्वी पर उसे अपने जीवन में प्रवेश करने दें और आपके अन्दर अनन्त भरोसा भरने दें। कोई भी आस्था जो परमेश्वर की ओर से होने का दावा करती है, अवश्य है कि उसमें परमेश्वर की इच्छा की झलक दिखाई दे और वह आपको उसके साथ एक करने में सक्षम हो।

बहुदेववादियों को भी भविष्य के बारे में शान्ति नहीं है

इस्लाम आपको आपके भविष्य के बारे में आश्वासन नहीं दे पाया है। आपको परमेश्वर साथ एक होने और सिद्ध आश्वासन में स्थिर होने के लिए आपको किसी अन्य आस्था का पालन करना होगा। इस्लाम और बहुदेववाद में कोई भिन्नता नहीं है। बहुदेववादियों की बातें मुसलमानों से बहुत मेल खाती हैं और वे कहते हैं कि वे भी नहीं जानते कि उनकी मौत के बाद उनका क्या होगा। बहुदेववादी भी अपने भविष्य को लेकर उतना ही डरते हैं, जितना मुसलमान डरते हैं।

इस्लाम का रब कैसा रब है जिसे दयावान कहा जाता है, लेकिन वह भविष्य के बारे में डरे बैठे मुसलमानों की मदद के लिए कुछ भी नहीं करता? मुसलमान दिन में पाँच बार नमाज पढ़ते हैं, हर साल एक महीना रोज़े रखते हैं और वे सारे काम भी करते हैं जो उनसे करने के लिए कहा जाता है, लेकिन फिर भी डरते हैं कि वे जन्नत तक पहुँच पाएँगे या नहीं, या फिर उनका अन्त नरक में ही हो जाएगा। दयावान होने का अर्थ है सहानुभूति रखना, चिन्ता करना और देखभाल करना। अगर आप रोजाना अपने रब से दुआ माँगते हैं और उसे पुकारते हैं कि वह आपको सही रास्ते पर ले आए और आपको डर से मुक्त करे, तो फिर वह आपको आपके डर से मुक्त क्यों नहीं करता और आपको आनन्द और तसल्ली से क्यों नहीं भरता? इसका मतलब है कि कुछ तो गड़बड़ है। या तो परमेश्वर दयावान नहीं है या

फिर मुसलमान सही रास्ते पर नहीं हैं। लेकिन संसार का हर एक धार्मिक व्यक्ति यह मानता है कि परमेश्वर सारी दया का स्रोत है। अगर ऐसा है तो परमेश्वर अपनी दया उन तक लाने में कभी देर नहीं करता जो उसकी देखभाल के लिए उसे पुकारते हैं। इसलिए इस्लाम सच्चा धर्म नहीं है, जिसमें लोगों के लिए परमेश्वर की दया इतनी देरी से आती है।

जब आप एक सच्ची आस्था का पालन करते हैं, तब परमेश्वर आपके दिल को आत्मविश्वास, शान्ति और आनन्द से भर देता है। आत्मविश्वास इसलिए क्योंकि परमेश्वर सर्वज्ञानी परमेश्वर है और आपको आपका भविष्य दिखा सकता है; शान्ति इसलिए क्योंकि आप उसकी बाँहों में, सबसे अधिक सुरक्षित स्थान में होंगे और कोई भी आपको उसके प्रेम तथा देखभाल से जुदा नहीं कर पाएगा; आनन्द से इसलिए क्योंकि आप हमेशा के लिए डर पर विजयी हो जाएँगे। इस्लाम में आपको इनमें से कुछ भी नहीं मिलता।

इस्लाम शान्ति देने वाला सिद्ध धर्म नहीं है

बचपन से आप केवल यही सुनते आ रहे हैं कि इस्लाम आखरी और सिद्ध धर्म है और परमेश्वर मुसलमानों के संग है, तो भी इस्लाम में इनमें से किसी एक भी दावे का समर्थन करने के लिए कोई तर्क मौजूद नहीं है।

जब आप कहते हैं कि परमेश्वर आपके संग है लेकिन आप पक्के तौर पर नहीं जानते कि मौत के बाद आपके साथ क्या होगा, तब

आप देख सकते हैं कि इस्लाम आपको आपके भविष्य के सम्बन्ध में आशाहीन छोड़ रहा है। जिस धर्म में आशाहीनता पाई जाती है उसे सिद्ध धर्म नहीं कहा जाना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर के संग होने का मतलब यह है कि आप नरक में जाने के डर से मुक्त हैं और सौ प्रतिशत पक्के तौर पर कह सकते हैं कि पृथ्वी पर आप परमेश्वर के संग हैं और मरने के बाद भी आप स्वर्ग में परमेश्वर के साथ होंगे। परमेश्वर इस संसार में और मौत के बाद के भविष्य का भी आश्वासन आपको देता है। जब वह अब आपके साथ है, तो वह आपको आश्वासन देता है कि आप इस जीवन में भी और मौत के बाद भी उसी के संग होंगे। अगर इस्लाम का रब और कोई अन्य रब आपको जीवन के बाद का आश्वासन नहीं देता, तो वह सच्चा परमेश्वर नहीं हो सकता।

इस्लाम का सन्देश खुद का ही विरोध करता है। यह कहता है कि पृथ्वी पर अपने जीवन में तो मुसलमान परमेश्वर के संग हैं, लेकिन इस बात की स्पष्टता नहीं है कि मौत के बाद वे परमेश्वर के संग होंगे या नरक में सड़ेंगे।

अल्लाह की अधीनता का अन्त उसके संग मेल के साथ नहीं होता

जरूरी है कि पृथ्वी पर परमेश्वर के साथ एकता और मेल हमें मौत के बाद परमेश्वर के साथ अनन्त एकता और मेल में लेकर जाए और हमें पूर्ण आश्वासन दे। इस मसले पर इस्लाम में और मसीह में ईमान

में सबसे बड़ी भिन्नता दिखाई देती है। ईसा (यीशु) मसीह की इंजील कहती है कि अगर आप अब परमेश्वर के संग हैं, तो आप हमेशा उसके संग रहेंगे। लेकिन क़ुरआन में लिखा है कि चाहे अभी आप परमेश्वर के संग हों, तो भी यह स्पष्ट नहीं है कि मौत के बाद आप परमेश्वर के संग होंगे या नरक में सड़ेंगे।

आप देख सकते हैं कि परमेश्वर के साथ एकता ही इंजील की असली एकता है। यह आप में और परमेश्वर में ऐसा एक सम्बन्ध स्थापित कर देती है जो अनन्तकाल तक जारी रहता है। सच्चा सम्बन्ध गहरा, दीर्घ चलने वाला और आत्मविश्वास से भरा होना चाहिए। इस्लाम के रब के साथ स्थापित होने वाला सम्बन्ध गहरा नहीं है, बल्कि यह डर से भरा हुआ है जो भरोसे, शान्ति और तसल्ली को नष्ट कर देता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इस्लाम में परमेश्वर की अधीनता असली नहीं बल्कि नकली है। अगर यह सच्ची अधीनता होती, तो यह मुसलमानों में मौत के बाद के जीवन को लेकर अस्पष्टता और डर पैदा नहीं करती, बल्कि उन्हें परमेश्वर के संग होने का अनन्त आश्वासन देती।

ईसा (यीशु) मसीह की इंजील के अनुसार अगर आप परमेश्वर की अधीनता में आते हैं और पृथ्वी पर उसके संग एक हो जाते हैं, तो वह आपके साथ अपनी वाचा को कभी नहीं तोड़ेगा, बल्कि सदाकाल के लिए उसका पालन करेगा और आपके दिल में आत्मविश्वास भरेगा। इसलिए पृथ्वी पर हमारे जीवन में परमेश्वर के

साथ होने वाली एकता हमें परमेश्वर के साथ हमेशा रहने के लिए स्वर्ग में ले जाएगी।

इसलिए जब कोई आपसे पूछे कि क्या इस्लाम के द्वारा आपका परमेश्वर के साथ सच्चा मेल हो सकता है, तो आपका जवाब "नहीं" होना चाहिए, क्योंकि इस्लाम आपको आपके भविष्य का आश्वासन नहीं देता। तब आपको उस व्यक्ति के पास जाना चाहिए और उससे परामर्श लेना चाहिए कि परमेश्वर के साथ मेल करने के लिए और भविष्य के बारे में अपने डर से बचने के लिए आपको क्या करना चाहिए। अगर वह व्यक्ति ईसा (यीशु) मसीह का अनुयायी है तो आपको उसमें स्वर्ग की रोशनी दिखाई देगी। आप सीख जाएँगे कि आप अपने जीवन के हर एक पहलू में परमेश्वर के साथ सच्चे तौर पर कैसे एक हो सकते हैं और उससे मेल कैसे कर सकते हैं। आप यह भी सीख जाएँगे कि दूसरों के साथ आपका मेल कैसे हो सकता है।

शान्ति के स्रोत के साथ एकता आपको अनन्त शान्ति देती है

परमेश्वर शान्ति का स्रोत है। शान्ति के स्रोत के साथ एकता आपके अपने जीवन में शान्ति लाएगी। तब आप शान्ति से भरे रहेंगे, शान्ति-स्थापक बनेंगे, और दूसरों के साथ भी शान्ति कायम रख पाएँगे। कहने का भाव यह है कि अगर सच्चे परमेश्वर और आप में शान्ति स्थापित नहीं हुई है, तो लोगों के साथ भी आपकी सच्ची शान्ति नहीं

हो पाएगी, फिर चाहे वे आपके परिवार से हों या बाहर के लोग हों। जब आप परमेश्वर के साथ एक हो जाते हैं और परमेश्वर के साथ आपका मेल हो जाता है, तो परमेश्वर का तरस दूसरों के साथ आपके सम्बन्ध का प्रेरक बन जाता है; तब आप नफरत करने वाले व्यक्ति की बजाय शान्ति-स्थापक बन जाते हैं। तब आप कह पाएँगे, "अगर परमेश्वर मुझ पापी के प्रति तरसवान हो सकता है, तो मुझे अपने जैसे दूसरे लोगों के प्रति भी तरसवान होने की जरूरत है।"

ये तरसवान, प्रेमी और शान्ति-स्थापक विशेषताएँ ईसा (यीशु) मसीह में ईमान का हिस्सा हैं, लेकिन ये मुहम्मद के इस्लाम में नहीं पाई जातीं। ईसा (यीशु) न तो किसी से नफरत करता है, न किसी को श्राप देता है और न ही पापियों की हत्या करता है, बल्कि हमेशा कृपा से भरकर उनके पास आता है और नफरत की बजाय कृपा को काम करने देता है। ईसा (यीशु) मसीह का तरीका यह है कि प्रेम, कृपा और शान्ति लोगों को हमेशा के लिए बदल देती है, लेकिन नफरत और बैर ऐसा नहीं कर पाते। ईसा (यीशु) मसीह की इंजील में एक भी आयत ऐसी नहीं है, जो आपको पापियों से या आपके विरोधियों से नफरत करना सिखाती है। इंजील कभी भी अपने अनुयायियों से यह नहीं कहती कि दूसरों की हत्या करो।

ईसा (यीशु) ने अपने अद्‌भुत प्रेम और कृपा के द्वारा मुझे और मेरे जैसे करोड़ों लोगों को बदल दिया है। उसने यह देखने के लिए हमारी आँखें खोल दी हैं कि नफरत न केवल दूसरों के जीवन को नष्ट करती

है, बल्कि हमारे अपने जीवन और परिवार में भी शान्ति को बर्बाद कर देती है।

इस प्रकार हम देख सकते है कि कैसे परमेश्वर के साथ सच्ची एकता और शान्ति हमें शान्ति से भर देती है और प्रेम तथा कृपा के द्वारा हमें दूसरों के साथ एक हो जाने का और उनके साथ शान्ति से रहने का रास्ता भी तैयार करती। अब हम यह भी समझ सकते हैं कि इस्लाम शान्ति स्थापित क्यों नहीं कर पाया है; क्योंकि इस्लाम में कृपा और माफी की बजाय कठोरता अधिक बलशाली है।

मैं आपसे जो मुख्य बात कहना चाहता हूँ वह यह है कि आपको परमेश्वर के साथ अभी शान्ति स्थापित करने अर्थात मेल करने की जरूरत है और ऐसा केवल ईसा (यीशु) मसीह के द्वारा ही सम्भव है। आपको अपने परिवार और दूसरों के साथ भी शान्ति स्थापित करने की जरूरत है। यह भी केवल ईसा (यीशु) मसीह के द्वारा ही सम्भव है।

क्या आप परमेश्वर के साथ, अपने परिवार के साथ और दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों में शान्ति स्थापित करने के लिए तैयार हैं? अगर आप इस बारे में सचमुच गम्भीर हैं तो आपको अपने विवेक से काम लेना होगा और उन प्रमाणित तथ्यों पर विचार करना होगा जो मैं आपके साथ बाँटता आ रहा हूँ।

शान्ति के राजकुमार की अगुवाई के बिना सच्ची शान्ति सम्भव नहीं हो पाएगी

शान्ति का राजकुमार कौन है? आपके अनुसार शान्ति का राजकुमार किसे होना चाहिए?

उसमें परमेश्वर का दिल होता है

शान्ति का राजकुमार वही हो सकता है जिसमें परमेश्वर का प्रेमी दिल हो ताकि वह लोगों तक वैसे पहुँच सके जैसे परमेश्वर पहुँचता है और परमेश्वर के समान ही लोगों के साथ एक हो सके।

वह दूसरों के अधिकारों का सम्मान करता है

शान्ति का राजकुमार पक्षपात नहीं करता, बल्कि सबके अधिकारों पर विश्वास करता है, फिर चाहे वे उसके मित्र हों या न हों, क्योंकि परमेश्वर ने सबको चयन की आज़ादी के साथ सृजा है।

वह उदार होता है

जैसा कि परमेश्वर उदार है और उसने संसार को सभी के लिए सृजा है, जैसा कि वह सभी के लिए एक समान वर्षा भेजता है, उसी प्रकार शान्ति के राजकुमार को भी परमेश्वर के समान उदार होना चाहिए ताकि अपनी उदारता से अपने बैरियों के भी दिल जीत ले।

वह युद्ध के लिए उग्रता नहीं दिखाता

साथ ही, शान्ति का राजकुमार युद्ध के लिए उग्रता नहीं दिखाता, क्योंकि उसका मिशन तो ज्ञान और समझ के द्वारा लोगों को एक दूसरे के समीप लाना है ताकि उनमें शान्ति स्थापित की जा सके।

अब अगर आप किसी मसीही से इंजील माँग लें, उसे पढ़ें और क़ुरआन के साथ उसकी तुलना करें, तो आप समझ जाएँगे कि यह शान्ति का राजकुमार ईसा (यीशु) है।

ईसा (यीशु) मसीह के जन्म से सात सौ वर्ष पहले नबी यशायाह ने उसके बारे में यह नबूवत की थी: क्योंकि हमारे लिये एक बालक उत्पन्न हुआ, हमें एक पुत्र दिया गया है; और प्रभुता उसके काँधे पर होगी, और उसका नाम अद्भुत युक्ति करने वाला पराक्रमी परमेश्वर, अनन्तकाल का पिता, और शान्ति का राजकुमार रखा जाएगा। ईसा (यीशु) मसीह के जन्म के साथ यह नबूवत पूरी हुई: इंजील में कुलुस्सियों की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 19 और 20 में लिखा है कि ईसा (यीशु) मसीह में सारी परिपूर्णता वास करती है ताकि स्वर्ग और पृथ्वी की सब वस्तुओं का परमेश्वर के साथ मेल हो जाए।

ईसा (यीशु) मसीह शान्ति का राजकुमार है। वह इस योग्य है कि सब लोगों का स्वर्ग के साथ और आपस में मेल करवा दे। परमेश्वर के साथ एक होने और उसके साथ अनन्त मेल तथा शान्ति रखने के लिए ईसा (यीशु) का अनुकरण करें।

चिन्तन का समय 8

1. परमेश्वर के साथ मेल अर्थात शान्ति रखने का क्या अर्थ है?
2. परमेश्वर के साथ मेल अर्थात शान्ति रखना कितना महत्त्वपूर्ण है और यह किस प्रकार से हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है?
3. शान्ति की स्थापना में परमेश्वर क्या भूमिका निभाता है?
4. अगर हमारी आस्था हमें परमेश्वर के साथ एक नहीं करती तो हमें क्या करने की जरूरत है?
5. क्या यह मानने का कोई कारण है कि मसीह पर ईमान लाने से आप परमेश्वर के साथ एक हो जाएँगे? अगर हाँ, तो आपको क्या करना चाहिए?

क्या क़ुरआन सच्चे परमेश्वर का वचन है?

हम कैसे जानें कि कोई पुस्तक परमेश्वर की ओर से है या नहीं?

हमें यह पता करने की जरूरत है कि उस पुस्तक में लिखी बातें सच्चे परमेश्वर के गुणों से मेल खाती हैं या नहीं। हमें उस पुस्तक में लिखी बातों को हर एक पहलू से जाँचना होगा। हम क़ुरआन में लिखी बातों के साथ ऐसा ही करने जा रहे हैं अर्थात एक पूर्ण आकलन, ताकि सब लोग, शिक्षित अथवा अशिक्षित, समझ पाएँ कि क़ुरआन सच्चे परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकता।

क्या इस्लाम का रब शब्द बोलता है?

सबसे पहला आकलन यही किया जाना चाहिए कि क़ुरआन का रब शब्द बोल सकता है या नहीं। अगर वह नहीं बोल सकता तो कोई भी व्यक्ति यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि क़ुरआन परमेश्वर की ओर से है।

केवल व्यक्तित्व वाला परमेश्वर ही असली शब्द बोल सकता है, जो व्यक्तित्व वाली मनुष्यजाति के साथ जुड़ सकते हैं। इस्लाम का रब सम्बन्ध न रखने वाला और व्यक्तित्वहीन रब है, इसलिए वह

व्यक्तित्व वाले और सम्बन्ध रखने वाले शब्द बोल ही नहीं सकता ताकि लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसका अर्थ है कि मुहम्मद का रब मूसा और अन्य नबियों के परमेश्वर जैसा नहीं है, क्योंकि न तो वह मुहम्मद के साथ व्यक्तिगत बातचीत कर पाया और न ही मुहम्मद अपने रब की आवाज़ या उससे एक शब्द भी सुन पाया। इसलिए क़ुरआन परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

बाइबल परमेश्वर का वचन है। क्यों? क्योंकि बाइबल के परमेश्वर का अपना एक व्यक्तित्व है और वह सम्बन्ध स्थापित करता है। वह अपने शब्दों के माध्यम से खुद को सीधे अपने लोगों पर प्रकट करता है। परमेश्वर ने मूसा से और बाइबल के अन्य नबियों से व्यक्तिगत तौर पर बात की और उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर अपने कानों से परमेश्वर की आवाज़ में उसके वचन सुने। उन नबियों के परमेश्वर के साथ हुए व्यक्तिगत अनुभव ही एकत्र करके बाइबल में दर्ज किए गए हैं, जो मनुष्यों के जीवन की रोशनी है। इसका अर्थ यह हुआ कि सच्चे परमेश्वर का अपना एक व्यक्तित्व होना चाहिए ताकि वह खुद को शब्दों के माध्यम से प्रकट कर सके और उसकी एक पवित्र पुस्तक हो सके। इस्लाम के रब का अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं है और न ही वह सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम है, इसीलिए उसकी अपनी कोई पवित्र पुस्तक हो ही नहीं सकती। क़ुरआन सच्चे परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

क्या इस्लाम का रब आश्वासन देता है?

दूसरा आकलन यह देखना है कि क्या क़ुरआन का रब मुक्ति का आश्वासन देता है। अगर नहीं, तो फिर क़ुरआन सच्चे परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

क़ुरआन में सूरह लुक़मान (31) और सूरह अल-अहक़ाफ़ (46) में साफ-साफ शब्दों में लिखा है कि कोई नहीं जानता कि भविष्य में उसके साथ क्या होगा। क़ुरआन में इस तरह का कोई आश्वासन नहीं दिया गया है और साथ ही सूरह मरयम (19) में यह भी कहा गया है कि धर्मी मुसलमान न्याय के लिए पहले नरक भेजे जाएँगे।

जरूरी है कि जीवित परमेश्वर के वचन अपने लोगों को अनन्त जीवन दें और उन्हें नरक से पूरी तरह दूर रखें; क्योंकि क़ुरआन अपने अनुयायियों को नरक से दूर नहीं रख सकता, इसलिए यह परमेश्वर का वचन नहीं है।

क्या सच्चा परमेश्वर अपने अनुयायियों को थोड़े समय के लिए भी नरक में भेज सकता है? बिल्कुल नहीं। क़ुरआन में ऐसा ही लिखा है इस्लाम के अनुयायी नरक भेजे जाएँगे, इसीलिए यह सच्चे परमेश्वर का वचन नहीं है।

जरूरी है कि सच्चे परमेश्वर की पवित्र पुस्तक और उसके वचन परमेश्वर और उसके अनुयायियों के बीच अनन्त सम्बन्ध स्थापित करने के योग्य हों, लेकिन क़ुरआन के पास ऐसा अधिकार है ही नहीं।

सच्चे परमेश्वर की पुस्तक आपको आश्वासन देती है कि अब आप सच्चे परमेश्वर के साथ एक हो चुके हैं और अनन्तता के लिए बचाए जा चुके हैं; शैतान और नरक के साथ आपका नाता हमेशा के लिए टूट गया है; आपकी मौत के बाद आपको सीधे स्वर्ग ले जाया जाएगा ताकि आप परमेश्वर के साथ अनन्त संगति में प्रवेश कर जाएँ।

क़ुरआन तो मुहम्मद को भी शान्ति और भविष्य का आश्वासन नहीं दे पाया, जबकि वह तो इस्लाम का सर्वोच्च अगुवा और अल्लाह का सबसे प्यारा बन्दा था। इसी कारण उसकी मुक्ति के आश्वासन के बिना ही उसकी मौत हो गई। क्या सच्चा परमेश्वर अपने सबसे प्यारे बन्दे को इस तरह निराश करेगा? बिल्कुल नहीं। समस्या परमेश्वर के साथ नहीं है; समस्या तो क़ुरआन के साथ है। यह परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

क्या क़ुरआन का रब एक नैतिक परमेश्वर है?

तीसरा आकलन यह देखना है कि क्या क़ुरआन का रब नैतिक है या नहीं।

क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर गुमराह करता है

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 54 और सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 30 में लिखा है कि अल्लाह चालें चलने (धोखा देने) में सबसे माहिर है; सूरह यूनुस (10) की आयत 21 में लिखा है कि अल्लाह की चाल सबसे तेज है; और सूरह अल-आराफ़ (7) की

आयत 99 में लिखा है कि उसके धोखे से कोई भी सुरक्षित नहीं रह सकता।

सचमुच? क्या क़ुरआन सही है जब यह सच्चे परमेश्वर को धोखेबाज़ कहता है? बिल्कुल नहीं। पवित्र, धर्मी और कृपालु परमेश्वर धोखेबाज़ नहीं हो सकता। क़ुरआन द्वारा परमेश्वर को धोखेबाज़ कहा जाना बताता है कि उसमें एक मूलभूत समस्या है; यह सच्चे परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर षड्यन्त्रकारी है

सूरह अल-इसरा (17) की आयत 16 में लिखा है कि परमेश्वर लोगों को बुराई करने के लिए उभारता है ताकि उसे उनका नाश करने का कारण मिल जाए।

क्या कृपालु परमेश्वर, प्रेमी और तरसवान परमेश्वर सचमुच अपनी ही प्रकृति के खिलाफ षड्यन्त्र रचेगा और शैतान जैसा काम करेगा? कोई ऐसा कैसे सोच भी कैसे सकता है? क़ुरआन में लिखी ऐसी बातें स्पष्ट प्रमाण हैं कि यह सच्चे परमेश्वर का वचन हो ही नहीं सकता।

क़ुरआन में लिखा है कि अपने विरोधियों को पकड़ने के लिए उनसे झूठ बोलता है

सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 182 और 183 में और सूरह अल-क़लम (68) की आयत 44 और 45 में लिखा है: रहे वे लोग

जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया, हम उन्हें क्रमशः तबाही की ओर ले जाएँगे, ऐसे तरीक़े से जिसे वे जानते नहीं।

तो फिर वह अपने ही सिद्धान्तों के विरुद्ध काम क्यों कर रहा है और चयन की आज़ादी के विरुद्ध क्यों लड़ रहा है? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सृजनहार अपने लोगों की चयन की आज़ादी से डरता नहीं है, क्योंकि उसी ने उन्हें बनाया है।

मित्रो, यह सोच कर दिल टूट जाता है कि एक अरब से अधिक मुसलमान इस क़ुरआन का अनुकरण कर रहे हैं और यह जानते तक नहीं है कि यह सच्चे परमेश्वर के विरुद्ध बोलता है। क्या सर्वशक्तिमान को अपने विरोधियों का नाश करने के लिए धोखे और झूठ का सहारा लेना पड़ता है? क्या वह इतना कमज़ोर है कि झूठ और धोखे का सहारा लिए बिना सच्चाई के साथ उन तक नहीं पहुँच सकता? यह बहुत हैरानीजनक बात है कि क़ुरआन सर्वोच्च परमेश्वर को हम पापियों के स्तर पर लाकर रख देता है। जबकि परमेश्वर ने तो लोगों को चयन की आज़ादी दी हुई है कि वे चाहे उसे स्वीकार करें या चाहे उसका विरोध करें।

क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर ने शैतान को ठहराया है कि वह मनुष्यों को बहकाए

सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 16 में लिखा है कि अल्लाह ने शैतान को गुमराही में डाल दिया ताकि वह मनुष्यों को धोखा दे। क्या इस बात पर यकीन किया जा सकता है कि तरसवान परमेश्वर ने

मनुष्यजाति को नुकसान पहुँचाने के लिए एक भयानक शत्रु को तैयार किया हुआ है? क्या आप इस बात पर यकीन कर सकते हैं कि एक प्रेमी माता या पिता अपने बच्चे को नुकसान पहुँचाने के लिए किसी बैरी को भाड़े पर लाए?

यह मेरी दुआ और आशा है कि आप मसीह की इंजील और सारी बाइबल खुद पढ़ें और समझें कि तरसवान परमेश्वर ने न तो शैतान को गुमराही में डाला है और न ही वह मौकापरस्त है कि मनुष्यों का नाश करने के लिए बुरी-बुरी चीज़ें तैयार करे। ऐसे बुरे और दिल तोड़ने वाले कामों को परमेश्वर के काम बताने से क़ुरआन सच्चे परमेश्वर का वचन हो ही नहीं सकता।

क़ुरआन में लिखा है कि अल्लाह ने योजना बनाई कि दुष्टात्माएँ मुहम्मद को नुकसान पहुँचाएँ

सूरह अल-अनाम (6) की आयत 112 में लिखा है: और इसी प्रकार हमने मनुष्यों और जिन्नों में से शैतानों को प्रत्येक नबी का शत्रु बनाया, जो चिकनी-चुपड़ी बात एक-दूसरे के मन में डालकर धोखा देते थे - यदि तुम्हारा रब चाहता तो वे ऐसा न कर सकते। अब छोड़ो उन्हें और उनके मिथ्यारोपण को।

सच्चा परमेश्वर अपने प्यारे नबी को नुकसान पहुँचाने के लिए दुष्टात्माओं के साथ कभी हाथ नहीं मिलाता। बल्कि सच्चा परमेश्वर तो अपने लोगों को दुष्टात्माओं से बचाता है। क्योंकि क़ुरआन कहता

है कि परमेश्वर दुष्टात्माओं के साथ हाथ मिलाता है, इसलिए यह सच्चे परमेश्वर का वचन हो ही नहीं सकता।

क़ुरआन में लिखा है कि इस्लाम को फैलाने के लिए अल्लाह दुष्टात्माओं का इस्तेमाल करता है

एक ओर तो क़ुरआन में सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 27 में लिखा है: हमने तो शैतानों को उन लोगों का मित्र बना दिया है, जो ईमान नहीं रखते। वहीं दूसरी ओर हमने देखा कि अल्लाह ने योजना बनाई थी कि जिन्न उसके नबी मुहम्मद को नुकसान पहुँचाएँ। अब क़ुरआन सूरह अल-जिन्न (72) की आयत 1 से 2 में कहता है: कह दो, "मेरी ओर प्रकाशना की गई है कि जिन्नों के एक गरोह ने सुना, फिर उन्होंने कहा कि 'हमने एक मनभाता क़ुरआन सुना, जो भलाई और सूझ-बूझ का मार्ग दिखाता है, अतः हम उसपर ईमान ले आए, और अब हम कदापि किसी को अपने रब का साझी नहीं ठहराएँगे।'"

इस्लाम के रब ने दुष्टात्माओं को बुरी आत्माओं के तौर पर सृजा कि वे शैतान के पीछे हो लें और बहुदेववादियों तथा गैर-मुसलमानों के मित्र बनें, और साथ ही मुहम्मद को नुकसान पहुँचाएँ, लेकिन फिर वह दुष्टात्माओं से कहता है कि वे गैर-मुसलमानों की दोस्ती छोड़ दें और उसके अनुयायियों के मित्र बनकर इस्लाम को फैलाएँ।

क्या यह रब उलझन में पड़ा हुआ है? यह रब किसका मित्र है? क्या सच्चा परमेश्वर दुष्टात्माओं को अपने अनुयायी बना सकता है? क्या सच्चा परमेश्वर अपने वचन को फैलाने के लिए दुष्टात्माओं को

इस्तेमाल करता है? ऐसी विचित्र शिक्षाओं से भरा क़ुरआन सच्चे परमेश्वर की पवित्र पुस्तक हो ही नहीं सकता।

क़ुरआन यह भी कहता है कि पाप को भी परमेश्वर ने ही बनाया है

सूरह अश-शम्स (91) की आयत 7 और 8 में लिखा है कि परमेश्वर ने ही मनुष्यजाति को पाप के लिए उभारा। सूरह अल-बलद (90) की आयत 4 में लिखा है कि परमेश्वर ने मनुष्य को परिश्रम और कष्ट से घिरे रहने के लिए रचा है। सूरह अन-निसा (4) की आयत 88; सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 178 और सूरह इब्राहीम (14) की आयत 4 में लिखा है कि अल्लाह गुमराह करता है।

क़ुरआन परमेश्वर को इस रूप में पेश करता है कि वह अनैतिक और नियमों के विरुद्ध काम आरम्भ करने और लोगों को गुमराह करके उन्हें पापी बनाने के लिए बेताब है। यह परमेश्वर को एक मनुष्य के तौर पर पेश करता है, जिसका दिल और दिमाग पाप के पीछे पागल है। परमेश्वर मनुष्यों जैसा नहीं है। वह तो पाप और गुमराह करने वाले कामों से नफरत करता है। क़ुरआन की बातें सच्चे परमेश्वर की ओर से नहीं हैं और न ही ये मनुष्यों को परमेश्वर की ओर ले जाती हैं।

क्या क़ुरआन का परमेश्वर बराबर अधिकारों में विश्वास करता है?

चौथा आकलन यह देखना है कि क्या क़ुरआन का रब यह विश्वास करता है कि सब लोगों को बराबर अधिकार मिलें।

क़ुरआन कहता है कि परमेश्वर पक्षपात करता है। क़ुरआन में सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 65 में और सूरह अल-माइदा (5) की आयत 60 में और सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 55 में और सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 175 से 177 में और सूरह अत-तौबा (9) की आयत 28 में लिखा है कि गैर-मुसलमान अशुद्ध और पशु हैं, लेकिन सूरह आले-इमरान में लिखा है कि केवल मुसलमान ही इंसान हैं, भले हैं और शुद्ध हैं।

क़ुरआन का यह दावा सैद्धान्तिक शिक्षा, आत्मिक, सामाजिक और नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर सच्चा नहीं हो सकता। क्यों? सैद्धान्तिक शिक्षा और आत्मिक सिद्धान्तों के आधार पर इसलिए नहीं, क्योंकि खुद क़ुरआन में लिखा है कि मुसलमान भी बाकी लोगों की तरह ही पापी हैं। तो फिर यहाँ पर कौन सा कारण दिया जा सकता है कि मुसलमान बाकी लोगों से बेहतर हैं? कोई भी नहीं। सामाजिक और नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर इसलिए नहीं, क्योंकि यह दावा न तो परमेश्वर की ओर से है और न ही सच्चा है। आप ऐसा कैसे कर सकते है कि आप एक मुसलमान को, एक मसीही को, एक यहूदी को, एक हिन्दु को और बाकी लोगों को, जिन सब को परमेश्वर ने ही सृजा है, एक साथ खड़ा करें और फिर कहें कि इनमें से केवल एक इंसान है और बाकी सब पशु हैं? जिस परमेश्वर ने उन्हें सृजा है, वह जानता है कि वे सारे के सारे मनुष्य ही हैं, लेकिन क़ुरआन इस तथ्य को नहीं पहचानता और उन्हें पशु कहता है। आप देख सकते हैं कि क़ुरआन परमेश्वर के हृदय को नहीं दर्शाता, इसलिए यह परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकता।

क्या क़ुरआन का रब चयन की आज़ादी का सम्मान करता है?

पाँचवाँ आकलन यह देखना है कि क्या क़ुरआन का रब चयन की आज़ादी का सम्मान करता है या नहीं।

क़ुरआन के अनुसार जीने का हक सिर्फ मुसलमानों के ही पास है

क़ुरआन में परमेश्वर को इस तरह से पेश किया गया है कि वह अपने विरोधियों और गैर-मुसलमानों के खून का प्यासा है। क़ुरआन का आधे से ज्यादा हिस्सा, मुहम्मद की जीवनी का आधे से ज्यादा हिस्सा और हदीस का अधिकतर हिस्सा गैर-मुसलमानों से नफरत करने और उन पर आक्रमण करने और इस्लाम को कबूल न करने की उनकी जिद के कारण उनका लहू बहाने जैसी बातों से भरा हुआ है। जब इस्लाम का नबी और संस्थापक अपनी आधी से अधिक ज़िन्दगी अपने विरोधियों और गैर-मुसलमानों पर आक्रमण करने में बिताता है, तो आप उसके अनुयायियों से क्या अपेक्षा कर सकते है कि वे अपने विरोधियों और गैर-मुसलमानों के साथ क्या करेंगे? इस्लामिक सरकार की अधीनता में गैर-मुसलमानों का जीवन कैसा होगा?

क़ुरआन और अन्य इस्लामिक पुस्तकें बताती हैं कि गैर-मुसलमानों को न तो आज़ादी मिलनी चाहिए और न ही उनका जीवन चैन से

बीतना चाहिए (सूरह 8:39; 48:29; 17:16)। बल और तलवार का प्रयोग सच्ची श्रद्धा और अधीनता नहीं ला सकता।

क्या यह सम्भव है कि ऐसे बर्तावों को सच्चे और तार्किक परमेश्वर के गुण बताया जाए? नहीं। क़ुरआन परमेश्वर के बारे में सही बातें नहीं बताता।

क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर अपना दीन-धर्म दूसरों पर थोपता है

सूरह अन-निसा (4) की आयत 89 और सूरह अल-नहल (16) की आयत 106 में से हम जानते हैं कि मुसलमानों को यह अनुमति नहीं है कि वे परमेश्वर की ओर से मिली चयन करने की आज़ादी को इस्तेमाल करें, इस्लाम को छोड़ें और अपनी इच्छा के अनुसार अपनी आस्था को चुनें। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 217 से भी हम जानते हैं कि मुसलमानों के पास असीम आज़ादी है कि वे गैर-मुसलमानों को अपने दीन (धर्म) में लेकर आएँ और यहाँ तक कि जबरन भी इस्लाम कबूल करवाएँ, लेकिन अगर कोई गैर-मुसलमान मुसलमानों को अपने दीन (धर्म) में बुला ले तो यह उनके लिए मरने से भी बदतर है।

इस तरह मुसलमानों के पास असीम आज़ादी है कि वे इस्लाम को फैलाएँ; लेकिन गैर-मुसलमान ऐसा नहीं कर सकते, और अगर वे ऐसा करते हैं तो उन्हें मार डाला जाना चाहिए। ऐसी एक तरफा आज़ादी मौकापरस्त, पक्षपाती और क्रूर है, और सच्चे परमेश्वर की

ओर से नहीं हो सकती। ऐसी शिक्षाएँ देने वाला क़ुरआन सच्चे परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

क्या क़ुरआन में परिवार के लिए कोई अच्छी योजना दी गई है?

छठा आकलन यह देखना है कि क्या क़ुरआन में परिवार के लिए कोई अच्छी योजना है या नहीं।

क़ुरआन में बच्चों को उकसाया गया है कि वे अपने माता-पिता और रिश्तेदारों का निरादर करें। सूरह अत-तौबा (9) की आयत 23 में छोटे बच्चों से कहा गया है: ऐ ईमान लानेवालो! अपने बाप और अपने भाइयों को अपने मित्र न बनाओ यदि ईमान के मुक़ाबले में कुफ़्र उन्हें प्रिय हो। तुममें से जो कोई उन्हें अपना मित्र बनाएगा, तो ऐसे ही लोग अत्याचारी होंगे।

क़ुरआन बच्चों को केवल अपने माता-पिता से विद्रोह करने के लिए ही प्रेरित नहीं करता बल्कि उन्हें अपने गैर-मुसलमान रिश्तेदारों की हत्या करने के लिए भी उकसाता है। सूरह अत-तौबा (9) की आयत 123 में लिखा है: ऐ ईमान लानेवालो! उन इनकार करनेवालों से

लड़ो[7] जो तुम्हारे निकट हैं और चाहिए कि वे तुममें सख़्ती पाएँ, और जान रखो कि अल्लाह डर रखनेवालों के साथ है।

मित्रो, अपने माता-पिता का निरादर करना और अपने रिश्तेदारों तथा अन्य लोगों को अपनी आस्था की खातिर मार डालना सच्चे परमेश्वर की आस्था का हिस्सा हो ही नहीं सकते। इन टिप्पणियों के आधार पर कहा जा सकता है कि क़ुरआन परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकता।

क्या क़ुरआन किसी भी तरह के बदलाव से बचा हुआ है?

सातवाँ आकलन यह देखना है कि क्या क़ुरआन में कोई बदलाव किया गया था या नहीं।

क़ुरआन में लिखा है कि मुसलमान इसमें बदलाव कर सकते हैं

---

[7] अरबी क़ुरआन में इस्तेमाल हुआ मूल शब्द "घातिलू" है, जिसका अर्थ "घात करना" अर्थात "हत्या करना" होता है। अगर यह भी मान लिया जाए कि अरबी क़ुरआन में इस्तेमाल हुए शब्द का अर्थ "लड़ना" ही है, तो भी इस्लाम को कबूल न करने वालों से लड़ना भी चयन की उस आज़ादी के खिलाफ है जो परमेश्वर ने मनुष्यों को दी है। सच्चा परमेश्वर अपने सिद्धान्तों के खिलाफ काम नहीं करता।

सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 106 में लिखा है: हम जिस आयत (और निशान) को भी मिटा दें या उसे भुला देते हैं, तो उससे बेहतर लाते हैं या उस जैसी दूसरी ही। क्या तुम जानते नहीं हो कि अल्लाह को हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है? सूरह अल-नहल (16) की आयत 101 में लिखा है: जब हम किसी आयत की जगह दूसरी आयत बदलकर लाते हैं - और अल्लाह भली-भाँति जानता है जो कुछ वह अवतरित करता है - तो वे कहते हैं, "तुम स्वयं ही घड़ लेते हो!" नहीं, बल्कि उनमें से अधिकतर लोग नहीं जानते।

क़ुरआन की इन आयतों और इनसे मिलती-जुलती अन्य आयतों से हम समझ सकते हैं कि अपनी बढ़ती हुई राजनीतिक ताकत का फायदा उठाते हुए मुहम्मद ने क़ुरआन की वे आयतें बदल डालीं जिन्हें वह पसन्द नहीं करता था और उनकी जगह वे आयतें डाल दीं जिन्हें वह पसन्द करता था। अपने इस कारनामे को सही ठहराने के लिए उसने लोगों से कहा कि परमेश्वर ने वे आयतें रद्द कर दी हैं क्योंकि वे आयतें अब परमेश्वर की दृष्टि में मान्य नहीं हैं, इसलिए उसने इनसे बेहतर आयतों को लिखने की प्रेरणा दी है। वाह! क्योंकि परमेश्वर सिद्ध है और उसकी ओर से दी गई हर एक आयत सिद्ध है, तो फिर क्या परमेश्वर कह सकता है कि अब उसके पास पिछली आयतों से बेहतर आयतें हैं? क्या परमेश्वर अनन्तता से ही इस बात को नहीं जानता था कि उसकी कुछ आयतों को बदला जाना पड़ेगा ताकि वह उन्हें सुधार पाए और वह खामियों वाले इस क़ुरआन को मुहम्मद के हाथों में न पड़ने दे?

मुहम्मद द्वारा मूल आयतों को निकालने के कारण कुछ लोग उस पर सन्देह और उसकी आलोचना करने लगे, लेकिन आलोचना करने वाले इन लोगों की आगे चलकर हत्या कर दी गई। तो फिर लोगों को सिद्ध या अन्तिम वचन पहले ही क्यों नहीं दे दिया गया ताकि इस प्रकार की आलोचना और हत्याओं से बचा जाता? क्या सच्चा परमेश्वर इस तरह से लोगों को उलझाता है और फिर उन्हें एक दूसरे के खिलाफ कर देता है? इस प्रकार आप देख सकते हैं कि खुद क़ुरआन ने इस बात की पुष्टि की है कि कुछ आयतें रद्द कर दी गई थीं और उनके स्थान पर बेहतर आयतें लाई गई थीं। अगर क़ुरआन की आयतें सच्चे परमेश्वर की ओर से होतीं तो इसमें यह न लिखा होता कि कुछ आयतों को रद्द कर दिया गया है।

हदीस भी यह दावा करती है कि क़ुरआन में बदलाव किए गए हैं और यह अपूर्ण है

मुहम्मद के समय में और उसकी मौत के बाद के समय से क़ुरआन की आठ प्रतियाँ पाई जाती हैं, जिसके कुछ हिस्से एक दूसरे से भिन्न हैं। मुहम्मद को पक्के तौर पर पता नहीं था कि उनमें से कौन सा सही था, इसलिए अनुमान लगाया कि जो क़ुरआन उसके दामाद अली के हाथ में था सम्भवतः वही सही था। मुहम्मद की मौत के बाद मुहम्मद के उत्तराधिकारियों में उठे विभाजन के कारण न केवल वे मुहम्मद के मनपसन्द क़ुरआन को आधिकारिक दर्जा देने से चूक गए बल्कि उस समय शासन कर रहे शासक ओतमन ने इस मौजूदा क़ुरआन को आधिकारिक दर्जा दे दिया जिसमें से कुछ आयतें गायब हैं।

सलीम-इब्न-गेज़ (90 हिजर) ने अपनी पुस्तक, द मिस्ट्री ऑफ मुहम्मदज़ फैमिली (मुहम्मद के परिवार का रहस्य) में लिखा कि मौजूदा क़ुरआन में से अनेक आयतें गायब हैं। अनेक आयतों को एक भेड़ (या बकरी) खा गई थी और साथ ही सूरह अन-नूर (24), सूरह अल-अहज़ाब (33) और सूरह अल-हुजुरात (49) में से कुछ आयतें खो गई थीं।

जब खुद क़ुरआन और अन्य पुरातन इस्लामिक पुस्तकें एक आवाज़ में कह रही हैं कि क़ुरआन में बदलाव किए गए थे, इसके साथ छेड़छाड़ की गई थी और इसकी अनेक आयतें गायब हैं, तो फिर क़ुरआन को सिद्ध किताब और परमेश्वर की ओर से उतरी हुई किताब कैसे कहा जा सकता है?

बाइबल में ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि बाइबल को बदला गया था। सूरह अल-हिज्र (15) की आयत 91 में लिखा है कि क़ुरआन में फेरबदल और मनमाने बदलाव किए गए थे। बाइबल में ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि इसे बदला गया था या इसके साथ छेड़छाड़ की गई थी।

मुस्लिम नेता और धार्मिक अगुवे यह कभी नहीं बताते कि क़ुरआन में बदलाव किया गया था या इसकी कुछ आयतें खो गई थीं, लेकिन वे बड़ी आसानी से यह झूठ बोल देते हैं कि मसीहियों और यहूदियों की किताबों में बदलाव किए गए थे। क़ुरआन की खुद की आयतें कह रही हैं कि इसमें बदलाव किए गए हैं। तो फिर यह किताब जिसमें

बदलाव किए गए थे, परमेश्वर की ओर से उतरी हुई किताब कैसे हो सकती है?

क़ुरआन में सूरह अल-अनाम (6) की आयत 34 और 115 में और सूरह यूनुस (10) की आयत 64 में लिखा है: कोई नहीं जो अल्लाह की बातों को बदल सके, और सूरह अल-हिज्र (15) की आयत 9 में लिखा है: हम स्वयं इसके रक्षक हैं। अब हम समझ सकते हैं कि क़ुरआन को बदला गया था। इसलिए अगर यह परमेश्वर का वचन होता तो इसे कोई भी बदल नहीं सकता था।

बाइबल और मसीह की इंजील उन समस्याओं से सुरक्षित है जो क़ुरआन में पाई जाती हैं। बाइबल का परमेश्वर अपने अनुयायियों को पाप का, शैतान का और दुष्टात्माओं का गुलाम नहीं बनाता, बल्कि उनकी रक्षा करता है।

चिन्तन का समय 9

1. संसार में अनेक धर्म पाए जाते हैं और उनमें से हर एक के अनुयायी यह दावा करते हैं कि उनका धर्म परमेश्वर की ओर से हैं। क्या हमारे पास यह आकलन करने और देखने की क्षमता है कि कोई धर्म परमेश्वर की ओर से है या नहीं?
2. कुछ मुसलमान यह दावा करते हैं कि क़ुरआन परमेश्वर की ओर से है क्योंकि एक अरब से अधिक मुसलमान यह मानते हैं कि यह परमेश्वर की ओर से है। आप क्या कहते हैं? भक्ति या अभक्ति का आकलन संख्या से किया जाता है या गुणवत्ता से?

3. क्या हमारे पास यह प्रमाणित करने के कुछ साधन उपलब्ध हैं कि क़ुरआन सच्चे परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकता?
4. क्या यह हमारा दायित्व बनता है कि हम सच्चे परमेश्वर के वचन की खोज करें और उसके अनुसार जीएँ?
5. अगर आप विश्वास करते हैं कि परमेश्वर आपका मार्गदर्शन करने को तैयार है कि आप सत्य की खोज करें या सत्य की खोज करने में दूसरों की मदद करें, तो अभी कुछ समय प्रार्थना में बिताएँ।

क्या इस्लाम सचमुच अन्तिम और सिद्ध धर्म है?

इस्लामिक नेता और धार्मिक अगुवे मुसलमानों से कहते आ रहे हैं कि इस्लाम अन्तिम और सर्व-सिद्ध धर्म है। क्या यह वास्तव में सच है? क्या उनके दावों के लिए उनके पास तार्किक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, आत्मिक या सामाजिक कारण मौजूद हैं? इस्लाम में सिद्ध का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ यह है कि इस्लाम ने जीवन के प्रश्नों के उत्तर अन्य सभी धर्मों से बेहतर रीति से दिए हैं? क्या इसका अर्थ यह है कि इस्लाम ऐसी नई बातें और शुभ समाचार लेकर आया है जो इस्लाम से पहले के धर्मों में मौजूद नहीं था? वे नई बातें कौन सी हैं जो इस्लाम लेकर आया है और जो इस्लाम से पहले के धर्मों में मौजूद नहीं थीं जिनके आधार पर इस्लाम दावा कर रहा है कि यह सिद्ध धर्म है?

एक मुसलमान होने के नाते क्या आपने इस सवाल पर कभी विचार किया है और इसका जवाब खोजने की कोशिश की है? आप जानते हैं कि अगर हम व्यक्तिगत तौर पर आत्मविश्वास पाना चाहते हैं या हमारे परिवार और दूसरे लोगों के सामने अपने दावों के बारे में स्पष्ट होना चाहते हैं, तो हमारे द्वारा किए जाने वाले दावों का तर्क खोजने के लिए हम सभी जिम्मेदार हैं।

विस्तार से विवरण पेश करने से पहले मैं संक्षेप में आपको बताना चाहता हूँ कि मेरा यह तर्क देने का कारण क्या है कि इस्लाम कोई भी

नया शुभ समाचार लेकर नहीं आया है, बल्कि इसने तो इब्राहीम, मूसा और ईसा (यीशु) के पुराने अच्छे धार्मिक सिद्धान्तों को नष्ट कर दिया है। इस्लाम द्वारा सिद्धता का दावा किया जाना केवल एक झूठा प्रचार है।

इस्लाम परमेश्वर के बारे में तर्कहीन बातें बोलता है

पहला कारण कि इस्लाम सिद्ध धर्म नहीं हो सकता, यह है कि यह परमेश्वर के बारे में तर्कहीन बातें बोलता है। इस्लाम परमेश्वर का परिचय कैसे देता है?

सूरह अल-हश्र (59) की आयत 23 और 24 में लिखा है कि अल्लाह पवित्र, सलामती, महान और बुद्धिमान है। लेकिन सूरह आले-इमरान (3) की आयत 54 और सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 30 में लिखा है कि अल्लाह सबसे अच्छी चाल चलता है। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 225 और सूरह आले-इमरान (3) की आयत 28 और सूरह अल-नहल (16) की आयत 106 में लिखा है कि अल्लाह ने मुसलमानों को कुछ हालात में झूठ बोलने की अनुमति दी है।

क्या आप इन आयतों में इतना बड़ा आपसी विरोध देख पा रहे हैं? एक ओर तो परमेश्वर को पवित्र, शान्ति का दाता, महान और बुद्धिमान कहा गया है और वहीं दूसरी ओर उसे सबसे बढ़िया चालबाज़ कहा गया है। ऐसा कैसे हो सकता है कि परमेश्वर पवित्र,

शान्ति का दाता, महान और बुद्धिमान होते हुए चालबाज़ भी हो? क्या एक चालबाज़ रब को महान और बुद्धिमान कहा जा सकता है?

परमेश्वर को पवित्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह चालबाज़ियों से नफरत करता है और कभी किसी को धोखा नहीं देता। सिद्ध परमेश्वर कभी भी धोखे और झूठ की अनुमति नहीं देता और सिद्ध धर्म कभी भी परमेश्वर को चालबाज़ या झूठा नहीं कह सकता। अगर आप परमेश्वर को चालबाज़ कह रहे हैं तो इसका अर्थ है कि वह सिद्ध नहीं है। तो फिर एक असिद्ध रब के धर्म को सिद्ध कैसे कहा जा सकता है?

अगर कोई व्यक्ति चालबाज़ी और झूठ बोलना सिखाता है तो क्या आप उसे सिद्ध कहते हैं? क्या आप उसकी आस्था को सिद्ध आस्था कहते हैं? नहीं, आप ऐसा नहीं कहते। इस्लाम के साथ भी ऐसा ही है। क्योंकि इस्लाम अपने रब को चालबाज़ और झूठा कहता है, इसलिए यह सिद्ध धर्म नहीं हो सकता।

इस्लाम के पास जीवन के प्रश्नों का सिद्ध उत्तर नहीं है

दूसरा कारण कि इस्लाम सिद्ध धर्म नहीं हो सकता, यह है कि इसके पास अन्य धर्मों से बढ़कर जीवन के प्रश्नों का सिद्ध उत्तर नहीं है।

पृथ्वी पर जीवन, न्याय का दिन और मौत के बाद के समय के बारे में इस्लाम का दृष्टिकोण अन्य धर्मों से बेहतर नहीं है जो मनुष्यों की

मुक्ति को उनके कामों पर आधारित करते हैं। तो फिर इस्लाम को अन्य धर्मों की अपेक्षा सिद्ध क्यों कहा जाता है? इस्लाम से पहले आए धर्मों के समान इस्लाम ने भी मुसलमानों को यही सिखाया कि पृथ्वी पर जीवन भलाई और बुराई के बीच होने वाले युद्ध का मैदान है और मनुष्य की मुक्ति इस संसार में किए जाने वाले भले कामों के द्वारा निरन्तर होने वाले शुद्धिकरण पर आधारित है। न्याय के दिन और मौत के बाद के समय से सम्बन्धित शिक्षाएँ भी एक जैसी ही हैं। वास्तव में तो इस मामले में इस्लाम की अपेक्षा अन्य धर्मों में बेहतर शिक्षा दी गई है। अन्य धर्मों में कम से कम इस्लाम के समान यह तो नहीं सिखाया गया है कि दूसरों पर अपना धर्म थोपने या उन्हें मार डालने से उन्हें जन्नत नसीब होगी।

मसीह में विश्वास के साथ तुलना किए जाने पर यह साफ तौर पर देखा जा सकता है कि इस्लाम मसीहत से बढ़कर सिद्ध होने का दावा करने में पूरी तरह विफल हो जाता है। इंजील में लिखा है कि ईसा (यीशु) पापरहित है, जीवित है, स्वर्ग में है और इसी कारण जीवन तथा स्वर्ग का मार्ग है। लेकिन क़ुरआन में मुहम्मद के बारे में ऐसी बातें कहीं नहीं लिखी हैं।

वास्तव में क़ुरआन भी इस बात की पुष्टि करता है कि ईसा (यीशु) पापरहित है, जीवित है और स्वर्ग में है, लेकिन ईसा (यीशु) के इन अद्भुत गुणों के बावजूद भी लोगों को उसका अनुकरण करने के लिए नहीं कहता। इसकी बजाय उन्हें मुहम्मद का अनुकरण करना सिखाता है जो खुद एक पापी था, मर चुका है और स्वर्ग में नहीं है।

इस तरह यह एकदम साफ है कि मसीहत सिद्ध है क्योंकि इसका अगुवा पापरहित है और सदाकाल के लिए जीवित है, जबकि इस्लाम सिद्ध नहीं है क्योंकि इसका अगुवा पापी है और अनिश्चितता में ही मर गया था।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि इस्लाम में अन्य धर्मों की तुलना में पृथ्वी पर पवित्र जीवन जीने, न्याय के दिन और मौत के बाद के समय के बारे में कोई बेहतर निर्देश नहीं दिए गए हैं। इसलिए इस्लाम को सिद्ध धर्म कहना बुद्धिमानी नहीं होगी।

इस्लाम ने एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास करने वाले धर्मों का नाश किया

तीसरा कारण कि इस्लाम सिद्ध धर्म नहीं हो सकता, यह है कि इसने अरब प्रायद्वीप में और पड़ोसी देशों में एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास करने वाले सभी धर्मों का नाश किया था।

"एकमात्र परमेश्वर" पर विश्वास करने वाले विभिन्न धर्म इस्लाम की स्थापना तक सारे अरब प्रायद्वीप में फैले हुए थे। इन धर्मों को इब्राहीम के परमेश्वर के धर्म कहा जाता था। सूरह अल-मोमिनून (23) की आयत 84 से 90 और सूरह लुक़मान (31) की आयत 24 और 25 में इस बात की पुष्टि की गई है कि अरब देशों के अधिकतर निवासी एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास करते थे। इब्राहीम के परमेश्वर के इन

धर्मों की रक्षा करने की बजाय इस्लाम ने उनका नाश कर दिया और उनके अनुयायियों को इस्लाम कबूल करने के लिए मजबूर किया।

इसका एक उदाहरण हनीफ का धर्म है। 'हनीफ' एक प्रसिद्ध धार्मिक समूह का नाम था जो इब्राहीम के परमेश्वर पर आस्था का प्रचार करता था और बहुदेववादी पूजा को ठुकराता था। वे अरबी थे और मुहम्मद के अपनी कबीले कुरैश से थे। इब्न इशाघ द्वारा लिखी गई मुहम्मद की जीवनी में इस बात की पुष्टि की गई है कि हनीफी लोग एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास करते थे और इब्राहीम के धर्म के अनुयायी थे। जब मुहम्मद ने इस्लाम का आरम्भ किया था, तो उसने इसे भी इब्राहीम का धर्म नाम दिया था (सूरह 3:95; 4:125; 6:161), हालाँकि उसने इब्राहीम के धर्म की अन्य आस्थाओं को नाश कर दिया था।

इस्लाम में कुछ समय के लिए मूर्तिपूजा की कानूनी रूप से अनुमति दी गई थी

हनीफी लोग एकमात्र परमेश्वर पर अपनी आस्था में मुहम्मद से अधिक मजबूत थे। वे किसी भी प्रकार की मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे और उनका यह अडिग विश्वास था कि परमेश्वर केवल एक ही है। लेकिन जब मुहम्मद मक्का में था तो उसने मुसलमानों को तीन मूर्तियों की पूजा करने के लिए कहा था। उसने सूरह अन-नज्म (53) में एक आयत बोली जो आयत 19 के बाद दर्ज है। ऐसा कहा जाता है कि जनन-शक्ति की देवी अल-लात, सामर्थ्य की देवी अल-उज़्ज़ा और भाग्य की देवी अल-मनात तीन देवियाँ थीं जो अल्लाह के काम

में उसकी मदद करती थीं। ऐसा कहने के बाद मुहम्मद और उसके अनुयायियों ने इन मूर्तियों को दण्डवत किया और उनकी पूजा की।

आप देख सकते हैं कि क़ुरआन ने मुहम्मद और उसके अनुयायियों से कहा कि वे परमेश्वर के अलावा तीन मूर्तियों की पूजा करें। मक्का के मुसलमान मदीना जाने तक मुहम्मद की अगुवाई में रहते हुए मूर्तियों की पूजा किया करते थे। मदीना पहुँचकर मुहम्मद ने कहा कि क़ुरआन की यह आयत शैतान की ओर से है। हनीफी, मसीही, यहूदी, पारसी और सेबाइन लोग न तो मूर्तियों पर आस्था रखते थे और न ही मूर्तियों की पूजा करते थे। वे तो इसके सख्त खिलाफ थे। एकमात्र परमेश्वर पर उनकी आत्मिक श्रद्धा मुहम्मद से कहीं अधिक मजबूत थी। मुहम्मद ने एकमात्र परमेश्वर पर उनकी इस श्रद्धा का बिल्कुल सम्मान नहीं किया, बल्कि उन्हें इस्लाम कबूल करने पर मजबूर किया।

तो फिर मूर्तियों की पूजा करने और एकमात्र परमेश्वर पर आस्था को नाश करने वाला इस्लाम इन धर्मों से अधिक सिद्ध कैसे हो सकता है जो किसी भी प्रकार की मूर्तिपूजा से दूर रहते थे? ऐसा हो ही नहीं सकता।

लेकिन आगे चलकर मूर्तिपूजा से सम्बन्धित यह आयत क़ुरआन में से निकाल दी गई थी। मुहम्मद की मौत के बाद मुहम्मद के उत्तराधिकारियों ने इस आयत को क़ुरआन में से निकाल दिया था। उनका मानना था कि यह आयत शैतान की ओर से थी और इसीलिए इसे हटाया जाना जरूरी था। पुरातन इस्लामिक विद्वानों ने इस आयत

को अपनी पुस्तकों में सुरक्षित रखा हुआ है और हमारी पहुँच उन तक हो सकती है। यह आयत इस प्रकार थी: "ये महिमावन्त स्त्रियाँ है और उनकी मध्यस्थी की सचमुच उम्मीद की जा सकती है।"

मुहम्मद द्वारा मूर्तिपूजा की अनुमति दिए जाने का कारण क्या था?

इसका मुख्य कारण उस पर आने वाला राजनीतिक दबाव था। वह अपनी वफादार और उत्साह देने वाली पत्नी खादिजा और अपने ताऊ अबुतालिब को खो चुका था, जो उस पर मूर्तिपूजकों की ओर से, जिसकी उसने मक्का में आलोचना की थी, आने वाले दबाव से उसकी रक्षा करने वाली उसकी ढाल थे। परिणाम स्वरूप वह अकेला पड़ गया और मक्का के अगुवों तथा उसके मुस्लिम मित्रों की ओर से आने वाले दबाव का खतरा उस पर बढ़ गया। इस कठिनाई के कारण उसने अपनी नीतियों में थोड़ा बदलाव किया, ताकि अपने विरोधियों का दिल खुश कर सके। इस कारण उसने इन तीन महत्त्वपूर्ण कुरैशी मूर्तियों की पूजा की कानूनी तौर पर अनुमति दे दी। ऐसा करके उसे मक्का में कुछ समय के लिए सुरक्षा मिल गई और फिर वह वहाँ से भागकर मदीना चला गया।

इसका कारण चाहे कुछ भी रहा हो कि मुहम्मद और उसके अनुयायियों ने मूर्तियों की पूजा क्यों की, तो भी आत्मिक क्षेत्र में इसे "परमेश्वर का स्थान दूसरों को दे देना" कहा जाता है। मुहम्मद से पहले हुए इब्राहीम ने, मूसा ने और ईसा (यीशु) ने कभी भी मूर्तिपूजा की अनुमति नहीं दी, जबकि मुहम्मद और क़ुरआन ने इसकी अनुमति दी थी, फिर चाहे यह थोड़े ही समय के लिए क्यों न दी गई हो।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि मुहम्मद का इस्लाम अन्य सभी धर्मों में से अधिक सिद्ध नहीं है। इस सिद्धता का दावा केवल एक राजनीतिक ढिंढोरा था और है और यह परमेश्वर के हृदय के एकदम विरुद्ध है।

इस्लाम कहता है कि लोगों के साथ कठोरता से व्यवहार करो

चौथा कारण कि इस्लाम सिद्ध धर्म नहीं हो सकता, यह है कि यह लोगों के साथ कठोरता से व्यवहार करने के लिए कहता है।

मैं अपने पिछले वक्तव्यों में भी कह चुका हूँ कि इस्लाम पतियों से कहता है कि वे अपनी पत्नियों की पिटाई करें; जबकि इब्राहीम, मूसा और ईसा (यीशु) के लिए यह बात एकदम स्वीकार योग्य नहीं थी। आपका धर्म क्या करने से सिद्ध धर्म बनता है, अपनी पत्नी से प्रेम करने तथा उसके साथ एक इंसान जैसा व्यवहार करने से या फिर उसकी पिटाई करने से? इस्लाम सिद्ध धर्म हो ही नहीं सकता।

इस्लाम में यह भी कहा गया है कि मुहम्मद ने जो कुछ सिखाया, लोगों को अपनी आँखें बन्द करके उसका पालन करना चाहिए। यह बात भी इब्राहीम, मूसा और ईसा (यीशु) की आस्था में स्वीकार योग्य नहीं है।

इस्लाम बच्चों को सिखाता है कि अगर उनके माता-पिता इस्लाम का पालन नहीं करते तो वे अपने माता-पिता की अधीनता को छोड़

सकते हैं। इस रवैये को भी सिद्ध नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह परमेश्वर की इच्छा के खिलाफ है, जिसने लोगों को चयन की आज़ादी देकर सृजा है और बच्चों से कहता है कि वे अपने माता-पिता का आदर करें।

इस्लाम यह भी कहता है कि मुसलमानों को बाकी सारे धर्मों को पूरी तरह मिटा देना चाहिए और लोगों को इस्लाम कबूल करने के लिए मजबूर करना चाहिए।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि इस्लाम पिछले किसी भी धर्म से बेहतर नहीं है, बल्कि यह उनसे कहीं अधिक कठोर है और परिवार या अन्य सम्बन्धों के विषय में अधिक असिद्ध है।

इस्लाम ने अपने अन्दर से सिद्ध सिद्धान्तों को खत्म कर दिया है। विवेक मनुष्यों के सम्बन्धों में प्रेम, आनन्द, माफी, शान्ति, धीरज, कृपा, भलाई, कोमलता, संयम जैसे सिद्ध रवैयों की माँग करता है। क्यों? ये रवैये लोगों को एक दूसरे के समीप लाते हैं ताकि सर्वोत्तम परिवेश की खोज करने के लिए वे रचनात्मक तरीके से एक दूसरे के साथ मिलकर काम कर सकें, एक साथ शान्ति में रह सकें और एक दूसरे के साथ का आनन्द ले सकें।

लेकिन इस्लाम में ऐसे रवैयों पर रोक लगाई गई है। इस्लाम कहता है कि इस्लाम के विरोधियों और गैर-मुसलमानों को यातनाएँ दी जाएँ और उन्हें नाश कर दिया जाए। इस्लाम पतियों को अधिक अधिकार देता है और उनसे कहता है कि वे अपनी पत्नियों की पिटाई करें। एक

पति और एक पत्नी में पाए जाने वाले प्यार के लिए इस्लाम एक खतरा है, क्योंकि यह पुरुषों से कहता है कि वे एक से अधिक पत्नियाँ रखें। नरम दिल मुसलमानों, गैर-मुसलमानों और इस्लाम को कबूल न करने वाले सभी लोगों के लिए इस्लाम एक खतरा है। इन कठोर रवैयों के कारण इस्लाम को सिद्ध धर्म नहीं कहा जा सकता।

इस्लाम उद्धार का आश्वासन नहीं देता

पाँचवाँ कारण कि इस्लाम सिद्ध धर्म नहीं हो सकता, यह है कि यह उद्धार का आश्वासन नहीं देता।

हालाँकि उद्धार का आश्वासन परमेश्वर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सन्देश है, तो भी इस्लाम में यह नहीं पाया जाता। कोई भी मुसलमान अपनी मौत के बाद के समय के बारे में आत्मविश्वास के साथ बात नहीं कर सकता। इस्लाम के रब ने तो अपने प्यारे मुहम्मद को भी अनिश्चितता में छोड़ दिया था, जो अपने भविष्य को लेकर डर के साथ ही मर गया। इस्लाम का रब अपने वफादारों को पृथ्वी पर उनके जीवन के दौरान बचाने और उनकी खुशी को पूरा करने के काबिल नहीं है।

अनिश्चितता और उसके कारण आने वाले डर को सिद्धता नहीं कहा जा सकता। अवश्य है कि सिद्ध धर्म का परमेश्वर अपने मिशन को सिद्धता में पूरा करे, पृथ्वी पर लोगों के जीवन के दौरान ही उन्हें मुक्ति दे और उन्हें आत्मविश्वास तथा आनन्द दे। क्या यह बात निराशा भरी नहीं है कि इस्लाम का रब मुसलमानों को इस बात का सौ

प्रतिशत आश्वासन देता है कि जो लोग शैतान के पीछे चलते हैं वे नरक जाएँगे, लेकिन अपने धर्मी मुसलमान अनुयायियों को इस बात का सौ प्रतिशत आश्वासन कभी नहीं देता कि वे जन्नत जाएँगे?

बाइबल के सभी अनुयायी, फिर चाहे वे नबी हों या जनसाधारण, अपनी मुक्ति का आश्वासन प्राप्त करते हैं और वे सीधे स्वर्ग अर्थात जन्नत जा रहे हैं।

तो फिर उद्धार के आश्वासन के बिना इस्लाम अन्य धर्मों से अधिक सिद्ध धर्म कैसे हो सकता है? यह असम्भव है?

"सिद्ध" शब्द सुन्दर है और प्रोत्साहन देता है। लेकिन आम तौर पर इसे अपनी मन-मर्जी से कहीं भी इस्तेमाल कर लिया जाता है। इस्लाम उन धर्मों में से एक है जो अपने नाम के साथ सिद्ध शब्द का इस्तेमाल अपनी मन-मर्जी से कर लेता है। संसार में ऐसे अनेक लोग और आस्थाएँ हैं, जो अपने आप को सिद्ध कहते हैं। लेकिन यह हमारी व्यक्तिगत जिम्मेदारी होनी चाहिए कि हम उनके दावों को परखें और पता करें कि क्या उनके इन दावों में कोई सच्चाई है भी या नहीं। ऐसा करके हम खुद को और अपने परिवार को झूठ से बचा पाएँगे। झूठ बहुत बुरी बात है, फिर चाहे यह हमारी अपनी आस्था में पाया जाता हो, या हमारे परिवार में, या पुरखों में, या फिर दूसरों में; हमें इससे सावधान रहना है और इससे अपनी रक्षा करनी है।

आप देख सकते हैं कि सुन्नी और शिया समुदाय के मुसलमान अगुवे पिछले 1400 वर्षों से यह दावा करते आ रहे हैं कि इस्लाम सिद्ध धर्म

है। लेकिन उनके काम दर्शाते हैं कि उनके इन दावों में कोई सच्चाई नहीं है। एक समुदाय के अगुवे दूसरे समुदाय के अनुयायियों को अविश्वासी या काफिर कहते हैं, जिसका अर्थ है कि क़ुरआन के अनुसार उन्हें पूरी तरह नाश कर दिया जाना चाहिए। पिछले 1400 वर्षों के दौरान इन दोनों समुदायों ने एक दूसरे के करोड़ों अनुयायियों को मौत के घाट उतारा है। अगर इस्लाम सिद्ध धर्म है, तो फिर वे अपने सिद्ध धर्म में से सम्बन्धों के क्षेत्र में सिद्ध सिद्धान्त क्यों नहीं निकाल पा रहे हैं, जिनके कारण वे एक दूसरे के अधिकारों को स्वीकार कर पाएँ, एक दूसरे का सम्मान करें और एक दूसरे के साथ शान्ति से रहें? समस्या उनकी अपनी नहीं है। समस्या इस्लाम की जड़ों में है। इस्लाम में इस बात की अनुमति दी गई है कि काफिरों की सम्पत्ति लूट ली जाए और उनका नाश कर दिया जाए। अगर क़ुरआन ईसा (यीशु) मसीह की इंजील की तरह होता, जिसमें अपने विरोधियों और शत्रुओं से प्रेम करने का आदेश दिया गया है, तो कोई भी मुसलमान कभी किसी को मारने की इच्छा न रखता। लेकिन अफसोस कि क़ुरआन इंजील के समान नहीं है। इसलिए इस्लाम को अन्तिम और सिद्ध धर्म कहने का कोई तार्किक कारण मौजूद नहीं है।

चिन्तन का समय 10

1. संसार में ऐसे अनेक लोग हैं जो दावा करते हैं कि केवल उनकी आस्था ही सर्वोत्तम और संसार के लिए सिद्ध चयन है। लेकिन इनमें से केवल एक का दावा ही सच्चा हो सकता है और बाकी दावे झूठे हैं। हम सच्चे दावे की खोज कैसे कर सकते हैं?

2. क्या आपके पास इस बात का कोई कारण मौजूद है कि क्यों इस्लाम अन्तिम और सिद्ध धर्म नहीं हो सकता? एक उदाहरण दें।
3. मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के पास अपनी आस्थाओं का पालन करने का कोई तार्किक कारण क्यों होना चाहिए?
4. अगर कोई व्यक्ति यह झूठा दावा करेगा कि उसका धर्म परमेश्वर की ओर से है, तो परमेश्वर को कैसा महसूस होगा?
5. अगर आपने जान लिया है कि ईसा (यीशु) मसीह का मार्ग ही एकमात्र सच्चा मार्ग है, तो क्या फिर यह आपके लिए सही समय नहीं है कि आप उस पर ईमान ले आएँ?

आपका अच्छा अगुवा कौन हो सकता है, ईसा (यीशु) या मुहम्मद?

आपके लिए अच्छे मानक वाला आत्मिक अगुवा कौन हो सकता है, पापी अगुवा या फिर पापरहित अगुवा? मैंने पिछले 20 वर्षों में ऐसे सवाल अनेक लोगों से पूछे हैं। क्या एक पापी अगुवा आत्मिक जीवन में आपकी अच्छी अगुवाई कर सकता है? आपके लिए कौन सी गाड़ी अच्छी तरह चलेगी, अच्छी कार या खराब कार? आपका अच्छा वैवाहिक जीवन किसके साथ बीतेगा, एक कृपालु और प्रेमी जीवनसाथी के साथ या फिर क्रोधित और झगड़ालू जीवनसाथी के साथ?

लोग जवाब में हमेशा कहते हैं कि एक अच्छा अगुवा, एक अच्छा जीवनसाथी, एक अच्छी कार और हर एक अच्छी वस्तु ही हमारे जीवन को बेहतर बनाती है। क्यों? क्योंकि परमेश्वर ने हमें इस रीति से सृजा है कि हम अपने दिल की गहराइयों से बेहतर और उत्तम वस्तुएँ ही चाहते हैं। हम कभी नहीं चाहते कि हमारा परिवार या जीवनसाथी या घर या अगुवा या कार या कोई अन्य वस्तु खराब हो। आप कभी भी खराब वस्तुएँ खरीदने के लिए बाजार नहीं जाते। आप हमेशा अच्छी वस्तुओं पर ही पैसा खर्च करना चाहते हैं। सफलता बेहतर वस्तुओं के द्वारा ही मिलती है। सफल अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ इसलिए सफल हैं क्योंकि वे अच्छे मानकों का पालन करती हैं। वे

अच्छे और भरोसेमन्द उत्पाद बनाने के लिए बहुत बड़ी धनराशि खर्च करती हैं, ताकि ग्राहकों को आकर्षित कर सकें और उन्हें खो न दें।

आत्मिक क्षेत्र में भी ऐसा ही होता है। क्योंकि परमेश्वर अच्छा और सिद्ध है, इसलिए वह अच्छी और सिद्ध वस्तुएँ चाहता है। वह चाहता है कि हम उसके अच्छे और सिद्ध आदर्श का पालन करें। परमेश्वर चाहता है कि हम सिद्ध और स्वर्गिक अगुवे का अनुकरण करें। परमेश्वर पापरहित अगुवे की अपेक्षा पापी अगुवे को कभी नहीं चाहेगा। वह चाहता है कि हम पापरहित अगुवे को अपना आदर्श बनाएँ। यहाँ तक कि आपके अपने क़ुरआन में सूरह अज़-ज़ुमर (39) की आयत 17 से 18 में लिखा है: ... उनके लिए शुभ सूचना है ... जो बात को ध्यान से सुनते हैं; फिर उस अच्छी से अच्छी बात का अनुपालन करते हैं। ये आयतें कह रही हैं कि आपको क़ुरआन को पढ़ना है और देखना है कि अच्छे से अच्छे मानक वाला व्यक्ति कौन है और फिर उसका अनुपालन करना है।

आइए क़ुरआन में से देखें; अगर ईसा (यीशु) पापरहित है और मुहम्मद से अधिक आत्मिक है, तो फिर आप मुसलमानों को अपने अच्छे आदर्श के तौर पर मुहम्मद की बजाय ईसा (यीशु) का अनुकरण करने की जरूरत है।

क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) दिव्य रूप से अभिषिक्त है

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 45 और सूरह अन-निसा (4) की आयत 171 में लिखा है कि ईसा (यीशु) ही मसीह है। "मसीह" शब्द का अर्थ क्या होता है? मसीह का अर्थ "अभिषिक्त जन" होता है; अर्थात वह जिसे परमेश्वर ने अपने सेवाकार्य के लिए अपने आत्मा से अभिषेक अर्थात मसह किया है। जब खुद परमेश्वर किसी को अभिषिक्त करता है, तो इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति पवित्र और पापरहित होता है। क़ुरआन कहीं पर भी ऐसा नहीं कहता कि परमेश्वर ने खुद को मुहम्मद पर प्रकट किया और उसे अपने सेवाकार्य के लिए खुद अभिषेक किया।

आप देख सकते हैं कि क़ुरआन में ईसा (यीशु) मसीह की आत्मिक पदवी मुहम्मद की आत्मिक पदवी से ऊँची है। आपको किसका अनुकरण करना चाहिए, क्या उसका जो परमेश्वर के साथ था और जिसे परमेश्वर ने खुद छूआ था, या फिर उसका जिसने न तो परमेश्वर को कभी देखा था और न ही जिसे परमेश्वर ने छूआ था?

क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर का दिव्य वचन (कलिमा) है

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 45 और सूरह अन-निसा (4) की आयत 171 में लिखा है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर का वचन

(कलिमा) है। धार्मिक दर्शनशास्त्र में केवल परमेश्वर को ही "वचन" कहा जाता है। "वचन" परमेश्वर का दार्शनिक नाम है। अगर आप मुस्लिम दार्शनिकों से पूछें कि "परमेश्वर क्या है?" तो उनका जवाब होगा, "वह वचन (कलिमा) है।" दिलचस्प बात यह है कि क़ुरआन में ईसा (यीशु) का विवरण वैसे ही दिया गया है जैसे इस्लामिक दर्शनशास्त्र में परमेश्वर का दिया गया है। कहने का भाव यह है कि जब क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर का वचन है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि "उसमें परमेश्वर का स्वभाव, उसकी प्रकृति मौजूद है।"

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि परमेश्वर कैसे "वचन" बनकर लोगों में काम करता है। जब व्यावहारिक बात होती है, तो यह परमेश्वर जो वचन है, खुद का विवरण दो प्रकार से देता है। एक है लिखित वचन के द्वारा, और दूसरा है व्यक्तिगत प्रकाशन के द्वारा। "लिखित वचन के द्वारा" का अर्थ है कि परमेश्वर जो वचन है वह खुद का विवरण स्वर्गिक पवित्र शास्त्र के द्वारा देता है। "व्यक्तिगत प्रकाशन के द्वारा" का अर्थ है कि वचन (परमेश्वर) खुद को व्यक्तिगत तौर पर प्रकट करता है। लिखित वचन के द्वारा परमेश्वर अपने गुणों का वर्णन करता है और हमारे लिए अपनी योजना को बताता है ताकि हमें उसके साथ एक निजी मुलाकात के लिए तैयार कर सके। लेकिन परमेश्वर का व्यक्तिगत प्रकाशन हम पर उसकी महिमा को व्यक्तिगत रीति से प्रकट करता है ताकि हमारा ध्यान उसकी ओर खींच सके और ताकि उसके लिखित वचन के साथ उसे अपने दिलों में बुलाने के लिए हमें तैयार कर सके। कहने का भाव यह है कि अगर परमेश्वर खुद को

प्रकट नहीं करता और हमारे दिलों में वास नहीं करता, तो उसके वचन हमारे जीवन में व्यावहारिक रूप नहीं लेंगे।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ और इसे समझने में आपकी मदद करता हूँ: आपके शारीरिक पिता की उपस्थिति उसके निर्देशों को आपके लिए, आप जो उसकी सन्तान हैं, सार्थक बनाती है। अगर आपका पिता खुद को छिपा ले, तो फिर घनिष्ठता की कमी उसके निर्देशों की व्यावहारिकता को एक घनिष्ठ जीवन के लिए कम कर देगी। परमेश्वर के साथ आपके सम्बन्ध में भी ऐसा ही होता है। अगर परमेश्वर का आपके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, तो उसकी दूरी उसके वचनों को भी आपसे दूर ले जाएगी।

क्योंकि क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) को परमेश्वर ने खुद छूआ था और इसमें ईसा (यीशु) को परमेश्वर के व्यक्तिगत नाम के साथ बुलाया गया है, तो इसका अर्थ यह है कि केवल ईसा (यीशु) ही है जो परमेश्वर के लिखित वचन को अर्थात पवित्र शास्त्र को आपके दिल में ला सकता है और आपको बचा सकता है। यह वह सर्वोच्च स्वर्गिक पदवी है जो क़ुरआन में ईसा (यीशु) को तो दी गई है, लेकिन मुहम्मद को नहीं दी गई।

इसलिए मुहम्मद परमेश्वर के लिखित वचन को आपके जीवन के लिए सार्थक बनाने में सक्षम ही नहीं है। मुहम्मद परमेश्वर का व्यक्तिगत वचन नहीं है। इसलिए वह आप में और परमेश्वर में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के योग्य हो ही नहीं सकता। इसी कारण उसने कहा कि वह अपने खुद के भविष्य के बारे में सुनिश्चित नहीं है और

अपने अनुयायियों को भी यह आश्वासन नहीं दे पाया। दूसरी बात, ईसा (यीशु) का परमेश्वर के साथ एक व्यक्तिगत सम्बन्ध था, लेकिन मुहम्मद का परमेश्वर के साथ ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं था और इसलिए वह मनुष्यों के सामने परमेश्वर का ऐसा विवरण कभी नहीं दे पाएगा जैसा ईसा (यीशु) ने दिया।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि क़ुरआन की शिक्षाओं के अनुसार ईसा (यीशु) का परिचय परमेश्वर के नाम के साथ दिया गया है और मुहम्मद की बजाय उसकी आत्मिक पदवी बहुत ऊँची है। इसलिए आप मुसलमानों को मुहम्मद की बजाय ईसा (यीशु) का अनुकरण करने की जरूरत है।

क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर का आत्मा (रूह) है

सूरह अन-निसा (4) की आयत 171, सूरह मरयम (19) की आयत 17 और सूरह अल-अंबिया (21) की आयत 91 में लिखा है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर का रूह है।

कुछ मुस्लिम विद्वान इसकी गलत व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह परमेश्वर का रूह नहीं बल्कि किसी फरिश्ते का रूह है या ऐसे ही कोई रूह है, जिसे मरियम ने जन्म दिया था। यह क़ुरआन की शिक्षा के विपरीत है। अरबी क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर ने अपना रूह मरियम में भेजा था, कोई और रूह या फरिश्ते का रूह नहीं। परमेश्वर

का रूह और किसी फरिश्ते का या अन्य कोई रूह एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। अगर परमेश्वर अपने किसी फरिश्ते को भेजना चाहता, तो वह साफ-साफ कह देता कि वह अपने फरिश्ते को भेजेगा। वह अस्पष्ट रूप में बात नहीं करेगा। इसलिए जो लोग इसे परमेश्वर का एक फरिश्ता कहते हैं, वे खुद अपने क़ुरआन के शब्दों के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं।

मान लीजिए के मरियम के पास एक फरिश्ता आया था और उसी ने ईसा (यीशु) मसीह के तौर पर जन्म लिया था, तो भी ईसा (यीशु) मसीह की आत्मिक पदवी मुहम्मद की आत्मिक पदवी से ऊँची होती। क्योंकि फरिश्ता तो हमेशा परमेश्वर के साथ होता है, सदाकाल के लिए जीवित है और अदृश्य संसार के बारे में सबकुछ जानता है। लेकिन सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 188 में मुहम्मद कहता है कि वह अदृश्य संसार के बारे में कुछ भी नहीं जानता। सो, ईसा (यीशु) तो परमेश्वर के बारे में सबकुछ जानता है, जबकि मुहम्मद कुछ भी नहीं जानता। हम यह भी जानते हैं कि मुहम्मद मर चुका है और स्वर्ग में नहीं है।

इस प्रकार "परमेश्वर के रूह" का अनुवाद चाहे एक फरिश्ते के तौर पर किया जाए या चाहे अरबी के मूल रूप में, दोनों ही अनुवादों में ईसा (यीशु) मसीह की आत्मिक पदवी मुहम्मद की आत्मिक पदवी से ऊँची होगी। इसलिए आपके लिए बेहतर होगा कि आप उसका अनुकरण करें, जिसकी पदवी मुहम्मद से ऊँची है।

क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) सृष्टिकर्ता और चंगा करने वाला है

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 49 और सूरह अल-माइदा (5) की आयत 110 में लिखा है कि ईसा (यीशु) ने मिट्टी से पक्षी बनाकर उसे उड़ा दिया, मुर्दों को जीवित कर दिया और अन्धों को आँखें दे दीं।

क़ुरआन के अनुसार ईसा (यीशु) अभी भी जीवित है और स्वर्ग में है। क्योंकि वह अभी भी जीवित है, इसलिए उसके पास रचने, चंगा करने और मृतकों को जीवित करने का सामर्थ्य अभी भी है, लेकिन मुहम्मद के पास ऐसा स्वर्गिक सामर्थ्य मौजूद नहीं है। सब लोगों को एक चंगा करने वाले और जीवनदान देने वाले की जरूरत है। हमें जीवनदाता को उस व्यक्ति से अधिक सम्मान देना चाहिए, जिसके पास जीवन देने का सामर्थ्य नहीं है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि ईसा (यीशु) आपका अगुवा हो और आपको चंगाई तथा जीवन का आश्वासन मिले? आपके लिए अच्छा है कि आप ईसा (यीशु) का अनुकरण करें।

क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) पवित्र और पापरहित है

सूरह मरयम (19) की आयत 19 में लिखा है कि ईसा (यीशु) मसीह पापरहित और पवित्र है। क़ुरआन में ईसा (यीशु) के अलावा और

किसी को भी पापरहित नहीं कहा गया है। क़ुरआन सब नबियों को और मुहम्मद को पापी कहता है। कुछ मुसलमान मानते हैं कि मुहम्मद पापरहित है। ऐसी मान्यता क़ुरआन की शिक्षा के खिलाफ है।

देखिए कि क़ुरआन में मुहम्मद के बारे में क्या लिखा है: सूरह मुहम्मद (47) की आयत 19 में मुहम्मद से कहा गया है: ...अपने गुनाहों के लिए क्षमा-याचना करो और मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों के लिए भी। सूरह अल-फ़तह (48) की आयत 2 में लिखा है: अल्लाह तुम्हारे अगले और पिछले गुनाहों को क्षमा कर दे। सूरह गफ़ीर (अर्थात सूरह अल-मोमिन) (40) की आयत 55 में मुहम्मद से कहा गया है: अपने क़सूर की क्षमा चाहो। सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 188 में मुहम्मद कहता है: ... यदि मुझे परोक्ष (ग़ैब) का ज्ञान होता तो बहुत-सी भलाई समेट लेता और मुझे कभी कोई हानि न पहुँचती।

अगर मुहम्मद पापरहित व्यक्ति होता, तो वह ऐसी बात कभी नहीं कहता। वह कबूल कर रहा है कि उसे दुष्ट ने छूआ और उससे पाप करवाया। ये सारी आयतें कहती हैं कि मुहम्मद पापी था। साथ ही, सूरह लुक़मान (31) की आयत 34 और सूरह अल-अहक़ाफ़ (46) की आयत 9 में लिखा है कि मुहम्मद इस बात को लेकर सुनिश्चित नहीं था कि उसकी मौत के बाद उसकी मुक्ति होगी या नहीं होगी। इसका अर्थ यह है कि मुहम्मद इस बात के लिए सुनिश्चित नहीं था

कि उसके पाप माफ हुए है या नहीं, वरना वह भविष्य को लेकर चिन्तित नहीं होता।

आप देख सकते है कि क़ुरआन में मुहम्मद को तो पापी कहा गया है, लेकिन ईसा (यीशु) को धर्मी, पवित्र और पापरहित कहा गया है। एक पापी आपको पवित्रता तथा धार्मिकता में नहीं ले सकता। आपको पापी मुहम्मद की बजाय पापरहित ईसा (यीशु) का अनुकरण करने की जरूरत है।

क़ुरआन में लिखा है कि ईसा (यीशु) जीवित है और स्वर्ग में है

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 55 और सूरह अन-निसा (4) की आयत 158 में लिखा है कि ईसा (यीशु) को स्वर्ग में उठा लिया गया था। लेकिन मुहम्मद मर गया और सूरह मरयम (19) की आयत 66 से 72 के अनुसार वह स्वर्ग में नहीं है।

क़ुरआन खुद आपसे कह रहा है कि ईसा (यीशु) जीवित है और स्वर्ग में है, लेकिन मुहम्मद मर गया है और स्वर्ग में नहीं है; वह अन्तिम दिन होने वाले न्याय की प्रतीक्षा में है। इसलिए हम सभी को उसका अनुकरण करने की जरूरत है जो जीवित है और स्वर्ग में है। केवल वही है जो हमें स्वर्ग ले जा सकता है, क्योंकि वह खुद स्वर्ग में है।

आप देख सकते हैं कि क़ुरआन खुद यह प्रकट कर रहा है कि ईसा (यीशु) मुहम्मद से अधिक महान है। अगर आप ईसा (यीशु) मसीह

की इंजील को पढ़ेंगे तो आप हैरान रह जाएँगे। ईसा (यीशु) मसीह का अनुकरण करें।

चिन्तन का समय 11

1. कुछ मुसलमान कहते हैं कि हालाँकि क़ुरआन में ईसा (यीशु) को पापरहित और मुहम्मद से अधिक आत्मिक बताया गया है, तो भी परमेश्वर ने धरती पर अपने मिशन को पूरा करने की जिम्मेदारी मुहम्मद को सौंपी है। आप इस बारे में क्या कहते हैं? क्या परमेश्वर अपने काम को पूरा करने की जिम्मेदारी एक पापी को देगा या उसे जो पापरहित है?
2. मान लीजिए कि परमेश्वर अपने काम को पूरा करने की जिम्मेदारी पापरहित व्यक्ति की बजाय एक पापी को देता है, तो क्या इससे लोग यह नहीं सोचने लगेंगे कि परमेश्वर पवित्रता की बजाय पाप को पहल देता है? क्या इससे लोग अपनी मन-मर्जी से अगुवों का अनुकरण नहीं करने लगेंगे क्योंकि परमेश्वर तो किसी सिद्ध मानक को मानता ही नहीं है?
3. अगर तर्क के आधार पर बात की जाए तो क्या अपने आदर्श के तौर पर पापी व्यक्ति की बजाय हमें पापरहित आत्मिक अगुवे का अनुकरण नहीं करना चाहिए?
4. इंजील संसार भर में मुसलमानों की भाषा में उपलब्ध है। क्या आपको नहीं लगता कि मुसलमानों को खुद इंजील पढ़नी चाहिए और खुद ईसा (यीशु) मसीह के चरित्र का दीवाना हो जाना चाहिए?

5. मुसलमानों के लिए प्रार्थना करें कि उनमें इंजील पढ़ने का साहस आए।

इस्लाम में अगुवाई अव्यवस्थित है

जैसा कि आप जानते हैं कि अगर अपने जीवन में किसी भी मसले पर की जाने वाली चर्चा अपने विवेक का हवाला लिए बिना की जाए, तो यह हमें लापरवाही, कट्टरता या कर्कशता की ओर ले जाती है। अगुवाई के साथ भी ऐसा ही होता है। इसी कारण आज की हमारी चर्चा में आगे बढ़ने से पहले मैं जागृति लाने वाले कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ और उनके उत्तर खोजना चाहता हूँ, ताकि हम खुले मनों और दिलों के साथ आगे बढ़ सकें।

आप अपने परिवार या समाज में कैसी अगुवाई देखना चाहते हैं?

एक दीन अगुवा जो खुद को अपने परिवार और समाज का सेवक मानता है, पुरुष और स्त्री, अपने और पराए में कोई भेदभाव नहीं करता, और आलोचना को बर्दाश्त करता है। जो अगुवा तानाशाह और पक्षपाती होता है, वह आलोचना को बर्दाश्त नहीं करता, बल्कि अपने विरोधियों पर अत्याचार करता है और उन्हें नाश कर देता है।

मेरे अपने व्यक्तिगत अनुभव से, कई वर्षों से विभिन्न संस्कृतियों पर किए गए अध्ययन से और संसार के विभिन्न देशों में मेरी यात्रा से

मुझे यही पता चला है कि लोग एक अच्छा और दीन अगुवा चाहते हैं। मैं जानता हूँ कि आपका विवेक भी यही कहता है। क्या आप ऐसा अगुवा चाहेंगे जो दूसरों के साथ उनकी आस्था, राष्ट्रीयता या जाति की परवाह किए बिना और अपने अनुयायियों के साथ एक समान बर्ताव करता है, या फिर आप ऐसा अगुवा चाहेंगे जो दूसरों के साथ भेदभाव करता है और अगर वे उसकी आस्था का या उसका पालन नहीं करते तो उन्हें नाश भी कर देता है? हमारा विवेक हमें बताता है कि एक अच्छा अगुवा हर प्रकार के भेदभाव से दूर रहता है।

एक मुस्लिम अगुवा न केवल पति और पत्नी में, पुरुष और स्त्री में, अपने और पराए में भेदभाव करता है, बल्कि अगर वे चुपचाप उसकी बातों का पालन न करें तो उन्हें नाश करने का अधिकार भी रखता है। मैं आपको इस्लाम के वे निर्देश बताना चाहता हूँ, जो एक अगुवे को दूसरों के साथ भेदभाव करने का अधिकार देते हैं।

परिवार में भेदभाव

सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 228 और सूरह अन-निसा (4) की आयत 34 में लिखा है कि स्त्रियाँ हीन वर्ग में आती हैं। सूरह अन-निसा (4) की आयत 11 और 176 में लिखा है कि सम्पत्ति में से बेटे की तुलना में बेटी को आधा हिस्सा ही मिलेगा। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 282 में लिखा है कि दो स्त्रियों की गवाही एक पुरुष की गवाही के बराबर है। सूरह अल-अहज़ाब (33) की आयत 33

में लिखा है कि स्त्रियों को घरों में टिककर रहना चाहिए और बाहर नहीं जाना चाहिए। सूरह अन-नज्म (53) की आयत 2 हमें बताती है कि मुहम्मद अपनी पत्नियों का मालिक है। सूरह अन-निसा (4) की आयत 34 और सूरह साद (38) की आयत 44 हमें बताती है कि पति अपनी पत्नियों की पिटाई कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो लोग क़ुरआन को मानते हैं वे इस पारिवारिक भेदभाव का पालन रोजाना करते हैं।

परिवार के पुरुष अगुवे के पास अपने परिवार के सदस्यों की हत्या करने का अधिकार है

सूरह अत-तौबा (9) की आयत 123 में लिखा है: ऐ ईमान लानेवालो (मुसलमानो)! उन इनकार करनेवालों से लड़ो जो तुम्हारे निकट हैं और चाहिए कि वे तुममें सख़्ती पाएँ, और जान रखो कि अल्लाह डर रखनेवालों के साथ है।

इसका अर्थ है कि एक धर्मी मुसलमान के पास यह धार्मिक अधिकार है कि अगर उसके अपने परिवार के लोग, उसके रिश्तेदार, उसके मित्र और पड़ोसी इस्लाम का पालन नहीं करते, तो वह उनसे लड़ाई करे और यहाँ तक कि उनकी हत्या भी कर दे। इस प्रकार एक मुस्लिम अगुवे के पास अपने परिवार के लोगों, मित्रों और पड़ोसियों को धर्म की खातिर मार डालने का अधिकार भी है।

समाज में भेदभाव

हमने क़ुरआन में से वे आयतें देखीं हैं जो परिवार में भेदभाव लाती हैं। अब हम उन आयतों को देखेंगे जो समाज में भेदभाव लाती हैं।

सूरह अल-अहज़ाब (33) की आयत 36 में लिखा है: न किसी ईमानवाले पुरुष और न किसी ईमानवाली स्त्री को यह अधिकार है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले का फ़ैसला कर दें, तो फिर उन्हें अपने मामले में कोई अधिकार शेष रहे। इस प्रकार क़ुरआन के अनुसार एक मुस्लिम अगुवे को अपने नेतृत्व में सम्पूर्ण अधिकार मिला है और बाकी लोग उससे सवाल नहीं कर सकते। सूरह अल-मुजादला (58) की आयत 20 में लिखा है: निश्चय ही जो लोग अल्लाह और उसके रसूल का विरोध करते हैं वे अत्यन्त अपमानित लोगों में से हैं।

अगुवाई पर किए जाने वाले तुलनात्मक अध्ययन में इसे एक तरफा अगुवाई या तानाशाही कहा जाता है, जिसमें अगुवा अपने अनुयायियों से उम्मीद करता है कि वे आँखें बन्द करके उसके पीछे चलते रहें।

आगे जो चित्र दिया गया है उसमें मुहम्मद की अगुवाई की तुलना ईसा (यीशु) की अगुवाई के साथ की गई है। एक सिर वाला तीर अगुवाई की उस शैली को दर्शाता है जिसमें अनुयायियों के पास कोई अधिकार नहीं होता, जबकि दो सिर वाला तीर खुली अगुवाई की

उस शैली को दर्शाता है, जिसमें अनुयायियों को अधिकार दिए जाते हैं। इसमें आप देख सकते हैं कि मुहम्मद की अगुवाई में होने वाली बातचीत एक तरफा बातचीत है, जो ऊपर से नीचे को होती है, और लोगों के पास यह अधिकार नहीं होता कि वे अपने विचार सामने रखें, जबकि ईसा (यीशु) की अगुवाई की शैली में अनुयायियों को शामिल किया जाता है और उन्हें अधिकार तथा आज़ादी दी जाती है कि वे आपस में और अपने अगुवों के सामने अपने विचार रखें।

मुहम्मद और यीशु
की अगुवाई की तुलना

मुहम्मद की अगुवाई

⇩ एक तरफा बातचीत ⇩

अनुयायी अनुयायी

==========

यीशु की अगुवाई

⇳ बहु-तरफा बातचीत ⇳

अनुयायी ⇔ अनुयायी

मैं आपको इस्लामिक अगुवाई में पाई जाने वाली कट्टरता का एक उदाहरण देना चाहता हूँ। बुखारी की हदीस 330 में पुस्तक 89 के खण्ड 9 में लिखा है कि मुहम्मद ने कहा: "मैं आग जलाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठा करने का हुक्म देने वाला था और फिर किसी को हुक्म देने वाला था कि वह नमाज के लिए अजान[8] दे और फिर हुक्म देने वाला था कि कोई नमाज में लोगों की अगुवाई करे और फिर मैं पीछे से जाता ताकि उन लोगों के घरों को जलाकर फूँक डालूँ जो नमाज अदा करने के लिए नहीं पहुँचे।"

सर्वोच्च इस्लामिक अगुवाई पर बैठा मुहम्मद चाहता था कि वह सबके साथ मिलकर अदा की जाने वाली नमाज को छोड़कर जाए और उन लोगों के घरों को जलाकर फूँक डाले जो नमाज अदा करने के लिए हाजिर नहीं हुए। आज के हर एक मुस्लिम अगुवे के पास भी यह अधिकार है कि वह मुहम्मद की अगुवाई के आदर्श का पालन उन लोगों के खिलाफ उसी कर्कशता के साथ करे जो नमाज अदा नहीं करते। इस्लाम में अगुवाई एक तरफा बातचीत पर आधारित है।

आप देख सकते हैं कि आप अपनी इच्छा से किसी भी मुस्लिम अगुवे के साथ जुड़ तो सकते हैं, लेकिन अपनी इच्छा से न तो उसकी आलोचना कर सकते हैं, न उसे छोड़ सकते हैं और न ही उसका विरोधी बन सकते हैं। इस्लाम में अनुमति दी गई है कि जो लोग परमेश्वर द्वारा उन्हें दी गई आज़ादी का इस्तेमाल करते हैं और अपने

[8] मस्जिद की मीनार से सामूहिक दुआ के लिए दी जाने वाली पुकार

अगुवों का विरोध करते हैं या उन्हें छोड़ देते हैं, उनका अपमान किया जाए, उन पर हमला किया जाए और यहाँ तक कि उन्हें मार भी डाला जाए। मुस्लिम अगुवे लोगों की आज़ादी के खिलाफ होते हैं। जो लोग किसी मुस्लिम अगुवे की आलोचना करते हैं, उनका जीवन दर्दनाक हो जाता है।

सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 6, 12, 13, 22 और 31 में उन लोगों को, जो अपने अगुवों की आलोचना करते हैं, निकृष्ट पशु और बहरे-गूँगे लोग कहा गया है; और कहा गया है कि उनके अंगुलियों के पोर तथा उनकी गरदनें काट देनी चाहिएँ। क़ुरआन में नरक से सम्बन्धित 146 आयतें हैं। इनमें से 9 आयतें बताती हैं कि वे लोग नरक जाएँगे जो नैतिक तौर पर विफल हो जाते हैं, हत्या और चोरी इत्यादि करते हैं। बाकी 137 आयतें बताती हैं कि वे लोग नरक जाएँगे जो मुहम्मद की आलोचना करते हैं या उसके पीछे नहीं चलते। इसी कारण मुस्लिम अगुवे अपने विरोधियों के जीवन को नरक जैसा बना देते हैं।

गैर-मुसलमानों के साथ भेदभाव

गैर-मुसलमानों का जीवन इस्लामिक नेताओं की अधीनता में और भी बदतर हो जाता है। सूरह आले-इमरान (3) की आयत 110 बताती है कि मुसलमान, गैर-मुसलमानों से बेहतर हैं। सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 176 और 177 और सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 55 बताती है कि जो लोग इस्लाम को कबूल नहीं

करते वे कुत्तों और पशुओं से भी बदतर हैं। सूरह अन-निसा (4) की आयत 89 में लिखा है: तुम उनमें से अपने मित्र न बनाओ, जब तक कि वे अल्लाह के मार्ग में घर-बार न छोड़ें। फिर यदि वे इससे पीठ फेरें तो उन्हें पकड़ो, और उन्हें क़त्ल करो जहाँ कहीं भी उन्हें पाओ। सूरह अल-फ़तह (48) की आयत 29 बताती है कि मुहम्मद, अल्लाह का रसूल है और जो लोग उसके साथ हैं, वे इनकार करनेवालों पर भारी हैं, आपस में दयालु हैं। इस प्रकार गैर-मुसलमान लोग मुस्लिम अगुवों की अधीनता में सुरक्षित नहीं हैं।

मुस्लिम अगुवों से कहा गया है कि वे दूसरे देशों के सिए समस्याएँ खड़ी करें

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 85 में लिखा है: इस्लाम के अतिरिक्त कोई और दीन (धर्म) स्वीकार न किया जाएगा। सूरह अल-अहज़ाब (33) की आयत 27 में लिखा है: और उसने तुम्हें उनके भू-भाग और उनके घरों और उनके मालों का वारिस बना दिया और उस भू-भाग का भी जिसे तुमने पददलित नहीं किया। वास्तव में अल्लाह को हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है। सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 39 में लिखा है: उनसे युद्ध करो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन (धर्म) पूरा का पूरा अल्लाह ही के लिए हो जाए।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि एक मुस्लिम अगुवे को सारे संसार के विरुद्ध हो जाने का भी अधिकार मिला हुआ है। सो एक कट्टरपन्थी

मुस्लिम अगुवे को इस्लाम में यह अधिकार मिला है कि वह न केवल अपने परिवार के लोगों, अन्य लोगों और सारे संसार की आज़ादी को छीन ले, बल्कि अपनी आस्था को दूसरों पर थोपे भी।

संसार में पाई जाने वाली अगुवाई की बाकी सभी शैलियों की तुलना में इस्लामिक अगुवाई की शैली सबसे कम विकसित है और सबसे अधिक गैर-जिम्मेदारी से भरी हुई है। ऐसा क्यों है कि इस्लाम में अगुवाई की शैली सबसे कम विकसित है और सबसे अधिक गैर-जिम्मेदारी से भरी हुई है? क्योंकि जिम्मेदारी आने पर सम्बन्धों में चयन की आज़ादी के लिए परस्पर सम्मान की माँग जरूरी हो जाती है। लेकिन जैसा कि हमने क़ुरआन की आयतों से सीखा है कि जब मुहम्मद के फैसलों की बात होती है तो किसी को भी चयन करने की आज़ादी नहीं है।

इस्लाम में किसी को अगुवे के पद पर लाने के लिए उसकी गुणवत्ता की बजाय उसकी ताकत मायने रखती है

दाऊद की हदीस संख्या 2527 की पुस्तक 14 में मुहम्मद ने कहा कि हर एक मुसलमान के लिए जरूरी है कि वह हर एक मुस्लिम अगुवे के पीछे चलता हुआ अल्लाह के लिए जिहाद करे, फिर चाहे वह अगुवा पवित्र हो या न हो; हर एक मुसलमान हर एक मुस्लिम अगुवे के पीछे खड़ा होकर नमाज अदा करे, फिर चाहे वह अगुवा पवित्र हो या अपवित्र, फिर चाहे उसने कोई घोर पाप ही क्यों न किया हो। आप

देख सकते हैं कि यहाँ पर लोगों से इस जिम्मेदारी को छीन लिया गया है कि वे घोर पाप करने वाले अगुवों से बचें।

इसे गुणवत्ता वाली अगुवाई नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह तो ताकत की भूखी अगुवाई है, जो लोगों को मजबूर करती है कि वे कोई सवाल उठाए बिना ही अपने अगुवों के पीछे चलते रहें। इस प्रकार इस्लाम में किसी को अगुवे के पद पर लाने के लिए उसकी गुणवत्ता की बजाय उसकी ताकत मायने रखती है।

ताकत की भूख किसी भी अगुवे की आँखें बन्द कर देती है, ताकि वह लोगों द्वारा खुद फैसले लेने और अपने जीवन खुद चलाने की क्षमता को अनदेखा कर दें। ताकत की भूख अगुवों को इस समझ के प्रति अन्धा कर देती है कि मनुष्य अपनी दशा में सुधार केवल तर्क और चेतना के द्वारा ही ला सकते हैं। ताकत की भूख अगुवों को इस समझ के प्रति अन्धा कर देती है कि उन्हें खुद भी अपनी सलामती और सुधार के लिए दूसरों के विचारों और अनुभव की जरूरत होती है। ताकत की भूख अगुवों को इस समझ के प्रति अन्धा कर देती है कि वे अपने समाज के प्रति जवाबदेह हैं, जिसने उन्हें इस पदवी पर नियुक्त किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अगुवों में पाई जाने वाली ताकत की भूख न केवल समाज में से सच्ची मित्रता की चाहत को समाप्त कर देती है, बल्कि उसमें भरोसे की कमी और डर पैदा करती है। डर विचारों के आदान-प्रदान का रास्ता भी बन्द कर देता है। लोग एक दूसरे पर भरोसा नहीं कर पाएँगे, और इस कारण रचनात्मकता और प्रगति का रास्ता बन्द हो जाएगा। इस कारण जो

इस्लामिक देश कट्टरपन्थी मुस्लिम अगुवों द्वारा चलाया जाता है, उसमें रचनात्मकता और प्रगति नहीं हो पाती। रचनात्मकता की कमी समृद्धि और चैन के दरवाजे बन्द कर देती है।

एक मुस्लिम अगुवा केवल अधीनता की उम्मीद करता है

अरबी भाषा में "इस्लाम" शब्द का अर्थ अधीनता होता है। आप चाहे इस्लाम को पसन्द करें या न करें, आपके पास एकमात्र रास्ता केवल यही है कि आप आत्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र के हर पहलू में अधीन हो जाएँ। अगर आप ऐसा नहीं करते तो आपको काफिर घोषित कर दिया जाता है और उसके कारण आपके साथ शरीअत के निर्देशों के अनुसार बर्ताव किया जाता है, जिसमें या तो आपके सारे अधिकार छीन लिए जाते हैं, या आपको शारीरिक दण्ड दिया जाता है, या फिर जरूरत पड़ने पर आपको मौत के घाट भी उतार दिया जाता है।

मसीह में अगुवाई प्रेम, कृपा और तालमेल पर आधारित है

ईसा (यीशु) मसीह में अगुवाई हर पहलू में इस्लामिक अगुवाई से भिन्न है। मसीह में अगुवाई हर एक व्यक्ति का सम्मान करती है, फिर चाहे वे मित्र हों या पराए। जिस परमेश्वर को मसीह ने प्रकट किया है उसकी दृष्टि में मित्र और अन्य लोग एक समान हैं (मत्ती 5:43-48;

गलातियों 3:28; निर्गमन 23:9; 22:21 को पढ़ें)। ईसा (यीशु) मसीह में पाई जाने वाली अगुवाई में प्रेम और कृपा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है (1 यूहन्ना 4:19 को पढ़ें)।

मसीह में अगुवाई अधिकार जमाने के लिए नहीं है, बल्कि एक बेहतर और सफल जीवन के लिए है ताकि हर एक व्यक्ति आगे कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित हो और प्रेम, कृपा और तालमेल में होकर दूसरों के साथ मिलकर काम करे। मसीह में अगुवाई मित्रों और अजनबियों में आत्मविश्वास पैदा करती है ताकि सब के सब उत्पादक हो सकें। इस अगुवाई में लोगों को शामिल क्या जाता है और सब लोग इसमें अगुवों के साथ अपने विचार साझा कर सकते हैं, फिर चाहे वे ऐसा उसका विरोध करने के लिए करें या उसका समर्थन करने के लिए (2 तीमुथियुस 2:24-25; व्यवस्थाविवरण 18:22; यशायाह 1:18), क्योंकि लक्ष्य शत्रुता पैदा करना नहीं बल्कि सफलता के लिए मुख्य तथ्यों को खोजना है।

मसीह में अगुवाई सेवामूलक होती है

इंजील तानाशाही का विरोध करती है और सन्तुलन तथा आज़ादी का समर्थन करती है। ईसा (यीशु) ने कहा: जो कोई तुम में बड़ा होना चाहे, वह तुम्हारा सेवक बने ... जैसे कि मनुष्य का पुत्र; वह इसलिये नहीं आया कि उसकी सेवा टहल की जाए, परन्तु इसलिये आया कि आप सेवा टहल करे, और बहुतों की छुड़ौती के लिये अपने प्राण दे। (मत्ती 20:25-28)। ईसा (यीशु) ने यह भी कहा: यदि मैं ने प्रभु और

गुरु होकर तुम्हारे पाँव धोए, तो तुम्हें भी एक दूसरे के पाँव धोना चाहिए (यूहन्ना 13:14)।

मसीह में अगुवाई सबके साथ शान्ति की स्थापना करती है

जैसा कि मैं लगातार कहता आ रहा हूँ, इंजील में लिखा है: अब न कोई यहूदी रहा और न यूनानी, न कोई दास न स्वतंत्र, न कोई नर न नारी, क्योंकि तुम सब मसीह यीशु में एक हो (गलातियों 3:28)। इसमें यह भी लिखा है: सबसे मेल मिलाप रखो (इब्रानियों12:14); प्रभु के दास को झगड़ालू नहीं होना चाहिए, पर वह सब के साथ कोमल और शिक्षा में निपुण और सहनशील हो। वह विरोधियों को नम्रता से समझाए, क्या जाने परमेश्वर उन्हें मन फिराव का मन दे कि वे भी सत्य को पहचानें (2 तीमुथियुस 2:24-25); जो प्रेम नहीं रखता वह परमेश्वर को नहीं जानता, क्योंकि परमेश्वर प्रेम है (1 यूहन्ना 4:8)। ईसा (यीशु) मसीह में अगुवाई में ये विशेषताएँ पाई जाती हैं।

आप अपने दिल की गहराइयों से किस अगुवे का अनुकरण करना चाहता हैं?

क्या आप एक इस्लामिक अगुवे का अनुकरण करना चाहेंगे, जो आपसे केवल अन्धी अधीनता प्राप्त करना चाहता है और ऐसा न होने पर वह आपसे आपका सबकुछ छीन लेगा, या क्या आप मसीह का अनुकरण करना चाहेंगे, जिसमें अगुवों को आपका सेवक होने

के लिए कहा गया है और जहाँ लोगों को बिना किसी समस्या के अपने विचार साझा करने की आज़ादी है, फिर चाहे वे उनके समर्थन में हों या चाहे विरोध में? ईसा (यीशु) मसीह हर एक पहलू से अनोखा है, यहाँ तक कि अगुवाई में भी। उसकी अगुवाई में चलें।

चिन्तन का समय 12

1. लोगों के जीवन के सिद्धान्तों, यहाँ तक कि अगुवाई को भी बदलने के लिए उनकी आस्था में कितनी शक्ति होती है?
2. सर्वोत्तम अगुवे में कौन से गुण होते हैं?
3. क्या आप अपने लिए एक अच्छा अगुवा चाहते हैं और क्या आप खुद अपने परिवार के लिए एक अच्छा अगुवा (माता या पिता) बनना चाहते हैं?
4. ऐसी आस्था खोजना कितना महत्त्वपूर्ण है जिसमें अगुवाई के सिद्धान्त और आदर्श सर्वोत्तम हों?
5. एक दीन अगुवा होने के क्या लाभ हैं?
6. क्या आपको ईसा (यीशु) मसीह में अगुवाई का सर्वोत्तम आदर्श मिलता है या नहीं? क्यों?
7. अगर ईसा (यीशु) मसीह अगुवाई का सर्वोत्तम आदर्श है तो उसका अनुकरण करना कितना महत्त्वपूर्ण है? ऐसा करने से आपके परिवार के सदस्यों और अन्य लोगों के साथ आपके सम्बन्ध पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

इस्लाम की शरीअत अथवा मसीह का प्रेम – उत्तम आदर्श कौन सा है?

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संसार की हर एक आस्था अपने अनुयायियों के जीवन, उनके सम्बन्धों और समाज में नियम-कानून की स्थापना को प्रभावित करती है। इस्लाम ने भी हर जगह मुसलमानों के जीवन, उनके सम्बन्धों और नियम-कानूनों को अपनी "शरीअत" के द्वारा प्रभावित किया है, और यह शरीअत क़ुरआन, मुहम्मद के जीवन और मुहम्मद तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा कही गई बातों पर आधारित है।

शरीअत हर एक मुसलमान की जीवनशैली को प्रकट करती है। यह मुसलमानों को निर्देश देती है कि सब राष्ट्रों पर मुहम्मद के आदर्श का शासन होना चाहिए और उन्हें हर पहलू से इस्लामिक बनाया जाना चाहिए। पारिवारिक स्तर पर पिता या पति को आदेश दिया गया है कि वह शरीअत के नियमों को लागू करवाए और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सब सरकारें जिम्मेदार हैं कि वे शरीअत के सिद्धान्तों का पालन करवाएँ। इन सिद्धान्तों के कुछ उदाहरण भोजन, एक से अधिक पत्नियाँ रखने, विवाह की सही आयु, आज्ञा-उल्लंघन, आलोचना, सज़ा के स्तर, शराब के सेवन, व्यभिचार, गैर-मुसलमानों, जिहाद, इत्यादि से सम्बन्धित हैं।

शरीअत का केन्द्रीय उद्देश्य हर एक वस्तु और हर एक व्यक्ति को इस्लामिक बनाना है

शरीअत के उद्देश्य के साथ शर्तें जुड़ी हुई हैं। अगर आप इस्लाम का पालन नहीं करते तो आप सुरक्षित नहीं हैं। लेकिन ईसा (यीशु) मसीह के रास्ते में शर्तरहित प्रेम पर बल दिया गया है। शर्तरहित प्रेम ईसा (यीशु) मसीह के अनुयायियों के जीवन, उनके सम्बन्धों और नियम-कानूनों को प्रभावित करता है ताकि उन्हें दूसरों के साथ शान्ति में रहने के लिए तैयार किया जा सके।

मसीह की इंजील 1 कुरिन्थियों की पुस्तक के अध्याय 13 की आयत 1 और 2 में कहती है: यदि मैं मनुष्यों और स्वर्गदूतों की बोलियाँ बोलूँ और प्रेम न रखूँ, तो मैं ठनठनाता हुआ पीतल, और झंझनाती हुई झाँझ हूँ। और यदि मैं भविष्यद्वाणी कर सकूँ, और सब भेदों और सब प्रकार के ज्ञान को समझूँ, और मुझे यहाँ तक पूरा विश्वास हो कि मैं पहाड़ों को हटा दूँ, परन्तु प्रेम न रखूँ, तो मैं कुछ भी नहीं।

प्रिय मित्रो, प्रेम और करुणा से भरी इस अद्भुत पुस्तक को मुसलमान केवल इसलिए ठुकरा देते हैं कि इसमें मुहम्मद का नाम नहीं लिखा है। वे यह नहीं जानते कि सच्चे परमेश्वर का ऐसा प्रेम सब नबियों के नामों से कहीं अधिक उत्तम है।

मैं मसीह की इंजील की तुलना में इस्लाम की शरीअत के कुछ उदाहरण देने जा रहा हूँ। तब आप खुद ही यह जानकर खुश हो जाएँगे कि इंजील में मुहम्मद का नाम क्यों दर्ज नहीं है।

इस्लाम की शरीअत या मसीह की इंजील, दोनों में से किसमें परिवार को अधिक सम्मान दिया गया है

परमेश्वर के लिए परिवार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है, क्योंकि परमेश्वर ने संसार का आरम्भ आदम और हव्वा के परिवार से ही किया था। लेकिन इस्लाम की शरीअत में पति का महत्त्व पत्नी से अधिक होता है और पति अपनी पत्नियों की पिटाई कर सकते हैं। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 228 में लिखा है कि पुरुषों को उनकी पत्नियों से ज्यादा हकदार ठहराया गया है। सूरह अन-निसा (4) की आयत 34 और सूरह साद (38) की आयत 44 में पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में दिए गए अधिक अधिकारों के कारण पुरुषों के पास अपनी पत्नियों को पीटने का भी अधिकार है। सूरह अन-निसा (4) की आयत 15 और 16 में तो यह भी लिखा है कि पुरुषों को यह अधिकार भी है कि अगर उनकी पत्नियाँ व्यभिचार कर बैठें, तो वे उन्हें एक कमरे में बन्द कर दें, यहाँ तक कि उनकी मृत्यु हो जाए। लेकिन अगर पुरुष व्यभिचार करें तो उन्हें कुछ कोड़े लगाकर छोड़ दिया जाता है।

ऐसा क्यों है कि क़ुरआन में पुरुषों को उनकी पत्नियों से अधिक अधिकार दिए गए हैं और यहाँ तक कि उनकी पिटाई करने या उन्हें

मार डालने तक का अधिकार दिया गया है? इसके लिए क़ुरआन में ये कारण दिए गए हैं:

सूरह अन-निसा (4) की आयत 34 में लिखा है कि अल्लाह ने पुरुषों को अधिक बल दिया है ताकि वे स्त्रियों पर अधिकार रखें और उनसे आज्ञापालन करवाएँ। क़ुरआन के विभिन्न अनुवाद सूरह अल-अहज़ाब (33) की आयत 23 में कहते हैं कि मुसलमानों में केवल पुरुष ही हैं जो अल्लाह के साथ अपनी प्रतिज्ञा में सच्चे रहे हैं। कहने का भाव यह है कि स्त्रियाँ अल्लाह के साथ अपनी प्रतिज्ञा में खरी नहीं उतर सकतीं और इसी कारण उन्हें हमेशा पुरुषों द्वारा सुधारे जाने की जरूरत पड़ती है।

इस्लाम का नबी मुहम्मद भी अपने कारण देता है कि पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में अधिक अधिकार क्यों दिए गए हैं? उसने अल बुखारी की हदीस संख्या 301 में पुस्तक 6 के खण्ड 1 में कहा कि स्त्रियों में बुद्धि की कमी होती है।

आप इस बारे में क्या कहते हैं? क्या आपको लगता है कि स्त्रियों की तुलना में पुरुष परमेश्वर के साथ अपनी प्रतिज्ञा का पालन बेहतर रीति से करते हैं? क्या इसका अर्थ यह नहीं है, "अपनी माँ और अपनी बहनों पर भी भरोसा न करो?"

क़ुरआन के अनुसार गवाही देने या जायदाद हासिल करने में आप जो पुरुष हैं, आपका मूल्य आपकी बहन या माँ से दोगुना है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर आपकी माँ या आपकी बहन आपको कोई

जानकारी देती है तो आपको तब तक उस पर भरोसा नहीं करना चाहिए जब तक कि कोई अन्य स्त्री वही गवाही नहीं दे देती। लेकिन अगर आपका पिता, आपका भाई या कोई अन्य पुरुष किसी बात की गवाही देता है, तो उस पर भरोसा किया जा सकता है। क्या आप ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं जिसमें केवल पुरुषों पर भरोसा किया जाता है, लेकिन स्त्रियों पर जरा भी भरोसा नहीं किया जाता!

विख्यात इस्लामिक विद्वान स्त्रियों को टेढ़ी कहते हैं

बुखारी की हदीस संख्या 113 के खण्ड 7 में लिखा है कि स्त्री को पुरुष की पसली में से बनाया गया था, जो टेढ़ी होती है। यह टेढ़ापन उन्हें विरासत में मिला है और इसका कोई इलाज नहीं है। मुसलमानों की हदीस संख्या 3467 में पुस्तक 8 में लिखा है कि स्त्री को एक पसली से बनाया गया था और उसे किसी भी प्रकार से आपके लिए सीधा नहीं किया जा सकता; इसलिए अगर आप उससे लाभ लेना चाहते हैं, तो उसका टेढ़ापन उसमें रखते हुए ही उससे लाभ लेना होगा। और अगर आप उसे सीधा करने की कोशिश करेंगे, तो आप उसे तोड़ डालेंगे और उसे तोड़ने का अर्थ उसे तलाक देना है। दाऊद की हदीस संख्या 2155 में पुस्तक 11 के अनुसार मुहम्मद ने कहा: अगर तुम में से कोई एक स्त्री से निकाह करे या एक गुलाम को खरीदे, तो कहे: "हे अल्लाह, मैं तुझसे माँगता हूँ कि तू उसमें अच्छाई डाल और तू ने जो स्वभाव उसे दिया है उसमें अच्छाई डाल; उसमें जो बुराई पाई जाती है और तू ने जो स्वभाव उसे दिया है उसमें जो बुराई पाई जाती है, उससे बचने के लिए मैं तेरी ही शरण में आता हूँ।"...

बुखारी की हदीस संख्या 219 में पुस्तक 88 के खण्ड 9 में लिखा है: जब मुहम्मद ने सुना कि फारस की प्रजा ने राजा खुसरो की बेटी को अपनी रानी (नेता) बना लिया है, तो उसने कहा, "वह देश कभी तरक्की नहीं कर सकता जो एक औरत को अपना नेता बनाता है।"

अगर मुहम्मद और क़ुरआन ने ही स्त्रियों को एक बुरी बला बताया है, तो फिर कॉमैण्ट्रियाँ स्त्रियों के बारे में क्या कहेंगी?

सूरह अर-रूम (30) की आयत 21 में लिखा है कि स्त्रियों को पुरुषों के लिए सृजा गया था। फकरलदीन राजी (1149 ईसवी) नाम के एक सुन्नी दर्शनशास्त्री ने अपनी कॉमैण्ट्री अत-तफसीर अल-कबीर में इस आयत पर टिप्पणी करते हुए लिखा: "पुरुषों के लिए सृजा गया" इस बात का प्रमाण है कि स्त्री एक पशु है। हादी सबज़ेवारी (1797 ईसवी) नाम के एक शिया दर्शनशास्त्री ने अपनी कॉमैण्ट्री सदर अल-मोताआलेगिन में लिखा: स्त्रियाँ सचमुच और उपयुक्त रीति से गूँगे पशुओं में से ही हैं। उनमें पशुओं जैसा स्वभाव पाया जाता है।

यह कहते हुए बहुत दुख होता है कि इन महारथियों को दर्शनशास्त्री माना जाता था और उनके समय की सरकारों ने उन्हें बहुत अधिक सम्मान दिया था।

मसीह की इंजील लड़कियों और स्त्रियों के बारे में ऐसी दुखदायी बातें नहीं कहती।

इंजील के परमेश्वर की नज़र में पति और पत्नी एक बराबर हैं

गलातियों की पुस्तक के अध्याय 3 की आयत 28 में इंजील कहती है कि पति और पत्नी का परमेश्वर की नज़र में एक बराबर महत्त्व है। इफिसियों की पुस्तक के अध्याय 5 की आयत 25 और 28 में लिखा है कि पुरुष अपनी पत्नी से वैसा प्रेम करे जैसा वह अपने खुद के शरीर से करता है। कुलुस्सियों की पुस्तक के अध्याय 3 की आयत 19 में लिखा है: हे पतियो, अपनी-अपनी पत्नी से प्रेम रखो, और उनसे कठोरता न करो। और 1 पतरस की पुस्तक के अध्याय 3 की आयत 7 में लिखा है कि पत्नियाँ अपने-अपने पति के साथ परमेश्वर के अनुग्रह की वारिस हैं। अगर पति अपनी-अपनी पत्नी तो समझते नहीं हैं और उनका सम्मान नहीं करते हैं, तो पतियों की प्रार्थनाएँ सुनी नहीं जाएँगी।

इस प्रकार आप इस्लाम में महिलाओं के साथ किए जाने वाले व्यवहार और मसीहत में स्त्रियों के साथ किए जाने वाले व्यवहार की तुलना देख सकते हैं। आपके अनुसार सिद्ध धर्म किसे कहा जाना चाहिए?

आइए अब इस्लाम की शरीअत में परिवार के साथ होने वाले हैरानीजनक व्यवहार के बारे में थोड़ा और देखें।

शरीअत बच्चों से कहती है कि वे अपने संरक्षकों का आज्ञाउल्लंघन करें

सूरह अत-तौबा (9) की आयत 23 हमें बताती है कि अगर मुसलमान बच्चों के संरक्षक इस्लाम के सिद्धान्तों की बजाय अपने सिद्धान्तों से प्रेम करते हैं तो वे बच्चे अपने पिता या भाइयों का संरक्षण स्वीकार न करें।

आप जानते हैं कि सयाने हो चुके बच्चों को अपने परिवार के संरक्षण की जरूरत नहीं होती, लेकिन छोटे बच्चों को होती है। यहाँ पर इस आयत में क़ुरआन छोटे बच्चों से कह रहा है कि अगर उनके संरक्षक अच्छे मुसलमान नहीं हैं, तो वे अपने संरक्षकों का आज्ञाउल्लंघन करें। क्या आप इस बात से खुश होंगे कि कोई आपके बच्चों से कहे कि वे आपका, आप जो पिता हैं, संरक्षण स्वीकार न करें? क़ुरआन यही तो कह रहा है।

आप खुद भली-भाँति जानते हैं कि पशुओं और उनके बच्चों में भी प्यार का एक रिश्ता पाया जाता है, वैसे ही जैसे इंसानी माता-पिता और उनके बच्चों में पाया जाता है। यहाँ तक कि वह व्यक्ति भी अपने बच्चों से प्यार करता है, जिसका परमेश्वर से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि परमेश्वर ने हमें एक दूसरे से प्रेम करने के लिए सृजा है। प्यार का यह रिश्ता परमेश्वर की ओर से है। सच्चा परमेश्वर कभी भी बच्चों को नहीं सिखाएगा कि वे अपने माता-पिता को अनदेखा या अनसुना करें।

आप खुद ही देख सकते हैं कि कैसे शरीअत उस प्रेम के खिलाफ है जो परमेश्वर ने हममें डाला है। अगर शरीअत अपने खुद के मुसलमान परिवारों के सदस्यों के साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए कहती है, तो आपके अनुसार यह गैर-मुसलमानों के साथ कैसा व्यवहार करेगी? आइए देखें कि इस्लाम की शरीअत गैर-मुसलमानों के बारे में क्या निर्देश देती है।

शरीअत गैर-मुसलमानों को इंसान ही नहीं मानती

क़ुरआन गैर-मुसलमानों को अशुद्ध बताता है। इसी कारण साऊदी अरब में काम करने वाले गैर-मुसलमानों को मक्का से 24 किलोमीटर दूर रहना पड़ता है। यही कारण है कि कुछ मुसलमान गैर-मुसलमानों से हाथ मिलाने के बाद अपने हाथ धोते हैं। या फिर गैर-मुसलमानों को अपने यहाँ खाना खिलाने के बाद अपने बर्तनों को इस्लामिक रीति से धोते हैं। मुझे बचपन से ही सिखाया गया था कि अगर हमने किसी गैर-मुसलमान को छू लिया तो खुद को शुद्ध करने के लिए हमें इस्लामिक रीति से नहाना-धोना पड़ेगा।

क़ुरआन गैर-मुसलमानों को सबसे बदतर पशु, कुत्ते, सूअर, बन्दर और गधे बुलाता है। दूसरों को पशु कहकर बुलाना खुद परमेश्वर, सारी मानवजाति और यहाँ तक कि इब्राहीम के खिलाफ भी विद्रोह है, जिसे यहूदियों और अरब के लोगों का पिता कहा गया है: मुहम्मद और यहूदी दोनों ही इब्राहीम की सन्तान हैं। ऐसा कैसे हो सकता है कि जो परमेश्वर इब्राहीम से प्यार करता है, वह उससे कहे कि उसकी

सन्तान पशु हैं? ऐसा कैसे हो सकता है कि इब्राहीम का वंशज मुहम्मद अपने पुरखे इब्राहीम से कहे कि उसके बेटे इसहाक से पैदा होने वाले उसके वंशज पशु हैं और उसके बेटे इश्माएल से पैदा होने वाले वंशज इंसान हैं? क्या यह उसके पुरखे इब्राहीम का निरादर नहीं होगा, जो अपने सब वंशजों से एक समान प्यार करता है? यहूदियों को पशु कहने का अर्थ यह है कि उनके पुरखे इब्राहीम ने पशुओं को जन्म दिया था।

शरीअत गैर-मुसलमानों को पशु इसलिए बुलाती है ताकि उनकी हत्या को कानूनी रूप दिया जा सके

सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 39 में लिखा है: उनसे युद्ध करो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन (धर्म) पूरा का पूरा अल्लाह ही के लिए हो जाए। कुछ इस्लामिक देशों में गैर-मुसलमानों के खिलाफ होने वाली आतंकवादी गतिविधियों का मुख्य कारण यही है। क़ुरआन गैर-मुसलमानों को काफिर बुलाता है और कहता है कि उनसे नफरत की जाए, उनका मज़ाक उड़ाया जाए, उन्हें धोखा दिया जाए, उनके खिलाफ षड्यन्त्र रचे जाएँ, उन्हें गुलाम बनाया जाए, उन पर अत्याचार किए जाएँ और अगर वे इस्लाम कबूल नहीं करते तो उनकी हत्या कर दी जाए।

मसीह की इंजील में इस प्रकार के रवैये और कामों को पूरी तरह से ठुकराया गया है। प्रेमी, तरसवान और कृपालु परमेश्वर अपने अनुयायियों से यह नहीं कहता कि वे अपनी आस्था के कारण दूसरों पर अत्याचार करें। मित्रो, ईसा (यीशु) मसीह इंजील में एक भी

आयत ऐसी नहीं है जो नफरत या हत्या को प्रोत्साहित करती है। आपको ऐसी एक भी आयत नहीं मिलेगी। क्यों? सबसे पहली बात यह कि परमेश्वर अपने द्वारा रचे गए सब प्राणियों के जीवन को अनमोल जानता है। दूसरी बात यह कि मनुष्यों की रचना हमने नहीं की है, इसलिए उनके जीवन के ऊपर हमारा कोई अधिकार नहीं है।

शरीअत की नफरत और बैर के साथ परिवार या समाज में शान्ति स्थापित करना सम्भव ही नहीं है, लेकिन मसीह के प्रेम और उसकी कृपा के द्वारा यह सम्भव है। इसलिए इंसानी सम्बन्धों के लिए सर्वोत्तम आदर्श मसीह का प्रेम है, इस्लाम की शरीअत नहीं।

चिन्तन का समय 13

1. क्या हम कठोरता, भेदभाव या नफरत के द्वारा अपने परिवार में चिरस्थाई प्यार का माहौल बना सकते हैं?
2. अगर हम शरीअत का पालन करते हुए अपने जीवनसाथी के साथ कठोरता का व्यवहार करेंगे, तो इसका हमारे बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
3. क्या कोई व्यक्ति जबरदस्ती और हिंसा के द्वारा परमेश्वर का या किसी नबी का सच्चा अनुयायी बन सकता है?
4. जबकि परमेश्वर सारी बुद्धि का स्रोत है और तर्क के आधार पर सबको राजी कर सकता है, तो क्या उसे लोगों को राजी करने के लिए जबरदस्ती करने की जरूरत है?

5. जबकि परमेश्वर ने खुद मनुष्य को चयन करने की आज़ादी दी है, तो क्या उसे लोगों को अपने अनुयायी बनाने के लिए जबरदस्ती करने की जरूरत है?
6. मसीह का प्रेम शरीअत के सिद्धान्तों से बड़ा और महान क्यों है?
7. क्या आप अपने अन्दर यह जिम्मेदारी महसूस करते हैं कि आप मसीह का प्रेम दूसरों के साथ बाँटें?

मनुष्यजाति को मित्रों की जरूरत है, शत्रुओं की नहीं

क्या आप मेरे साथ सहमत हैं? अगर आप मेरे साथ सहमत हैं तो हमें यह पता लगाने की जरूरत है कि कैसे और किस प्रकार हम चिरस्थाई साथ रहने वाले मित्र बना सकते हैं।

जैसा कि हमें अच्छा नहीं लगता कि लोग हमारे शत्रु बनें, उसी प्रकार लोगों को भी अच्छा नहीं लगता कि हम उनके शत्रु बनें। यह बात तो एकदम स्पष्ट है कि हम क्रोध, नफरत, बैर, धोखे, झूठ और अन्य किसी भी गलत तरीके से सच्चे मित्र नहीं बना सकते। गलत तरीके दूसरों के अधिकारों के खिलाफ किए जाने वाले युद्ध के तरीके होते हैं। जब हम दूसरों के अधिकारों का हनन करते हैं, तो हम उनके साथ मित्रता नहीं कर पाएँगे। मित्रता के लिए आदर, कृपा, बलिदान, क्षमा, धीरज और संयम की जरूरत होती है।

ये सारी बातें हमें बताती हैं कि हमें ऐसे व्यक्ति और आस्था से दूर रहना है जो हमसे भिन्न सोच वाले लोगों से हमें नफरत, क्रोध, हिंसा या अन्य कोई भी गलत व्यवहार करने के लिए उकसाते हैं। हमें उनसे दूर रहने की जरूरत है, क्योंकि वे न केवल हमारे समाज में हमारी दोस्ती को बर्बाद कर देंगे, बल्कि हमारे परिवारों को भी उजाड़ देंगे।

दूसरों से नफरत केवल दूसरों से नफरत ही नहीं होती

अपने दिल में नफरत का बीज बोने से आप वही बीज अपने परिवार में भी बोते हैं। मैं आपको एक उदाहरण देना चाहता हूँ। इस्लाम के नबी ने मुसलमानों को उकसाया कि वे बहुदेववादियों से और दूसरे धर्म के अनुयायियों से नफरत करें। इस नफरत ने उन्हें उकसाया कि वे अरब प्रायद्वीप में सभी गैर-मुसलमानों को जबरन मुसलमान बना दें और जो इस्लाम को कबूल न करें उनकी हत्या कर दें। सारे साऊदी अरब को इस्लाम के अधीन कर दिया गया और वहाँ पर एक भी गैर-मुसलमान नहीं बचा, जिस पर वे अपनी नफरत डाल सकते। क्या ऐसा होने पर उनकी नफरत समाप्त हो गई? नहीं। इस्लाम के आरम्भिक मिशन के दौरान गैर-मुसलमानों के खिलाफ जो नफरत मुसलमानों के दिलों में बोई गई थी, उसका फल अब इस्लाम के अपने वंशजों में दिखने लगा था, जिसके कारण मुहम्मद के अपने परिवार में ही फूट पड़ गई, उनमें आपस में बैर हो गया, जो भविष्य की सारी पीढ़ियों में फैल गया। इस नफरत ने सुन्नी और शिया समुदायों को जन्म दिया, जो 1400 वर्ष पहले हुए इस्लाम के उदय से ही एक दूसरे का खून बहाते आ रहे हैं।

क्या यह बात अजीब नहीं है? अगर आप सोचते हैं कि अपने दिलों में दूसरों के प्रति नफरत का बीज बोने से आप केवल दूसरों को ही नुकसान पहुँचाएँगे, तो यह पूरा सच नहीं है। आप खुद को और अपने परिवार को भी नुकसान पहुँचाएँगे। नफरत न केवल दूसरों को हमारे

शत्रु बना देती है, बल्कि हमें भी ज़हर से भर देती है। इसी कारण ईसा (यीशु) मसीह ने अपनी इंजील में कहा है कि हमें अपने शत्रुओं से नफरत नहीं करनी है, बल्कि उनसे प्रेम करना है और उनके लिए प्रार्थना करनी है।

अफसोस की बात है कि इस्लाम ने मुसलमानों में पाए जाने वाले परस्पर सम्बन्धों के हर एक स्तर पर नफरत और हिंसा के लिए दरवाज़े खोल रखे हैं और इस कारण यह सच्चे प्रेम और सम्मान के लिए खतरा बन गया है।

पत्नी की पिटाई करना परिवार के हर एक सदस्य के लिए बुरा है

जब एक मुसलमान क़ुरआन के आदेश का पालन करते हुए अपने बच्चों की माँ की पिटाई करता है, तो वे बच्चे अपने पिता में पाए जाने वाले बैर को देखकर प्रेम और सम्मान करने की शिक्षा पाने की बजाय कड़वाहट और क्रोध की शिक्षा हासिल करेंगे। यह क्रोध और बैर बच्चों के व्यवहार को प्रभावित करेगा और उनमें आपस में तथा दूसरों के प्रति नफरत पैदा करेगा।

अगर क़ुरआन परिवारों को आपस में सच्चा प्यार करना सिखाता, तो पति और पत्नी में से किसी को भी दूसरे से अधिक महत्त्व नहीं देता, बल्कि उन्हें एक समान करके एक बना देता, ताकि वे आपस में पाई जाने वाली भिन्नताओं के बावजूद एक दूसरे से वैसा प्यार

करते जैसा वे अपने-अपने शरीर से करते हैं। हाथ, पाँव, आँखें, और शरीर के अन्य सभी अंग एक दूसरे से पूरी तरह भिन्न हैं। लेकिन शरीर के लिए वे सभी एक बराबर मूल्यवान हैं, एक दूसरे से प्रेम करते हैं और एक दूसरे की कमी-घटी को पूरा करते हैं, एक साथ मिलकर काम करते हैं, ताकि सारा शरीर एकता में स्थिर और भला-चंगा रहे। एक परिवार के सदस्य भी एक शरीर के अंगों के समान ही होने चाहिएँ। अगर पति अपनी पत्नी की पिटाई करता है, तो उसका परिवार स्वस्थ और प्रेमी परिवार नहीं हो सकता। इस कारण आप तब तक एक प्रेमी, देखभाल करने वाला और सफल परिवार स्थापित नहीं कर सकते जब तक कि आप परिवार के लिए अनिवार्य सर्वोत्तम सिद्धान्तों को न अपना लें और उन्हें लागू न करें। इसका अर्थ यह है कि आपको अपनी पत्नी के प्रति अधिक भला और कृपालु बनना होगा तथा उसे क्षमा और सम्मान देना होगा, क्योंकि वह आपके साथ मिलकर परिवार चलाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सच्चाई यह है कि केवल ईसा (यीशु) मसीह ही आपको अपने परिवार के लिए सर्वोत्तम सिद्धान्त दे सकता है और ऐसे परिवार का निर्माण कर सकता है। ईसा (यीशु) मसीह की इंजील के नज़रिए से परिवार पति और पत्नी के बीच पाई जाने वाली एकता का एक ऐसा आदर्श है जो उनकी स्वर्गिक उत्तमता को प्रकट करता है। ईसा (यीशु) मसीह की ओर से वैवाहिक सम्बन्ध में पति को पत्नी से अधिक मूल्यवान नहीं ठहराया जाता, बल्कि उसे तो परमेश्वर का प्रतिनिधि ठहराया जाता है, जो अपनी पत्नी के प्रति वैसा ही कृपालु और प्रेमी बन जाता है जैसा वह अपने शरीर के प्रति है।

हम पहले भी यह देख चुके हैं कि कैसे प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान परिवार में महिलाओं को हीन दर्जा देते हैं और उनकी तुलना पशुओं से करते हैं। अगर क़ुरआन उनसे यह न कहता कि अपनी पत्नियों की पिटाई करो, तो वह अपनी पत्नियों को पशु न कहते और अपने इस दरिन्दगी भरे व्यवहार को सही न ठहराते।

आपके परिवार में आपको मित्र चाहिएँ, शत्रु नहीं। अपनी पत्नी से ऊँचा दर्जा पाने या उसकी पिटाई करने से आप उसे अपना मित्र नहीं बना पाएँगे। इस कारण आपको क़ुरआन को छोड़ने और ईसा (यीशु) मसीह की इंजील को मानने की जरूरत है।

एक से अधिक पत्नियाँ रखना परिवार में फूट और बैर का कारण है

एक अधिक पत्नियाँ रखने की अनुमति देने के कारण भी क़ुरआन परिवार में फूट और बैर का कारण बनता है। जब आप क़ुरआन के निर्देशों का पालन करते हुए एक से अधिक पत्नियाँ रखते हैं, तो इस कारण आपके परिवार के सदस्यों में फूट और ईर्ष्या पैदा होगी।

मुस्लिम होने के नाते शायद आप कहें, "हाँ, एक से अधिक पत्नियाँ होने से परिवार में फूट तब पड़ती है, जब पति सही रीति से व्यवहार करने के काबिल नहीं होता या पत्नियों के बीच में इंसाफ नहीं कर पाता; अगर पति सही हो, तो कोई समस्या नहीं होती।" सचमुच? मुसलमान यह मानते हैं कि मुहम्मद अपने परिवार में इंसाफ स्थापित

करने में पूरी तरह से सक्षम था। अगर ऐसी बात है तो फिर उसमें और उसकी पत्नियों में परस्पर मेल क्यों नहीं था?

मैं आपको क़ुरआन में से इसका एक उदाहरण देना चाहता हूँ: सूरह अत-तहरीम (66) में मुहम्मद और उसकी पत्नियों में मौजूद फूट के बारे में बाती की गई है। आप खुद देख सकते हैं कि इस्लाम के सबसे अधिक धर्मी व्यक्ति का जीवन भी एक से अधिक पत्नियाँ रखने के बावजूद खुशहाल और सुखी नहीं था।

सृष्टि के आरम्भ से ही परमेश्वर जानता था कि एक से अधिक पत्नियाँ रखने के कारण किसी भी परिवार में प्रेम और मित्रता का माहौल पैदा नहीं हो पाएगा, वरना वह आदम के लिए एक से अधिक हव्वा तैयार कर देता। लेकिन उसने आदम के लिए एक पत्नी और हव्वा के लिए एक पति ही सृजा। मैं खुद भी ऐसे परिवार से हूँ जिसमें एक से अधिक पत्नियाँ रखने की प्रथा थी और मैंने अपनी आँखों से देखा है कि एक से अधिक पत्नियाँ रखने वाले मुस्लिम परिवारों की समस्याएँ उन मुस्लिम परिवारों से कहीं अधिक होती हैं, जिनमें एक ही पत्नी रखने की प्रथा है। एक से अधिक पत्नियाँ रखने से घर में फूट और बैर पैदा होता है। इससे न केवल सौतनों में समस्याएँ खड़ी होती हैं, बल्कि परिवार के अन्य सम्बन्धों में भी समस्याएँ आने लगती हैं।

हमें ईसा (यीशु) मसीह की इंजील को अपनाने की जरूरत है, जिसके अनुसार जब एक पति और एक पत्नी एक दूसरे के साथ वैवाहिक बन्धन में एक हो जाते हैं और एक दूसरे से सच्चे दिल से प्रेम करते हैं, तब परिवार में सुख, प्रेम और मित्रता का सम्बन्ध आता है।

बच्चों को अपने माता-पिता का निरादर करना सिखाने से मित्रता में ज़हर भर जाता है

बच्चों को उनके माता-पिता का निरादर करना और उनके अधिकार को ठुकराना सिखाने के द्वारा भी क़ुरआन शत्रु पैदा करता है। ये सिद्धान्त सकारात्मक नहीं हैं। बच्चों को अपने माता-पिता का आदर करने की जरूरत है।

क़ुरआन में सूरह अत-तौबा (9) की आयत 23 में लिखा है कि यदि तुम्हारा पिता इस्लाम के प्रति वफादार नहीं है तो उसे अपना बाप न कहो। क़ुरआन का यह निर्देश स्वस्थ परिवार का निर्माण नहीं करेगा। आपको अपने पिता का आदर करना है। वह दिन-रात मेहनत करता है, आपके लिए भोजन का प्रबन्ध करता है, आपको पाल-पोस कर बड़ा करता है, ताकि एक दिन आप खुद माता या पिता बन सकें। आप अपने बच्चों से आपके प्रति कृपालु होने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं, अगर आप खुद ही अपने पिता को केवल इसलिए ठुकरा देते हैं कि वह आपकी आस्था के प्रति समर्पित नहीं है और आपके अनुसार सोचता या विश्वास नहीं करता है? दूसरी ओर, आप दूसरों से अपने प्रति मित्रता के व्यवहार की उम्मीद कैसे कर सकते हैं, अगर आप खुद अपने पिता से बैर रखते हैं जो दूसरों की बजाय आपके अधिक समीप है?

मैं आपसे एक अन्य प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या आपके पिता को परमेश्वर ने चयन की आज़ादी देकर नहीं सृजा है ताकि वह भी अपनी

इच्छा के अनुसार वह आस्था चुने जिसे वह पसन्द करता है? आपको अपने पिता का निरादर करने का कोई अधिकार नहीं है। उसका आदर करें, फिर चाहे उसकी आस्था कुछ भी हो। बाइबल के परमेश्वर की नज़र में पिता और माता की पदवी बहुत महत्त्वपूर्ण है। बाइबल में परमेश्वर माता-पिता का उदाहरण पेश करते हुए हमें बताता है कि वह हमसे माता-पिता के समान प्यार करता है। सच्चा परमेश्वर आपसे कभी नहीं कहेगा कि आप अपने पिता का निरादर करें और उसका शत्रु बन जाएँ।

आपको अपने परिवार में एक मित्र की जरूरत है, शत्रु की नहीं। इस कारण आपको क़ुरआन के इस निर्देश से बचने की और अपने परिवार के सदस्यों की चयन की आज़ादी का सम्मान करने की जरूरत है, ताकि वे अपनी इच्छा से अपनी आस्था को चुन सकें। वास्तव में, अगर आप परमेश्वर द्वारा लोगों की दी गई चयन की आज़ादी को महत्त्व नहीं देंगे और अपना नज़रिया या अपनी आस्था उन पर थोपेंगे, तो आप परमेश्वर के खिलाफ काम करेंगे।

दूसरों की आस्था के कारण उनकी हत्या कर देने से मित्रता के दरवाज़े बन्द हो जाते हैं

साथ ही, जब आप क़ुरआन के निर्देशों का पालन करते हुए अपने गैर-मुसलमान सम्बन्धियों और पड़ोसियों की हत्या कर देते हैं, तो इसका अर्थ है कि आप मित्रता के दरवाज़े बन्द कर रहे हैं और नफरत, प्रतिशोध और बैर के दरवाज़े खोल रहे हैं। ऐसी नफरत का कभी

अन्त नहीं होता। आप में और दूसरों में पाए जाने वाले बैर का तभी अन्त होगा, जब आप इस्लाम को छोड़ देंगे और प्रेम का पालन करने वाली आस्था को अपनाएँगे, अपने पड़ोसियों का आदर करेंगे और उनसे अपने समान प्रेम करेंगे। वरना आपके नफरत भरे व्यवहार का नकारात्मक प्रभाव आपके सारे मोहल्ले पर पड़ेगा और सच्ची मित्रता तथा प्रेम के दरवाज़े बन्द कर देगा।

खुद को दूसरों से बेहतर समझना मित्रता में आने वाली एक बड़ी बाधा है

क़ुरआन यह भी सिखाता है कि आप दूसरों से बेहतर हैं। यह शिक्षा आपको आपके जीवन में सच्चा मित्र कभी हासिल नहीं करने देगी। क़ुरआन में सूरह आले-इमरान (3) की आयत 110 में लिखा है कि मुसलमान, गैर-मुसलमानों से बेहतर हैं।

आप यहूदियों या मसीहियों या अन्य लोगों से बेहतर कैसे हो सकते हैं, अगर आप भी उनके समान ही पापी हैं? एक पापी दूसरे पापी से बेहतर कैसे हो सकता है? परमेश्वर की नज़र में सारे पापी एक समान हैं। वहीं दूसरी ओर सच्ची मित्रता दीनता, कृपालुता और बराबरी को बढ़ावा देती है, जिन्हें क़ुरआन में पूरी तरह से अनदेखा किया गया है। इसी कारण अगर आप इस्लाम का पालन करते रहेंगे, तो आप अपनी मित्रता में कोमलता को स्थान कभी नहीं दे पाएँगे।

मैं इस हिस्से को समाप्त करते हुए एक अन्य कारण देना चाहता हूँ कि क्यों इस्लाम कोमलता का दरवाज़ा बन्द कर देता है और इस कारण मित्रता का दरवाज़ा बन्द कर देता है।

संगीत और एक कोमल दिल

इस्लाम आदेश देता है कि आपको संगीत से कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए और इसके खिलाफ काम करना चाहिए। संगीत परमेश्वर की ओर से दिया गया है। संगीत नरम और कोमल होता है तथा दिलों को कोमल बनाता है। आवाज़ और वाद्ययन्त्रों के सुरों में पाए जाने वाले तालमेल से एहसास और भावनाएँ सुन्दर और प्रेम भरे तरीकों से अभिव्यक्त होती हैं। आम तौर पर संगीत मित्रता को मजबूत बनाता है। संगीत उदास दिल के लिए अच्छा होता है। लेकिन इस्लाम इस कोमल दिल बनाने वाले तरीके के खिलाफ है। बाइबल में संगीत को महत्त्व दिया गया है ताकि मनुष्य अपने उद्धार की और परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध की खुशी मना सकें।[9]

[9] परमेश्वर जो हमारा बल है, उसका गीत आनन्द से गाओ; याकूब के परमेश्वर का जयजयकार करो! भजन उठाओ, डफ और मधुर बजनेवाली वीणा और सारंगी को ले आओ। नये चाँद के दिन, और पूर्णमासी को हमारे पर्व के दिन नरसिंगा फूँको। क्योंकि यह इस्राएल के लिये विधि, और याकूब के परमेश्वर का ठहराया हुआ नियम है। (भजन संहिता 81:1-4)

सन्देश के इस भाग में आपने इस्लाम के बारे में जो कुछ पढ़ा है, वह तानाशाही रवैयों को दर्शाता है। ऐसे रवैये केवल तानाशाही को ही मजबूत करते हैं, जिससे शान्ति, प्रेम और मित्रता के दरवाज़े बन्द हो जाते हैं। अगर आप शान्ति और मेल-मिलाप के साथ जीना चाहते हैं, तो इस्लाम में रहते हुए आप ऐसा कभी नहीं कर पाएँगे। इसके लिए आपको ईसा (यीशु) का और उसकी इंजील का अनुकरण करने की जरूरत है।

चिन्तन का समय 14

1. क्रोध, नफरत, बैर, शत्रुता, धोखे, झूठ और अन्य गलत तरीकों के द्वारा सच्चे मित्र बनाना असम्भव क्यों है?
2. आपको दूसरों से नफरत करने से क्यों बचना चाहिए?
3. हालाँकि अनेक लोग इस्लाम को शान्ति का धर्म मानते हैं, लेकिन क्या इस दावे का समर्थन तथ्यों के साथ किया जा सकता है?
4. क्या यह अच्छी बात नहीं है कि अपने जीवन को नफरत और बैर की बजाय प्रेम और कृपालुता में निवेश किया जाए?
5. हमें ईसा (यीशु) मसीह का अनुकरण करने की जरूरत क्यों है?

मसीह के सुसमाचार में सम्बन्धों को लेकर त्रुटिहीन निर्देश दिए गए हैं

ये निर्देश मन, दिल और विवेक की ओर निर्देशित किए गए हैं। एकसाथ मिलकर वे अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम हैं। इस भाग में मेरा उद्देश्य यही है; ईसा (यीशु) मसीह के निर्देशों को आपके मन, आपके दिल और आपके विवेक में डालना, ताकि आप यह पहचान सकें कि वे कितने अलग, लाभकारी और जीवन को बदल देने वाले हैं।

मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु उसके रिश्ते होते हैं। अगर कोई आस्था लोगों में एकता और मेल-मिलाप पैदा नहीं करती, तो फिर ऐसी आस्था में जीवन बिताना एकदम बेकार होगा। हमारी आस्था हमारे रिश्तों अर्थात सम्बन्धों में हमारी पहचान और हमारे व्यवहार को आकार देती है। इसलिए हमें यह चयन करने की जरूरत है कि हमें कौन सी आस्था का अनुकरण करना चाहिए और कौन सी आस्था का नहीं। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम अपनी आस्था की तुलना दूसरों की आस्था के साथ करें और पता करें कि क्या हमारी आस्था सर्वोत्तम है या हमें इसके स्थान पर उसे चुनने की जरूरत है जो सर्वोत्तम है।

प्रेम और कृपा: सम्बन्धों में इंजील इन्हें प्राथमिकता देती है

मैंने कहा है कि इंजील में दिए गए निर्देश सिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि इंजील की आस्था कहती है कि स्वस्थ सम्बन्धों के निर्माण के लिए प्रेम और कृपा मुख्य कारक हैं।

और कोई भी आस्था प्रेम और कृपा को सम्बन्धों के सन्दर्भ में इतना अधिक महत्त्व नहीं देती, जितना महत्त्व ईसा (यीशु) मसीह की आस्था देती है।

जो आस्थाएँ मनुष्य की उत्पत्ति को क्रम-विकास का परिणाम मानती हैं, वे सैद्धान्तिक शिक्षा के आधार पर कृपा और क्रूरता में भिन्नता करने में सक्षम नहीं होतीं। क्यों? क्योंकि उनके अनुसार सबकुछ संयोगवश होता है। इस कारण मनुष्य यह फैसला नहीं कर सकता कि अपने सम्बन्धों में वह प्रेम और कृपा को प्रधानता देते हुए चुने। ये आस्थाएँ चयन की आज़ादी को प्रकृति के हाथों बलिदान कर देती हैं और लोगों को शक्तिहीन बना देती हैं। इस प्रकार सम्बन्धों में जाँच-परख करना, आकलन करना और रचनात्मक फैसले लेना असम्भव हो जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि यह सब संयोगवश नहीं होता, बल्कि हमारे द्वारा बोले जाने वाले शब्दों और दर्शाए जाने वाले व्यवहार के आधार पर होता है।

न्यु एज, धर्मनिर्पेक्ष मानववाद, हिन्दु धर्म, बौद्ध धर्म और ऐसी अन्य आस्थाओं में प्रत्येक मनुष्य को परमेश्वर के समतुल्य माना जाता है। इनमें प्रेम और कृपा केवल स्वार्थ पूरा करने के माध्यम बन कर रह जाते हैं, जिनसे केवल निजी लाभ प्राप्त हो सके।

कल्पना करें कि वह परिवार कैसा होगा जिसमें पत्नी के लिए पति का प्रेम, पति के लिए पत्नी का प्रेम, माता-पिता के लिए बच्चों का प्रेम कोई मायने ही नहीं रखता है क्योंकि हर एक को यही सिखाया जाता है कि वे खुद अपने रब हैं और वे अपनी इच्छा से अपने आदर्शों का पालन कर सकते हैं! जिस परिवार या समाज में इस प्रकार के व्यक्तिगत सदाचार का पालन किया जाता है, उनमें अराजकता और अव्यवस्था हावी हो जाती है। यह पति, पत्नी, बच्चों या अगुवों का व्यक्तिगत आदर्श नहीं है जो परिवार और समाज में शान्ति स्थापित करता है। यह शान्ति तो सिद्ध आदर्श के सिद्धान्तों से आती है, जिसके मानक बाकी सब आदर्शों से ऊपर होते हैं।

इस्लाम में भी प्रेम और कृपा मुस्लिम अगुवों के अधिकार की अधीनता में रहते हैं। इस कारण इस्लाम में प्रेम और कृपा को नहीं, बल्कि अधिकारियों के फैसलों और ताकत को प्रधानता दी जाती है। परिणामस्वरूप, इस्लाम में कोई भी, यहाँ तक कि मुहम्मद भी, प्रेम और कृपा का सिद्ध उदाहरण नहीं हो सकता, क्योंकि ताकत और बल प्रेम और कृपा को शर्तों की अधीनता में ले आते हैं।

ईसा (यीशु): प्रेम और कृपा का सिद्ध उदाहरण

केवल ईसा (यीशु) ही आपके परिवार और दूसरों के साथ आपके सम्बन्ध में प्रेम और कृपा का सिद्ध आदर्श हो सकता है। क्यों? पहले मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ, और उसके बाद मैं आपको इसके कारण बताऊँगा।

आपके अनुसार प्रेम और कृपा के सिद्ध आदर्श का व्यवहार कैसा होना चाहिए? इस आदर्श की उपयुक्त परिभाषा क्या होनी चाहिए?

यह आदर्श एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो सब लोगों के लिए, फिर चाहे वे मित्र हों या विरोधी, एक समान प्रेम और कृपा की उत्तमता का व्यवहारिक प्रदर्शन करे। मित्रों के लिए इसलिए, क्योंकि सच्ची मित्रता प्रेम और कृपा पर ही आधारित होती है; विरोधियों के लिए इसलिए, ताकि वे थोड़ा रुककर सोचें और समझें कि विरोध केवल दूसरों को नीचा दिखाने के लिए ही नहीं, बल्कि शान्तिपूर्वक तरीके से एक बेहतर पद्धति पेश करने के लिए किया जाना चाहिए, ताकि शान्तिपूर्वक सम्बन्धों को स्थापित किया जा सके। सारे संसार का कोई भी धर्म या कोई भी दर्शनशास्त्र ऐसा आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सकता, यह आदर्श हमें केवल ईसा (यीशु) मसीह की इंजील में ही देखने को मिलता है। यह आदर्श खुद ईसा (यीशु) मसीह है।

ईसा (यीशु) मसीह की इंजील कहती है कि परमेश्वर प्रेम है। अगर परमेश्वर प्रेम न होता, तो उसका सन्देश और सन्देशवाहक प्रेमी हो ही नहीं सकते थे। इसलिए दूसरों के साथ प्रेमी सम्बन्ध स्थापित करने

के लिए पहला कदम यह है कि उस सच्चे परमेश्वर की खोज की जाए जो प्रेम का स्रोत है और उसकी नींव पर अपने जीवन का निर्माण किया जाए। प्रेम के स्रोत के साथ हमारे जीवन का सम्पर्क गहरा होना चाहिए। ऐसा होने पर हमारे सम्बन्धों में प्रेम और कृपा की कमी कभी नहीं होगी और न ही हमें नफरत करने का कोई बहाना मिलेगा।

अवश्य है कि एक सच्चा पैगम्बर और उसकी आस्था प्रेम और कृपा पर आधारित हो

ईसा (यीशु) मसीह ने अपनी इंजील (मत्ती 22:37-40) में कहा कि सारे व्यवस्था-विधान और नबियों की शिक्षा इन दो बातों पर टिकी हुई है: पहली, तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन, सारे प्राण और सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। दूसरी, तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। वह इस सिद्धान्त को पेश कर रहा है कि सच्चे नबी और सच्चे नियमों का आधार प्रेम और कृपा होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं है, तो वह नबी और उसका धर्म तथा नियम प्रेमी परमेश्वर की ओर से हो ही नहीं सकते। इसलिए आप दूसरों के साथ स्थाई शान्ति या मित्रता स्थापित करने में कितनी ही रुचि क्यों न रखते हों, आपको तब तक सफलता नहीं मिलेगी जब तक आप अन्य किसी भी आदर्श या नबी का अनुकरण करते रहेंगे। ऐसा करने के लिए आपको ईसा (यीशु) मसीह में पाए जाने वाले प्रेम और कृपा के आदर्श का अनुकरण करना होगा।

अगर आप क्रोधी और तानाशाही नबी या अगुवे का अनुकरण करेंगे, तो उसका व्यवहार आपके परिवार के प्रति तथा दूसरों के प्रति आपके व्यवहार के लिए एक आदर्श बन जाएगा। लेकिन अगर आप ईसा (यीशु) का अनुकरण करते हैं, तो उसका शर्तरहित प्रेम और कृपा दूसरों के प्रति आपके व्यवहार के लिए आदर्श बन जाएँगे। सम्बन्धों के सन्दर्भ में क़ुरआन की बातों और इंजील की बातों में बहुत बड़ा अन्तर पाया जाता है। क़ुरआन में उस प्रेम और कृपा की कमी पाई जाती है जो स्थाई मित्रता के लिए जरूरी है। मसीह इस संसार में इसलिए आया ताकि हमें प्रेम करना सिखाए और हमारे दिलों में से नफरत, श्रापों, बैर और लड़ाइयों को निकाल फेंके, जबकि मुहम्मद के जीवन के अन्तिम दस वर्ष इन्हीं सब बातों से भरे हुए थे। क्या नफरत, श्रापों, बैर और लड़ाइयों के द्वारा स्थाई मित्रता की स्थापना हो सकती है? बिल्कुल नहीं। कल्पना करें कि क्या होता अगर परमेश्वर आपके पाप के कारण आपसे नफरत करता और आप पर श्राप डाल देता तथा हमेशा आपसे बैर रखता। तो क्या आपके पास इस बात की कोई आशा भी बाकी बचती कि आप उसके पास लौटें और उसके मित्र बन जाएँ? बिल्कुल नहीं। लोग परमेश्वर के प्रेम और तरस के कारण उसके मित्र बनते हैं, उसके बैर के कारण नहीं। इब्राहीम परमेश्वर का मित्र इसलिए बन पाया, क्योंकि परमेश्वर भयानक होने की बजाय उसके लिए मित्र बना था और उस पर कृपा की थी। हमारे सम्बन्धों में भी ऐसा ही होता है। लोग तभी हमारे मित्र बनते हैं, अगर हम कृपालु, प्रेमी और देखभाल करने वाले हों। अगर हम लोगों को श्राप देते रहें और उनसे बैर रखते रहें, तो कोई भी हमारा मित्र नहीं बनेगा। इसी कारण इंजील में 1 यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 4 की

आयत 11 और 12 में लिखा है: हे प्रियो, जब परमेश्वर ने हम से ऐसा प्रेम किया, तो हम को भी आपस में प्रेम रखना चाहिए ... यदि हम आपस में प्रेम रखें, तो परमेश्वर हम में बना रहता है और उसका प्रेम हम में सिद्ध हो गया है।

इंजील आपसे कहती है कि आप प्रेमी परमेश्वर को अपने अन्दर निवास करने की अनुमति दें ताकि आपका प्रेम सिद्ध हो जाए और फिर आप उस सिद्ध प्रेम के द्वारा अपने शत्रुओं को भी बदल डालें। क्योंकि सबका ध्यान सिद्ध वस्तुओं की ओर जाता है, इसलिए सबका ध्यान सिद्ध प्रेम की ओर भी खिंचेगा। सिद्ध प्रेम के द्वारा आपका परिवार प्रेमी परिवार बन सकता है और इस प्रकार आप तथा आपका प्रेमी परिवार अपने मोहल्ले और अपने समाज में प्रकाशमान होंगे। आपका प्रेम आपके विरोधियों को भी हैरान कर सकता है, और सम्भव है कि वे भी आपके पदचिह्नों पर चलने लगें और आपका बैर समाप्त हो जाए। इस कारण आपको ईसा (यीशु) मसीह का अनुकरण करने की और उसकी इंजील को अपने सिर का ताज बनाने की जरूरत है, ताकि आपके परिवार के सदस्यों के साथ और दूसरों के साथ आपके सम्बन्ध प्रेम भरे हो जाएँ।

चिन्तन का समय 15

1. अगर ईसा (यीशु) की शिक्षाओं के अनुसार प्रेम और कृपा सबके लिए हर परिस्थिति में एक समान होने की बजाय न्यु एज, इस्लाम और विकास-क्रम पर विश्वास करने वाले धर्मों के अनुसार परिस्थितियों पर आधारित हो जाए, तो यह एक समस्या कैसे बन सकता है?
2. आपके अनुसार प्रेम और कृपा के सिद्ध आदर्श की क्या विशेषताएँ होनी चाहिएँ?
3. अगर हम एक क्रोधी और तानाशाही अगुवे या नबी का अनुकरण करेंगे, तो लोगों के साथ हमारे सम्बन्ध कैसे दिखेंगे?
4. अगर हम प्रेम और कृपा में स्थापित होना चाहते हैं और दूसरों के साथ शान्तिपूर्वक सम्बन्ध चाहते हैं, तो हमें सच्चे परमेश्वर की खोज करने की जरूरत क्यों है?
5. प्रेम और कृपा एक परिवार, समाज और संसार में क्या परिवर्तन ला सकते हैं?
6. क्या ईसा (यीशु) के सच्चे प्रेम और कृपा के लिए उसका आदर करना अच्छी बात है?

क़ुरआन इस्लाम के नबी से कहता है कि वह बाइबल पर ईमान लाए

क्या आप इस पर विश्वास कर सकते हैं? मैं इसी बारे में बात करने जा रहा हूँ और आप इसे देखकर हैरान हो जाएँगे।

रूढ़िवादी मुसलमानों द्वारा यह बात फैलाई गई है कि तौरात और इंजील को बदल दिया गया है। क्या यह सच है? मैंने पिछले अध्याय में बात की थी कि कैसे क़ुरआन की आयतों में लिखा है कि क़ुरआन को बदला गया था। क्या इसी तरह से तौरात और इंजील को भी बदला गया था?

जो मुसलमान यह दावा करते हैं कि तौरात और इंजील को बदला गया था, वे तर्क के आधार पर इस बात का कोई प्रमाण नहीं दे पाते हैं कि यह बदलाव मुहम्मद के आने से पहले हुए थे, या उसके समय में हुए थे या उसके बाद हुए थे। क्या आप जानते हैं कि वे अपने इस दावे का तर्क के आधार पर प्रमाण क्यों नहीं दे पाते? क्योंकि इस बारे में वे जो कुछ भी कहेंगे, वह क़ुरआन के शब्दों के विरुद्ध ही होगा।

यह सम्भव नहीं है कि तौरात और इंजील मुहम्मद के आने से पहले बदली गई होंगी

क्योंकि सूरह यूनुस (10) की आयत 94 में मुहम्मद से कहा गया है: यदि तुम्हें उस चीज़ के बारे में कोई संदेह हो, जो हमने तुम्हारी ओर अवतरित की है, तो उनसे पूछ लो जो तुमसे पहले से किताब पढ़ रहे हैं। सूरह आले-इमरान (3) की आयत 3 और सूरह अल-माइदा (5) की आयत 46 से 48 में भी लिखा है कि इंजील और तौरात सब लोगों के लिए मार्गदर्शन और प्रकाश था।

यहाँ पर हम देख सकते हैं कि क़ुरआन बताता है कि मुहम्मद को अपने क़ुरआन पर सन्देह था, लेकिन उसके रब ने उससे कहा कि वह अपने समय के मसीहियों और यहूदियों से सत्य के बारे में सीखे, जो इंजील और तौरात के मानने वाले हैं। इससे पता चलता है कि तौरात और इंजील को मुहम्मद के आने से पहले बदला नहीं गया था, वरना उसका रब इसे लोगों के लिए प्रकाश नहीं कहता और अगर मसीही और यहूदी बदले गए पवित्र शास्त्र के मानने वाले होते, तो वह मुहम्मद से यह न कहता कि वह उनसे सत्य के बारे में सीखे।

यह सम्भव नहीं है कि तौरात और इंजील मुहम्मद के समय में बदली गई होंगी

क्योंकि सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 91 और 97 और सूरह अन-निसा (4) की आयत 47 में मुहम्मद से कहा गया है: वही सत्य

है, उसकी पुष्टि करता है जो उनके पास है। फिर सूरह अल-माइदा (5) की आयत 68 में लिखा है: ऐ किताबवालो! तुम किसी भी चीज़ पर नहीं हो, जब तक कि तौरात और इंजील को और जो कुछ तुम्हारे रब की ओर से तुम्हारी ओर अवतरित हुआ है, उसे क़ायम न रखो...।

वाह! न केवल क़ुरआन मुहम्मद के समय की तौरात और इंजील की खराई की पुष्टि करता है, बल्कि वह यहूदियों और मसीहियों से यह भी कहता है कि वे उन पर अपना ईमान कायम रखें। अगर यहूदियों और मसीहियों ने अपने पवित्र ग्रन्थों को बदल दिया होता तो क़ुरआन उनकी पुष्टि न करता।

यह सम्भव नहीं है कि तौरात और इंजील मुहम्मद की मृत्यु के बाद बदली गई होंगी

क्योंकि क़ुरआन पुष्टि करता है कि सच्ची तौरात और इंजील सारे अरब प्रायद्वीप और उसके आस-पास इस्लामिक सेना के अधीन क्षेत्र में मौजूद थी। इस्लाम की पहली शताब्दी के मुस्लिम अगुवे और उपदेशक सच्ची तौरात और इंजील की एक कॉपी सम्भाल कर सुरक्षित रख सकते थे, जो किसी भी प्रकार के बदलाव को साबित करने का प्रमाण हो सकती थी। लेकिन पुरातन इस्लामिक पुस्तकों और कॉमैण्ट्रियों में इस दावे का कोई हवाला नहीं दिया गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इन बदलावों के दावे का कोई आधार ही नहीं है।

क़ुरआन मुहम्मद से कहता है कि वह मसीही और यहूदी पवित्र ग्रन्थों का सहारा ले

मैं हैरान हूँ कि मुस्लिम नेता और धार्मिक अगुवे क़ुरआन की दो महत्त्वपूर्ण बातों को पूरी तरह से अनदेखा क्यों कर रहे हैं। सूरह यूनुस (10) की आयत 94 और 95 में मुहम्मद से कहा गया है कि वह तौरात और इंजील का सहारा ले। सूरह अल-माइदा (5) की आयत 43 में लिखा है कि यहूदियों को अपनी तौरात का पालन करना चाहिए और उन्हें क़ुरआन या मुहम्मद के फैसलों का पालन करने की जरूरत नहीं है।

क्या आप इस बात से हैरान नहीं हैं कि क़ुरआन का रब मुहम्मद से कह रहा है कि वह इंजील और तौरात पर विश्वास करे, जबकि वह यहूदियों और मसीहियों से कह रहा है कि उन्हें क़ुरआन का पालन करने की जरूरत नहीं है? कहने का भाव यह है कि यह सम्भव है कि मुहम्मद और मुसलमान अपने क़ुरआन पर सन्देह करें या उसे ठुकरा दें, लेकिन क़ुरआन के अनुसार वे तौरात के साथ ऐसा नहीं कर सकते। अगर इस्लाम के सर्वोच्च अगुवे मुहम्मद को तौरात और इंजील का सहारा लेने के लिए कहा गया है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम जनता, मुस्लिम नेताओं, उपदेशकों और धार्मिक अगुवों को भी मसीही और यहूदी पवित्र ग्रन्थों के बारे में झूठ फैलाने की बजाय उनका सहारा लेने की जरूरत है।

क़ुरआन की ये आयतें दर्शाती हैं कि मुहम्मद अपने समय के मसीही और यहूदी पवित्र ग्रन्थों का बहुत सम्मान करता था। उसने न केवल इन पवित्र पुस्तकों के अधिकार की पुष्टि की, बल्कि मुसलमानों को उन पर ईमान लाने के लिए भी प्रोत्साहित किया। इस प्रकार खुद क़ुरआन ही तौरात और इंजील के बारे में हर तरह के सन्देह को दूर कर देता है।

अगर मसीहियों और यहूदियों ने अपने पवित्र ग्रन्थों में बदलाव कर दिए होते और भटक गए होते, तो मुहम्मद न तो इन पवित्र ग्रन्थों का और न ही उनकी रीतियों का सहारा लेना चाहता। लेकिन हम इस्लामिक पुस्तकों के माध्यम से जानते हैं कि मुहम्मद कई वर्षों तक मक्का में एक चर्च में जाता रहा और याजकों के सम्पर्क में भी रहा। उसकी पत्नी खदीजा भी मक्का में एक चर्च में जाया करती थी। इसका कारण यह था कि मुहम्मद मसीहियों पर भरोसा करता था। अगर मुहम्मद की जीवनगाथा हमें यह सब बताती है और साथ ही हम देख पाते हैं कि वह अपने समय में बाइबल का बहुत सम्मान करता था, तो फिर तौरात और इंजील में बदलाव किए जाने की कहानी कहाँ से आ गई?

इस तरह का आरोप लगाने के विचार का आरम्भ कहाँ से हुआ?

इस तरह का आरोप लगाने के विचार का आरम्भ उस समय हुआ जब मुहम्मद मक्का से भागकर मदीना चला गया और खज़राज

नामक एक जनजातीय कबीले में शरण ली, जो यहूदियों और मसीहियों से नफरत करने वाले लोग थे। वहाँ जिन्दा रहने और उन लोगों में कबूल किए जाने के लिए मुहम्मद ने खुद को उस जनजातीय कबीले के अनुसार ढाल लिया। नफरत लोगों के सम्बन्धों में गम्भीर समस्याएँ पैदा कर देती है। अगर आप किसी व्यक्ति या लोगों के समूह से नफरत करने लग जाएँ, तो वह नफरत आपके द्वारा उन लोगों पर बहुत सारे झूठे आरोप लगवाएगी, यहाँ तक कि उन्हें दुष्ट पशु भी बुलवाएगी और उनकी मौत की चाहत पैदा करवाएगी।

मदीना में मुहम्मद के साथ यही हुआ। जब तक वह मक्का में था तब तक वह यहूदियों और मसीहियों को अच्छे आदर्श मानता रहा और उनके पवित्र ग्रन्थों को लोगों के लिए प्रकाश मानता रहा। लेकिन मदीना पहुँचने के बाद वह उन्हें दुष्ट पशु कहने लगा, उनके पवित्र ग्रन्थों को बुरा बोलने लगा और उन्हें जबरन अपनी आस्थाओं को छोड़ने और इस्लाम कबूल करने के लिए कहने लगा। आगे चलकर उसने यहूदियों और मसीहियों के साथ जो कुछ किया वह क़ुरआन के उन निर्देशों के एकदम विपरीत था, जो मक्का में मुहम्मद के जीवनकाल के दौरान दिए गए थे। उसका तर्क यह था कि उसके रब ने यहूदियों, मसीहियों और उनके ग्रन्थों के बारे में उसका मन बदल दिया था, ताकि मुहम्मद को खुशी मिले।

क्या सच्चा परमेश्वर सत्य को त्याग कर अपने ही वचनों और निर्देशों के खिलाफ बोलता है?

बिल्कुल नहीं। यह भी एक कारण है कि मैंने क़ुरआन पर विश्वास क्यों खो दिया।

जैसे-जैसे मदीना में मुहम्मद की ताकत बढ़ती गई, वैसे-वैसे क़ुरआन अपनी मूल सैद्धान्तिक शिक्षाओं से दूर होता गया। इससे लोग उलझन में पड़ने लगे, यहाँ तक कि उसके अपने लोग भी गुस्सा हो गए और इस्लाम को छोड़कर चले गए, क्योंकि अब इसमें मनुष्यों के प्रति भेदभाव और बैर भर दिया गया था। मदीना का मुहम्मद अब मक्का वाला मुहम्मद नहीं रह गया था। मक्का में वह एक शान्तिप्रिय व्यक्ति था और बहुदेववादियों को जबरन अपने अनुयायी नहीं बनाता था। यहूदी और मसीही बाइबल का पालन करते हुए सही रास्ते पर आगे बढ़ रहे थे। यहाँ तक कि वह अपनी पत्नी खदीजा के साथ चर्च भी जाया करता था। लेकिन मदीना में जाकर वह लोगों से जबरदस्ती करने लगा और यहूदियों तथा मसीहियों से नफरत करने लगा, जिसके लिए उसने यह बहाना दिया कि उसके रब ने उसे खुश करने के लिए उसका मन बदल दिया है।

इस तरह का आरोप लगाने का विचार कैसे फैला?

मदीना में मुहम्मद उस जनजातीय कबीले को, जिसके साथ वह रह रहा था, खुश करने के लिए यहूदियों और मसीहियों पर आरोप लगाने

का बहाना खोजने लगा। उसने अपने अनुयायियों को यह भी सिखाया कि उसके नाम की नबूवत तौरात और इंजील में पहले से ही कर दी गई थी (सूरह 7:157 और 61:6), ताकि भविष्य में उसके अनुयायी बाइबल में मुहम्मद का नाम न मिलने पर यहूदियों और मसीहियों पर आरोप लगा सकें कि उन्होंने बाइबल में बदलाव कर दिए हैं। मुहम्मद की मौत के कई वर्षों बाद मुस्लिम उपदेशकों ने पाया कि मुहम्मद का नाम बाइबल में कहीं पर भी दर्ज नहीं है। क्योंकि उनके लिए यह गैरकानूनी था कि वे मुहम्मद और क़ुरआन की बातों पर सन्देह करते, इसलिए उनके लिए सरल और सुरक्षित तरीका यह था कि वे यहूदियों और मसीहियों पर आरोप लगा दें कि उन्होंने बाइबल में बदलाव करके मुहम्मद का नाम वहाँ से निकाल दिया है। इस प्रकार "बाइबल में से मुहम्मद का नाम निकाल दिए जाने की खबर" मुसलमानों में जंगल की आग की तरह फैल गई।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मदीना पहुँचने के बाद मुहम्मद ने यहूदियों और मसीहियों के प्रति अपना व्यवहार बदल लिया। इसके कारण उसके उत्तराधिकारियों को यह अवसर मिल गया कि वे बाइबल पर एक आधार-रहित आरोप लगाते हुए उसे ठुकरा दें और संसार भर के मुसलमानों को यहूदियों और मसीहियों पर आरोप लगाने के लिए भड़का दें।

आरोप का मुखौटा

सच्चाई बोलने के डर ने मुस्लिम अगुवों और उपदेशकों के लिए दरवाज़े बन्द कर दिए हैं कि वे क़ुरआन और बाइबल में पाई जाने वाली भिन्नताओं के बारे में तर्क और थियोलॉजिकल आधार पर चर्चा करें।

हैरानी की बात यह है कि मुस्लिम अगुवों और उपदेशकों के लिए बाइबल की खराई उसके सन्देश पर नहीं, बल्कि इस बात पर आधारित है कि इसमें मुहम्मद का नाम मौजूद है या नहीं। इन दोनों पुस्तकों में पाई जाने वाली वास्तविक भिन्नता यह नहीं है कि इनमें किसी का नाम दर्ज है या नहीं, बल्कि यह है कि बाइबल अपने अनुयायियों के लिए पृथ्वी पर उनके जीवन के दौरान ही उद्धार का प्रबन्ध करती है, जबकि क़ुरआन ऐसा नहीं करता।

मान लीजिए कि बाइबल में मुहम्मद का नाम दर्ज था। तो इससे क्या फर्क पड़ता है? कुछ भी नहीं। बाइबल का केन्द्रीय सन्देश यह है कि उद्धार पाने के लिए आपको ईसा (यीशु) मसीह पर ईमान लाना है, जो जिन्दा है, स्वर्ग में है और आपको स्वर्ग ले जा सकता है। अगर मुहम्मद का नाम बाइबल में होता, तो भी बाइबल का सन्देश यही होता कि आप ईसा (यीशु) पर ईमान लाएँ। क्यों? क्योंकि ईसा (यीशु) ही वह रास्ता, सच्चाई और जीवन है जो आपको स्वर्ग ले जा सकता है।

आदम से लेकर ईसा (यीशु) तक के बाइबल के सन्देश का सार इस तथ्य में पेश किया जा सकता है कि परमेश्वर के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम मनुष्य की मुक्ति है। इसी कारण परमेश्वर ने खुद को व्यक्तिगत तौर पर ईसा (यीशु) मसीह के द्वारा प्रकट किया ताकि मनुष्य को पाप और शैतान के बन्धन से मुक्त करवा सके। इसलिए बाइबल में परमेश्वर का मुख्य उद्देश्य किसी नबी के नाम का मौजूद होना या न होना नहीं, बल्कि मनुष्य की मुक्ति है, जो किसी भी व्यक्ति के नाम से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

ईसा (यीशु) मसीह की सम्पूर्ण बाइबल को एक पूरी पुस्तक का रूप 40 नबियों द्वारा दिया गया जिसमें 1600 वर्ष से अधिक का समय लगा। इसमें दर्ज 300 से अधिक नबूवतें संकेत करती हैं कि ईसा (यीशु) मसीह आएगा और संसार को मुक्ति देगा। न तो कोई राजनीतिक अस्थिरता, न आर्थिक और सामाजिक उठा-पटक इतने लम्बे समय के दौरान भी इन 40 नबियों के सन्देश के तालमेल में कोई गड़बड़ी ला पाई। ये नबूवतें ईसा (यीशु) मसीह के आने पर पूरी हो गईं। लेकिन क़ुरआन के तालमेल में बहुत अधिक गड़बड़ी पाई जाती है, हालाँकि इसे केवल एक व्यक्ति, मुहम्मद ने 23 वर्षों की छोटी सी अवधि के दौरान ही लिखा है। इस छोटी अवधि के बावजूद मुहम्मद के जीवन के अन्तिम 10 वर्षों में लिखी गई क़ुरआन की अधिकतर आयतें मक्का में बीते उसके आरम्भिक जीवन के एकदम विपरीत हैं। क्या आप यह देखकर हैरान नहीं है कि 1600 वर्ष से अधिक की अवधि में इतने सारे नबियों द्वारा लिखे गए बाइबल के

सन्देश में कोई गड़बड़ी नहीं पाई जाती, बल्कि पूरा तालमेल पाया जाता है?

आप अपने चेहरे से आरोप का मुखौटा कैसे उतार सकते हैं?

मेरी जिज्ञासा ने मुझे प्रेरित किया कि मैं ईसा (यीशु) मसीह की बाइबल को खुद पढ़ूँ और उसमें लिखे वचनों को खुद परखूँ, क्योंकि मुस्लिम अगुवे लगातार इसे रद्द करते आ रहे हैं। मैंने खुद से कहा कि परमेश्वर ने मुझे देखने और पढ़ने के लिए आँखें दी हैं, तुलना करने के लिए दिमाग दिया है, आकलन करके फैसला लेने के लिए दिल और विवेक दिया है। इससे मेरे लिए यह पता करने का रास्ता खुल गया कि मसीह की बाइबल मनुष्य के हाथों को परमेश्वर के हाथों में रख देती है। क़ुरआन ऐसा कभी नहीं करता। इसी कारण मैंने अपना दिल ईसा (यीशु) को सौंप दिया।

आपको भी ऐसा ही करने की जरूरत है। आप खुद पहल करके पता करें कि क्या क़ुरआन सच्चा है या ईसा (यीशु) मसीह की बाइबल सच्ची है। फिर आप उसे चुनें जिसमें आपको मुक्ति का आश्वासन मिलता है। न तो क़ुरआन और न ही मुहम्मद आपको मुक्ति का आश्वासन दे पाएगा। सूरह लुक़मान (31) की आयत 34 और सूरह अल-अहक़ाफ़ (46) की आयत 9 में लिखा है कि कोई नहीं जानता कि उसकी मौत के बाद उसके साथ क्या किया जाएगा। लेकिन बाइबल में लिखा है कि जो लोग मसीह का अनुकरण करते हैं, वे

मुक्ति पा चुके हैं और अपनी मौत के बाद सीधे सच्चे परमेश्वर की बाँहों में जाएँगे। इसलिए ईसा (यीशु) मसीह की बाइबल पर ईमान लाएँ और मुक्ति प्राप्त करें।

चिन्तन का समय 16

1. अगर मुहम्मद को लगता कि बाइबल में बदलाव किए गए हैं, तो क्या वह बाइबल पर ईमान लाता?
2. क्या बाइबल में किए गए तथाकथित बदलावों का आरोप लगाने वाले मुस्लिम विद्वान अपने दावे का समर्थन तथ्यों के साथ कर पाएँगे?
3. मुस्लिम विद्वानों द्वारा लगाए जाने वाले आरोप का एक कारण यह है कि बाइबल में मुहम्मद का नाम दर्ज नहीं है। अगर मुहम्मद का नाम बाइबल में दर्ज होता, तो क्या इससे इसके केन्द्रीय सन्देश पर कोई फर्क पड़ता?
4. हमें क्या करने की जरूरत है जिससे मुसलमानों का ध्यान बाइबल में किसी एक नाम की मौजूदगी या गैर-मौजूदगी की बजाय उनकी अपनी मुक्ति की ओर आए (क्योंकि परमेश्वर का मुख्य उद्देश्य यही है)?
5. हमें कौन सी किताब का अनुकरण करने की जरूरत है—बाइबल का, जो मुक्ति का आश्वासन देती है या क़ुरआन का, जिसमें मुक्ति का कोई आश्वासन नहीं है?

मसीहियों के विश्वास पर इस्लाम द्वारा लगाए जाने वाले आरोप बेबुनियाद हैं

इस्लाम मसीहियों पर उन बातों का आरोप लगाता है, जिस पर वे विश्वास ही नहीं करते। इनमें से एक उदाहरण "परमेश्वर का पुत्र" शब्दों की गलत व्याख्या है। ईसा (यीशु) के अनुयायी आत्मिक तौर पर मानते हैं कि ईसा (यीशु) परमेश्वर का पुत्र है और वे स्वयं भी परमेश्वर के पुत्र[10] हैं।

ईसा (यीशु) को "परमेश्वर का पुत्र" कहना इस्लाम में निन्दनीय है

क़ुरआन में सूरह अन-निसा (4) की आयत 171 में लिखा है कि परमेश्वर का पुत्र होना बहुत ही निन्दनीय बात है। और सूरह मरयम की आयत 35, 89 और 91 में लिखा है कि परमेश्वर का बेटा होने का दावा करना एक अत्यन्त भारी बुराई, विनाशकारी और भयानक बात है। क़ुरआन की इन आयतों के आधार पर और ईसा (यीशु)

[10] इंजील में लिखा है, "धन्य हैं वे, जो मेल करानेवाले हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के पुत्र कहलाएँगे" (मत्ती 5:9)। यीशु को परमेश्वर का पुत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह न केवल शान्तिदाता है, बल्कि शान्ति का राजकुमार भी है। उसके अनुयायियों को भी परमेश्वर के पुत्र कहा जाता है क्योंकि वे ईसा (यीशु) के द्वारा शान्ति में स्थापित किए गए हैं और उसकी शान्ति के दूत नियुक्त किए गए हैं।

मसीह की इंजील में इसके सही अर्थ के विपरीत इस्लामिक कॉमैण्ट्रियाँ "परमेश्वर का पुत्र" शब्दों की गलत व्याख्या करती हैं और इसे "मसीहियों द्वारा परमेश्वर की निन्दा" कहती हैं। वे कहते हैं कि मसीहियों की मान्यता है कि ईसा (यीशु) का इस संसार में जन्म परमेश्वर और मरियम के शारीरिक सम्बन्ध के नतीजे से हुआ है।

मसीही बाइबल में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि ईसा (यीशु) जन्म परमेश्वर और मरियम के शारीरिक सम्बन्ध से हुआ था। इसकी बजाय यह लिखा है कि कुँवारी मरियम पर परमेश्वर का आत्मा उतरा और आत्मा देहधारी हुआ और खुद को ईसा (यीशु) मसीह के रूप में प्रकट किया। इंजील में परमेश्वर और मरियम का सम्बन्ध एक आत्मिक सम्बन्ध है। परमेश्वर को न तो एक पत्नी की जरूरत है और न ही वह किसी स्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध बना सकता है क्योंकि वह परमेश्वर है।

"परमेश्वर का पुत्र" शब्दों की सच्चाई को अनदेखा करना

क्या यह हैरानीजनक नहीं है? मुहम्मद और मुस्लिम विद्वानों ने इंजील में इन शब्दों के वास्तविक अर्थ के प्रति अपनी आँखें बन्द रखीं, जबकि मसीहियों पर आरोप लगाते रहते है कि वे परमेश्वर की निन्दा करते हैं। इसके अतिरिक्त वे मुसलमानों को उकसाते हैं कि वे अपनी खुद की गलत व्याख्या और नासमझी के कारण मसीहियों की हत्या करें। इसलिए हर एक मुसलमान को मसीहियों से इंजील माँगने की

जरूरत है, ताकि वे उसे पढ़ें और खुद यह समझ प्राप्त करें कि इस्लाम द्वारा मसीहियों पर लगाए जाने वाले आरोप झूठे और गलत हैं। मुसलमानों को यह समझने की जरूरत है कि परमेश्वर का बेटा या बेटी कहलाने का क्या अर्थ है, ताकि 1400 वर्षों से चली आ रही नासमझी, गलत धारणाओं और मसीहियों तथा यहूदियों की आस्था के प्रति कठोर रवैये को खत्म किया जा सके।

इंजील में ईसा (यीशु) के मरियम के गर्भ में आने का घटनाक्रम लूका की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 35 में इस तरह से लिखा है: "पवित्र आत्मा तुझ पर उतरेगा, और परमप्रधान की सामर्थ्य तुझ पर छाया करेगी; इसलिये वह पवित्र जो उत्पन्न होनेवाला है, परमेश्वर का पुत्र कहलाएगा।" आप देख सकते हैं कि इंजील साफ शब्दों में कह रही है कि परमेश्वर का आत्मा मरियम पर उतरेगा और वह पवित्र पुत्र ईसा (यीशु) को अपने गर्भ में धारण करेगी। इसलिए यह एक शारीरिक सम्बन्ध नहीं बल्कि एक आत्मिक सम्बन्ध है।

ईसा (यीशु) मसीह के अनुयायियों के बारे में भी इंजील में यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 12 और 13 में लिखा है कि ईसा (यीशु) ने उन्हें परमेश्वर की सन्तान होने का अधिकार दिया, जो उसके नाम पर विश्वास रखते हैं। वे न तो लहू से, न शरीर की इच्छा से, न मनुष्य की इच्छा से, परन्तु परमेश्वर से आत्मिक रूप से उत्पन्न हुए हैं क्योंकि वे ईसा (यीशु) मसीह पर ईमान लाए हैं। इंजील में 1 पतरस की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 23 में ईसा (यीशु) मसीह के अनुयायियों के लिए लिखा गया है: "तुम ने नाशवान नहीं पर

अविनाशी बीज से, परमेश्वर के जीवते और सदा ठहरने वाले वचन के द्वारा नया जन्म पाया है।"

इस प्रकार ईसा (यीशु) को परमेश्वर का पुत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह जीवित और अनन्त आत्मा तथा परमेश्वर का वचन है; हमें परमेश्वर के पुत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि ईसा (यीशु) जो अनन्त आत्मा और परमेश्वर का वचन है, हम में वास करता है, और उसने हमें अनन्त जीवन और आश्वासन दिया है। इसलिए परमेश्वर के पुत्र के बारे में मसीहियों की आस्था की इस्लामिक पुस्तकों और कॉमैण्ट्रियों द्वारा की जाने वाली व्याख्या पूरी तरह से गलत है। मुस्लिम विद्वानों को इंजील को पढ़ने की और मसीहियों पर बेबुनियाद आरोप लगाना छोड़ने की जरूरत है।

क़ुरआन में लिखा है कि अल्लाह अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है

अब मैं आपको क़ुरआन में से कुछ दिलचस्प बातें दिखाना चाहता हूँ। सूरह मरयम (19) की आयत 89 और 91 में लिखा है कि परमेश्वर का बेटा होने का दावा करना एक अत्यन्त भारी बुराई है। लेकिन सूरह अज़-ज़ुमर (39) की आयत 4 में लिखा है कि यदि परमेश्वर चाहे तो अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है। अगर यह कहना भारी बुराई है कि परमेश्वर का बेटा हो सकता है, तो फिर खुद क़ुरआन लोगों को यह क्यों बताता है कि अल्लाह अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है?

क्या मुस्लिम विद्वान क़ुरआन में पाई जाने वाली इस समस्या को नहीं देखते? वे मसीहियों पर परमेश्वर की निन्दा करने का आरोप लगाते हैं क्योंकि वे यह मानते हैं कि परमेश्वर का बेटा हो सकता है। तो क्या फिर सूरह अज़-ज़ुमर में परमेश्वर की निन्दा नहीं की गई है क्योंकि उसमें भी तो लिखा है कि अगर अल्लाह चाहे तो वह अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है? जहाँ एक ओर क़ुरआन में सूरह अन-निसा (4) की आयत 171 में लिखा है कि परमेश्वर का बेटा हो ही नहीं सकता, वहीं दूसरी ओर सूरह अज़-ज़ुमर (39) की आयत 4 में लिखा है कि यदि परमेश्वर चाहे तो अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है। क्या आप इस बात को समझ पा रहे हैं? सूरह अज़-ज़ुमर में लिखा है कि परमेश्वर का बेटा होना असम्भव बात नहीं है।

क्या यह ढोंग नहीं है? एक ओर क़ुरआन मसीहियों से कहता है कि परमेश्वर का बेटा नहीं हो सकता, वहीं दूसरी ओर यह मुसलमानों से कहता है कि हाँ, अगर अल्लाह चाहे तो अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है। यह तो पूरी तरह गलत है कि क़ुरआन खुद इस बात की पुष्टि करता है कि परमेश्वर का बेटा होना सम्भव है, लेकिन यहूदियों और मसीहियों को यह मान्यता रखने पर गलत ठहराता है। आगे यह मुसलमानों से यह भी कहता है कि ऐसी आस्था रखने वालों की हत्या कर दो। यह पूरी तरह से गलत है।

सूरह अत-तौबा (9) की आयत 29 और 30 में लिखा है: वे किताबवाले ... हैं ... उनसे लड़ो ... यहूदी कहते हैं, "उज़ैर अल्लाह का बेटा है।" और ईसाई कहते हैं, "मसीह अल्लाह का बेटा है।"

बेबुनियाद आरोपों से बचने का एक तरीका मौजूद है

मुझे आशा है कि आपने यह देख लिया है कि क़ुरआन के पास कोई अधिकार नहीं है कि यह यहूदियों और मसीहियों पर गलत आरोप लगाए और उनकी इस मान्यता के कारण उनके खिलाफ लड़े कि परमेश्वर का बेटा होना सम्भव है। इसका पहला कारण यह है कि मसीहियों की यह मान्यता आत्मिक है और दूसरा कारण यह है कि खुद क़ुरआन में सूरह अज़-ज़ुमर में लिखा है कि परमेश्वर का बेटा हो सकता है। इसलिए मुस्लिम विद्वानों को शर्म आनी चाहिए कि वे मसीहियों और यहूदियों पर झूठा आरोप लगाते हैं और उन पर लगाए जाने वाले झूठे आरोपों को हर जगह फैलाते हैं। उन्हें यहूदियों और मसीहियों से माफी माँगनी चाहिए। परमेश्वर के पुत्र के बारे में मसीहियों की आस्था के बारे में इस्लामिक किताबों और कॉमैण्ट्रियों में पाई जाने वाली सारी व्याख्या ही गलत है। अगर मुस्लिम लेखक इंजील को खुद न पढ़ें तो वे मसीहत की सच्ची छवि कभी नहीं देख पाएँगे। उन्हें इस्लाम के पारम्परिक प्रतिबन्धों को पीछे छोड़ना चाहिए और ईसा (यीशु) मसीह को परमेश्वर का पुत्र कहे जाने के बारे में इंजील को तथा इंजील की कॉमैण्ट्रियों को पढ़ना चाहिए।

मैं जब मुसलमान था तो मैं भी ऐसा ही था। मेरे जैसे लोगों पर हमेशा सांस्कृतिक दबाव बनाया जाता था कि हम परम्पराओं का पालन करें, फिर चाहे वे सही हों या गलत। लेकिन मैं बहुत शुक्रगुज़ार हूँ कि मेरे जीवन में एक ऐसा समय आया जब मेरे मन और मेरे दिल में यह

इच्छा जागी कि मैं इस्लाम से बाहर के जीवन को परख कर देखूँ। उस समय ईसा (यीशु) ने खुद को मुझ पर प्रकट किया और मेरे नज़रिए को बदल डाला।

मसीही आस्था के विरुद्ध इस्लाम त्रिएकता की व्याख्या तीन ईश्वर के तौर पर करता है

मैं आपके सामने एक और बेबुनियाद आरोप रखना चाहता हूँ जो इस्लाम द्वारा त्रिएकता के सम्बन्ध में मसीहत पर लगाया जाता है।

क़ुरआन (सूरह अन-निसा 4:171; सूरह अल-माइदा 5:116) और इस्लामिक कॉमैण्ट्रियाँ कहती हैं कि मसीही लोग तीन ईश्वरों पर विश्वास करते हैं। यह एकदम गलत है। एक से अधिक परमेश्वर को मानने को ईसा (यीशु) मसीह की बाइबल में परमेश्वर-निन्दा कहा गया है। इंजील में अनेक बार यह लिखा है कि "परमेश्वर एक है" (मरकुस 12:32; रोमियों 3:30; 1 कुरिन्थियों 8:4; गलातियों 3:20; 1 तीमुथियुस 2:5)।

इंजील में तीन ईश्वरों के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। इस्लाम ने सच्चाई को तोड़-मरोड़ कर पेश किया है ताकि उन्हें मसीहियों पर आरोप लगाने का एक बहाना मिल सके। मसीही लोग इंजील में बताई गई त्रिएकता को कभी भी तीन ईश्वर नहीं मानते। सारी व्याख्याएँ और कॉमैण्ट्रियाँ इसे एक सच्चा परमेश्वर ही बताती हैं।

मसीही आस्था में त्रिएकता क्या है? यह पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा है। एक प्रेमी और माफी देने वाले परमेश्वर के तौर पर मसीही लोग उसे आत्मिक पिता बुलाते हैं। पृथ्वी पर अपना आत्मिक राज्य स्थापित करने वाले के तौर पर वे उसे पुत्र बुलाते हैं। और पृथ्वी पर सुरक्षा, आश्वासन और मार्गदर्शन देने वाले परमेश्वर के तौर पर उसे पवित्र आत्मा कहा जाता है। इस प्रकार त्रिएकता का अर्थ यह है कि एक ही परमेश्वर खुद को तीन तरह से प्रकट करता है।

हम मनुष्यों को भी पृथ्वी पर इसी तरह के शीर्षक दिए जाते हैं। मुझे बेटा, पति और पिता कहा जाता है। हालाँकि मैं एक ही व्यक्ति हूँ, तो भी खुद को तीन तरह से या तीन व्यक्तियों के तौर पर प्रकट करता हूँ ताकि अपने परिवार में अपने प्रेम और जिम्मेदारी को अभिव्यक्त कर सकूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं तीन अलग-अलग व्यक्ति हूँ। मैं एक ही व्यक्ति हूँ लेकिन खुद को तीन रूपों में प्रकट करता हूँ। परमेश्वर भी ऐसा ही करता है।

परमेश्वर को खुद के लिए इन तीन नामों की जरूरत नहीं है; ये सब मनुष्यजाति के लाभ के लिए दिए गए हैं। मनुष्यजाति को सच्चे प्रेम की जरूरत है, जो उसे केवल परमेश्वर में ही मिल सकता है। क्योंकि हमारे दैनिक जीवन में बच्चों के लिए उनके माता-पिता के प्यार से बढ़कर और कोई प्यार नहीं हो सकता, इसलिए परमेश्वर खुद को पिता के तौर पर प्रकट करता है, और प्रमाणित करता है कि वह हमें एक पिता के तौर पर हमारे अपने माता-पिता से भी बढ़कर प्यार करता है।

देखिए कि बाइबल में परमेश्वर ने अपने प्रेम और देखभाल का विवरण कैसे दिया है

नबी यशायाह की पुस्तक के अध्याय 66 की आयत 13 में वह कहता है: "जिस प्रकार माता अपने पुत्र को शान्ति देती है, वैसे ही मैं भी तुम्हें शान्ति दूँगा...।" फिर यशायाह की पुस्तक के अध्याय 49 की आयत 15 में परमेश्वर कहता है: "क्या यह हो सकता है कि कोई माता अपने दूध पीते बच्चे को भूल जाए और अपने जन्माए हुए लड़के पर दया न करे? हाँ, वह तो भूल सकती है, परन्तु मैं तुझे नहीं भूल सकता।" ईसा (यीशु) ने इंजील में मत्ती की पुस्तक के अध्याय 7 की आयत 11 में कहा: "अतः जब तुम बुरे होकर, अपने बच्चों को अच्छी वस्तुएँ देना जानते हो, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता अपने माँगने वालों को अच्छी वस्तुएँ क्यों न देगा?"

इसलिए परमेश्वर का प्रेम हमारे लिए एक पिता के प्रेम के समान है। वह हमसे एक पिता जैसा घनिष्ठ प्रेम करता है ताकि हमें सिखा सके कि सच्चा प्रेम, इंसाफ, पवित्रता, धार्मिकता, शान्ति और आनन्द क्या होता है। इसी कारण उसे पिता कहा जाता है।

परमेश्वर को पुत्र भी कहा जाता है

परमेश्वर का आत्मा मरियम पर उतरा और इस प्रकार आत्मा ने देहधारण करके ईसा (यीशु) के तौर पर जन्म लिया। इसका अर्थ है कि परमेश्वर ने खुद को ईसा (यीशु) के तौर पर प्रकट किया। परमेश्वर

इस योग्य है कि वह जिस भी रूप में चाहे खुद प्रकट कर सकता है। उसने खुद को मूसा के लिए आग में प्रकट किया और हमारे लिए ईसा (यीशु) में एक मनुष्य के तौर पर प्रकट किया।

परमेश्वर खुद को प्रकट क्यों करना चाहता है? वह खुद को इस्लाम के रब की तरह छिपाता क्यों नहीं है? क्योंकि वह पृथ्वी पर स्वर्ग की योजना को लागू करना चाहता है। स्वर्ग की योजना को पृथ्वी पर केवल परमेश्वर की लागू कर सकता है, क्योंकि परमेश्वर के अलावा उसकी योजना को और कोई नहीं जानता।

इसके साथ ही परमेश्वर ने मनुष्यजाति को भी एक उद्देश्य के साथ रचा है। इस उद्देश्य को मनुष्य के जीवन में लाने के लिए परमेश्वर की निरन्तर साथ रहने वाली उपस्थिति और मार्गदर्शन जरूरी है। हमारे दिलों में परमेश्वर के राज्य की स्थापना करने वाला शिल्पकार वही है। शिल्पकार दो काम करता है: पहला, वह सबकुछ कागज पर लिखता है और दूसरा, वह निर्माण-स्थल पर खुद जाकर निर्माण करता है। परमेश्वर ने भी ऐसा ही किया है। उसने अपने लिखित वचन के तौर पर बाइबल तैयार की ताकि यह बताए कि हमारे दिलों में उसके आत्मिक राज्य की स्थापना कैसे की जाएगी। तब उसने खुद को ईसा (यीशु) के तौर पर प्रकट किया और हमारे जीवन में उतर आया ताकि हमारे दिलों में अपने राज्य की स्थापना खुद करे।

अगर परमेश्वर का व्यक्तित्व हमारे अन्दर नहीं है, तो परमेश्वर के वचन हमारे किस काम आएँगे? इसी कारण इंजील यूहन्ना की पुस्तक

के अध्याय 1 की आयत 14 में कहती है: "वचन देहधारी हुआ; और अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण होकर हमारे बीच में डेरा किया, और हम ने उसकी ऐसी महिमा देखी, जैसी पिता के एकलौते की महिमा।" इसलिए परमेश्वर ने खुद को ईसा (यीशु) के तौर पर प्रकट किया और अपने इस प्रकाशन को उसने "पुत्र" नाम दिया, ताकि पृथ्वी पर अपने आत्मिक राज्य की स्थापना करे।

परमेश्वर को आत्मा भी कहा जाता है

सर्वव्यापी, सिखाने वाले और तसल्ली, सुरक्षा, आश्वासन तथा मार्गदर्शन देने वाले परमेश्वर को इंजील में पवित्र आत्मा भी कहा गया है। परमेश्वर के लिए इतना काफी नहीं है कि वह प्रेमी परमेश्वर और मनुष्यजाति का मुक्तिदाता हो। उसे हमें अपनी निरन्तर बनी रहने वाली उपस्थिति भी देनी है ताकि वह हमें स्मरण दिलाता रहे और हमारी रक्षा करता रहे और जैसे माता-पिता अपने बच्चों के लिए करते हैं, वैसे ही हमारा हाथ पकड़ कर इस संसार में हमारी यात्रा के अन्त तक हमारे संग रहे। पृथ्वी पर हमारे साथ हमेशा बने रहने वाली परमेश्वर की उपस्थिति को इंजील में पवित्र आत्मा कहा गया है। इस प्रकार त्रिएकता का अर्थ तीन ईश्वर नहीं है, बल्कि एक परमेश्वर का तीन तरह से प्रकटीकरण है। इसलिए मुस्लिम विद्वानों द्वारा मसीहियों पर लगाया जाने वाला यह आरोप भी बेबुनियाद है।

मैं अपने इस भाग का अन्त करते हुए क़ुरआन का एक और हैरानीजनक तथा अविश्वसनीय आरोप आपके सामने रखना चाहता

हूँ। क़ुरआन में सूरह अत-तौबा (9) की आयत 31 में लिखा है: "यहूदियों और ईसाइयों ने अल्लाह से हटकर अपने धर्मज्ञाताओं और संसार-त्यागी संतों और मरयम के बेटे ईसा को अपने रब बना लिए हैं...।"

ऐसी शिक्षा न तो बाइबल में दी गई है और न ही यहूदी अथवा मसीही इतिहास में दी गई है। यह पूरी तरह से बेबुनियाद आरोप है। इंजील और मसीही लोग केवल एक ही परमेश्वर पर विश्वास करते हैं। मसीहियों की आस्था पर लगाए जाने वाले सारे आरोप बेबुनियाद हैं।

चिन्तन का समय 17

1. इंजील में (लूका की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 35 में) और क़ुरआन में (सूरह मरयम की आयत 17 से 21 में) लिखा है कि परमेश्वर ने अपना आत्मा कुँवारी मरियम पर उतारा और उसने एक पवित्र बेटे को जन्म दिया। तो फिर मुस्लिम विद्वान परमेश्वर और मरियम के इस सुस्पष्ट आत्मिक सम्बन्ध को अनदेखा क्यों करते हैं और मसीहत पर यह झूठा आरोप क्यों लगाते हैं कि ईसा (यीशु) का जन्म परमेश्वर और मरियम के शारीरिक सम्बन्ध से हुआ था?
2. मुस्लिम विद्वान ईसा (यीशु) को "परमेश्वर का पुत्र" कहने की आपत्ति में कितने सच्चे हैं, क्योंकि खुद क़ुरआन में इस बात

की पुष्टि की गई है कि अगर परमेश्वर चाहे तो अपने लिए बेटा पैदा कर सकता है?

3. बाइबल के अनुसार एक से अधिक परमेश्वर को मानना परमेश्वर-निन्दा है। मसीही लोग त्रिएकता की व्याख्या तीन परमेश्वर के तौर पर कभी नहीं करते। तो फिर मुहम्मद और मुस्लिम विद्वान यह दावा क्यों करते हैं कि मसीही लोग तीन ईश्वरों को मानते हैं?
4. वह क्या है जो मुसलमानों को इस गलत जानकारी और झूठे आरोपों से बाहर निकालने में मदद कर सकता है?
5. जब डैनियल खुद एक मुस्लिम था, तो वह भी त्रिएकता और ईसा (यीशु) मसीह को पुत्र कहे जाने के सम्बन्ध में मसीहियों पर आरोप लगाता था। उसका यह नज़रिया कैसे बदला?

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियाँ अपनी ही आस्थाओं का तिरस्कार करती हैं

सैद्धान्तिक शिक्षा के आधार पर कहा जाए तो सारे संसार में केवल इस्लाम ही है जो एक राजनीतिक धर्म है। सामान्य तौर पर कहें तो राजनीति झूठ और धोखे से बची नहीं रह सकती। इस्लामिक राजनीति में झूठ और धोखे को केवल स्वीकार ही नहीं किया गया है, बल्कि वे तो इससे आगे बढ़ गए हैं और कुछ परिस्थितियों में इन्हें कानूनी तौर पर सही भी ठहरा दिया गया है।

धोखे से भरी राजनीति

सूरह आले-इमरान (3) की आयत 54 और सूरह अल-अनफ़ाल (8) की आयत 30 में लिखा है: अल्लाह सबसे अच्छी चाल चलता है। अगर अल्लाह सबसे अच्छी चाल चलता है अर्थात सबसे बढ़िया धोखेबाज़ है तो फिर तो वह हर क्षेत्र में अपने धोखे को इस्तेमाल करेगा, जिसमें राजनीति भी शामिल है। अगर अल्लाह राजनीति में धोखे का इस्तेमाल करता है, तो क्या आपको नहीं लगता कि उसके वफादार सेवक भी उसी के कदमों पर चलेंगे? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे भी उसी की राजनीति का पालन करेंगे।

इस्लाम में धोखे को कानूनी तौर पर स्वीकार किए जाने के कारण इस्लाम के उदय से लेकर अब तक मुसलमानों को बहुत नुकसान झेलना पड़ा है। धोखे ने झूठ और राजनीतिक चालबाज़ियों के लिए रास्ता खोल दिया और इस्लामिक समुदाय भी इससे बचा नहीं रहा।

क़ुरआन में यह भी लिखा है कि अल्लाह ने झूठ को भी कानूनी तौर पर स्वीकार किया है। सूरह अल-नहल (16) की आयत 106 सिखाती है कि ऐसे भी हालात आते हैं जो एक मुसलमान को झूठ बोलने के लिए "विवश" कर सकते हैं। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 225 मुसलमानों को उभारती है कि अगर हालात की माँग हो तो अल्लाह में अपने ईमान से इनकार कर दो, जब तक कि हालात सामान्य न हो जाएँ। सूरह आले-इमरान (3) की आयत 28 मुसलमानों से कहती है कि वे गैर-मुसलमानों से तभी दोस्ती करें जब उन्हें उनके विरुद्ध कुछ करने का अधिकार और ताकत मिल जाए।

आप देख सकते हैं कि इस्लाम का रब अपने अनुयायियों को उकसाता है कि वे दूसरों से झूठ बोलें और उनके साथ बेईमानी का जीवन बिताएँ।

इसके परिणाम स्वरूप इस्लामिक सम्बन्धों और कानून व्यवस्था पर झूठ हावी हो गया। हदीस के एक विख्यात लेखक बुखारी ने हदीस संख्या 857 में पुस्तक 49 के खण्ड 3 में लिखा कि इस्लाम के नबी मुहम्मद ने ऐसा कहा था: जो व्यक्ति अच्छी-अच्छी कहानियाँ बनाकर या अच्छी-अच्छी बातें बोलकर लोगों में शान्ति लाता है,

फिर चाहें वे कहानियाँ या बातें झूठी ही क्यों न हों, वह व्यक्ति झूठ नहीं बोलता।

कल्पना करें कि क्या होगा जब किसी देश या जाति का रब और नबी उन्हें झूठ बोलने की अनुमति दे देते हैं! यही कारण है कि तक़िय्या या धोखा देने के लिए झूठ बोलने की वजह से मुस्लिम देशों में किसी भी बात को लेकर गम्भीरता नहीं पाई जाती।

बाइबल के अनुसार गम्भीर और सच्चे सम्बन्ध का निर्माण केवल सच के द्वारा ही हो सकता है, झूठ के द्वारा नहीं। झूठ और धोखे को अल्लाह, मुहम्मद और मुस्लिम विद्वानों ने कानूनी तौर पर स्वीकृति दी और ये इस्लामिक आस्था और राजनीति का हिस्सा बन गए। फिर क्या हुआ? धोखे और झूठ ने इस्लामिक राजनीति में राजनीतिक चालबाज़ियों को जन्म दिया और इस्लामिक आस्था को अस्थिर कर दिया।

राजनीतिक चालबाज़ियों की वजह से खुद मुहम्मद ने इस्लाम के सिद्धान्तों को बदला

यह देखकर कि इस्लाम के नबी ने बार-बार और बिना झिझके इस्लाम के सिद्धान्तों को बदला, उसके उत्तराधिकारियों ने भी इस हद तक उसकी नकल की कि मुहम्मद की मौत के बाद खुद मुहम्मद के आदेशों और परम्पराओं को ही अनदेखा कर दिया। इस्लामिक

आस्थाओं में किए गए ये बदलाव इस्लामिक लोगों पर थोप दिए गए।

बाइबल में हर प्रकार के धोखे और झूठ की मनाही की गई है। सुलैमान के नीतिवचनों की पुस्तक के अध्याय 14 की आयत 5 और 25 में बाइबल बताती है: "सच्चा साक्षी झूठ नहीं बोलता, परन्तु झूठा साक्षी झूठी बातें उड़ाता है। ...सच्चा साक्षी बहुतों के प्राण बचाता है, परन्तु जो झूठी बातें उड़ाया करता है, उससे धोखा ही होता है।" इंजील में 2 कुरिन्थियों की पुस्तक के अध्याय 4 की आयत 2 में यह भी लिखा है: "परन्तु हम ने लज्जा के गुप्त कामों को त्याग दिया, और न चतुराई से चलते, और न परमेश्वर के वचन में मिलावट करते हैं; परन्तु सत्य को प्रगट करके, परमेश्वर के सामने हर एक मनुष्य के विवेक में अपनी भलाई बैठाते हैं।" बाइबल धोखे और झूठ का स्पष्ट शब्दों में खण्डन करती है। लेकिन क़ुरआन इन्हें इस्लामिक आस्था का एक महत्त्वपूर्ण भाग बताता है, जिससे राजनीतिक चालबाज़ियों और अव्यवस्था को रास्ता मिलता है।

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियों का पहला उदाहरण उस दिशा में परिवर्तन है, जिसकी ओर मुख करके मुसलमान दुआ माँगते हैं

लगभग पन्द्रह वर्षों तक मुहम्मद की दुआ माँगने अर्थात क़िबला की दिशा यरूशलेम थी और वह तथा उसके अनुयायी इसी नगर की ओर मुख करके दिन में पाँच बार दुआ माँगते थे। यह वह समय था जब

वह अभी भी उम्मीद कर रहा था कि यहूदी इस्लाम की ओर खिंचे चले आएँगे और उसे अपना नबी कबूल कर लेंगे। लेकिन उन्होंने उसे ठुकरा दिया क्योंकि नबी केवल इसहाक के वंश में से ही आ सकते थे। इस कारण मुहम्मद यहूदियों से नफरत करने लगा और अब यहूदी नगर यरूशलेम की ओर मुख करके दुआ नहीं माँगना चाहता था। इस तरह उसने एकमात्र परमेश्वर के पवित्र स्थान की दिशा में दुआ माँगना छोड़ दिया और क़ाबा की ओर मुख करके दुआ माँगना आरम्भ किया, जहाँ बहुदेववादी अभी भी सैकड़ों मूर्तियों की पूजा किया करते थे। सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 142 और 145 हमें बताती हैं कि अल्लाह ने मुहम्मद की खुशी के लिए क़िबला को फेर दिया। इसके परिणाम स्वरूप इस्लाम की एक महत्त्वपूर्ण आस्था राजनीतिक चालबाज़ियों की बलि चढ़ गई।

इस्लाम में क़िबला को बदला जाना इस्लामिक सैद्धान्तिक शिक्षा में पाई जाने वाली अस्थिरता का प्रतीक है। सच्चा परमेश्वर अपने नबी से कभी नहीं कहेगा कि वह एकमात्र परमेश्वर के पवित्र स्थान से अपना मुख फेरकर मूर्तियों से भरे मन्दिर की ओर कर ले।

दूसरी समस्या का जिक्र सूरह अल-बक़रा (2) में किया गया है कि अल्लाह ने मुहम्मद की खुशी के लिए क़िबला को फेर दिया। जबकि सच्ची आस्था के अनुसार एक नबी और प्रजा को पापरहित परमेश्वर को खुश करना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर पापी मनुष्यों की खुशी के लिए कुछ नहीं करता। क़ुरआन में लिखी यह बात पूरी तरह से तर्कहीन है।

मुहम्मद ने जो किया वह एक राजनीतिक चाल थी। क्योंकि वह इस उम्मीद को खो चुका था कि यहूदी अब मुसलमान बनेंगे, इसलिए उसने बहुदेववादियों की ओर अपना ध्यान लगाया और उनका ध्यान इस्लाम की ओर खींचने लगा। इस कारण उसने यरूशलेम को छोड़ दिया और अपने लिए तथा सारे मुसलमानों के लिए क़िबला की दिशा के तौर पर क़ाबा को चुन लिया।

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियों का दूसरा उदाहरण शान्ति के द्वारा घुसना और फिर बल के द्वारा शासन करना है

मुहम्मद ने अपने पहले 13 वर्षों के प्रचार में कहा: "धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं", जिसे अब क़ुरआन में सूरह अल-बक़रा (2) की आयत 256 में देखा जा सकता है। उस समय उसके अनुयायियों की संख्या केवल 150 थी। अपने जीवन के अन्तिम 10 वर्षों के दौरान जब उसके अनुयायियों की संख्या बहुत हो चुकी थी, तब मुहम्मद खुद को सर्वोच्च राजनीतिक और धार्मिक अगुवे की पदवी पर ले आया और इस तरह उसने अरब प्रायद्वीप के सभी लोगों को जबरन अपना अनुयायी बना लिया। तब क़ुरआन की भाषा में बदलाव आने लगा और जहाँ यह पहले कहता था कि "धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं," वहीं अब यह कहने लगा, "इस्लाम के अतिरिक्त कोई और दीन (धर्म) स्वीकार न किया जाएगा," जिसे हम सूरह आले-इमरान (3) की आयत 85 में पढ़ सकते हैं।

इस राजनीतिक चालबाज़ी को मुहम्मद के बाद अनेक मुस्लिम नेताओं ने एक मानक के तौर पर अपना लिया, जिसने भरोसे और घनिष्ठता के लिए ज़हर का काम किया है। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ेंगे, आप मनुष्य के जीवन के हर एक पहलू पर इसके नकारात्मक प्रभाव को देखेंगे।

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियों का तीसरा उदाहरण ताकत हासिल करने के लिए गुमराह करना है

मुहम्मद द्वारा लोगों के साथ किए जाने वाले बर्ताव में आने वाले निरन्तर परिवर्तन ने उसके उत्तराधिकारियों को यह सन्देश दिया कि एक मुस्लिम नेता के पास अपनी मन-मर्जी से कुछ भी करने का अधिकार है। मुहम्मद के बाद आने वाले मुस्लिम नेताओं, अबु बक्र, ओमार, ओतमन और अली ने मुहम्मद से राजनीतिक अस्थिरता प्राप्त की और उससे सीखा कि अपनी सुविधा के आधार पर वे इस्लाम में जितने चाहे बदलाव कर सकते हैं।

उसके दामाद अली ने एकमात्र कानूनी नेता होने का दावा किया, लेकिन उसके ससुर और साले ने वरिष्ठता के आधार पर अगुवाई सौंपे जाने को पहल दी। उनमें पैदा हुए इस तनाव से सुन्नी और शिया समुदायों का उदय हुआ, जिसके कारण अनगिनत हत्याएँ की गईं।

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियों का चौथा उदाहरण क़ाबा के स्थान को बदल दिया जाना है

क्या आप जानते हैं कि इस्लाम में पाई जाने वाली राजनीतिक चालबाज़ियों और तनाव के कारण क़ाबा को उसके मूल स्थान जॉरडन के पेट्रा से हटाकर साऊदी अरब के मक्का में ले आया गया और आज भी यह मक्का में ही है? यह 64 हिजरी वर्ष में अथवा 683 ईसवी में हुआ था। मुहम्मद, अबु बकर, ओमार, ओतमन और अली पेट्रा में मौजूद क़ाबा में हज के लिए गए थे। इन सभी का जन्म और पालन-पोषण पेट्रा में ही हुआ था। वे उमरा के लिए मौजूदा मक्का में कभी गए ही नहीं थे। सारे कुरैशी और हेशमी लोग पेट्रा में ही रहते थे। मुहम्मद खुद एक हेशमी था। पेट्रा में ही उसने खुद को एक नबी घोषित किया था। पेट्रा में पाए जाने वाला क़ाबा याजिद इब्न मुआविया के समय में बर्बाद हो गया था और फिर साऊदी अरब में नए क़ाबा का निर्माण किया गया था।

जॉरडन के लोग अभी भी यह दावा करते हैं कि असली हेशमी लोग केवल वही हैं। जॉरडन साम्राज्य ने जॉरडन और साऊदी अरब की सीमा पर एक बहुत बड़ा झण्डा लगाया हुआ है। उस झण्डे पर एक ही शब्द लिखा है, हेशमी, जिसका अर्थ यह है कि असली हेशमी लोग जॉरडन के वासी हैं, साऊदी अरब के लोग नहीं।

पहले मैं आपको क़ुरआन से कुछ आयतें बताना चाहता हूँ और फिर गैर-इस्लामिक और इस्लामिक ऐतिहासिक पुस्तकों में से हवाला देना

चाहता हूँ कि मौजूदा मक्का को मुहम्मद का मक्का क्यों नहीं कहा जा सकता। फिर मैं आपको बताऊँगा कि जॉरडन के क़ाबा को बन्द क्यों कर दिया गया था और नए क़ाबा को साऊदी अरब में क्यों बनाया गया था।

मौजूदा मक्का का विवरण उस मक्का से मेल नहीं खाता है जिसका उल्लेख क़ुरआन में किया गया है

क़ुरआन में क़ाबा के बारे में दी गई आयतों में पाया जाने वाला विवरण मौजूदा मक्का की बजाय पेट्रा से मेल खाता है। सूरह आले-इमरान (3) की आयत 96 और 97 में लिखा है कि इब्राहीम ने जो इबादत का घर बनाया था वह मक्का में है। सूरह अल-फ़तह (48) की आयत 24 में इस्लाम के लश्कर की बात हुई है जिसने मक्का की वादी में पाए जाने वाले क़ाबा पर कब्जा कर लिया था। पेट्रा में पाया जाने वाला क़ाबा एक वादी में है, जबकि मौजूदा क़ाबा में या उसके आस-पास कोई वादी नहीं है।

साथ ही, *मौजूदा मक्का ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ मेल नहीं खाता*

आप जानते ही होंगे कि इस्लाम से पहले वहाँ बसने वाले बहुदेववादी भी हज किया करते थे। क़ाबा के बारे में लिखे गए आरम्भिक लेख बताते हैं कि इसे एक वादी में बनाया गया था। इतिहासकारों और पुरातत्व वैज्ञानिकों ने मुहम्मद के समय से पहले और उसके समय के साऊदी अरब में ऐसे अनेक नगरों का उल्लेख किया है जिनमें बहुदेववादी पूजा-स्थल पाए जाते थे, लेकिन उन्होंने साऊदी अरब के

दक्षिणी भाग में मक्का नाम के किसी भी नगर का उल्लेख नहीं किया है। ऐसा कैसे हो सकता है कि एक महत्त्वपूर्ण कारोबारी मार्ग पर स्थित एक अति महत्त्वपूर्ण और विशाल धार्मिक नगर इतिहासकारों और पुरातत्व वैज्ञानिकों की आँखों से छिपा रह गया? उन्होंने इस बारे में इसलिए नहीं लिखा क्योंकि यह साऊदी अरब में था ही नहीं। यह तो जॉरडन में था। सारे ऐतिहासिक प्रमाण बताते हैं कि इस्लाम से पहले किए जाने वाले सारे हज पेट्रा में किए जाते थे, जहाँ पर काला पत्थर अर्थात हजर-अल अस्वद और क़ाबा अर्थात बैतुल-हरम पाया जाता था।

इस काले पत्थर के कारण पेट्रा में बहुत सारे तीर्थ यात्री आया करते थे। मुहम्मद से 400 वर्ष पहले यूनानी दर्शनशास्त्री मैक्सिमस ऑफ टायरे ने कहा था कि यह काला पत्थर पेट्रा में था। यूनानी विश्वकोश सूदा (सौदा) में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि यह काला पत्थर पेट्रा में था।

विख्यात पुरातन इस्लामिक इतिहासकार तबरी ने भी अपनी इतिहास की पुस्तक के पन्ना 192-198 पर लिखा है कि इब्राहीम और इश्माएल ने मिलकर क़ाबा का निर्माण एक वादी में करवाया था। पन्ना 712 और 713 पर तबरी फिर से मुहम्मद के बचपन के बारे में लिखता है कि वह पवित्र नगर में एक वादी में लड़कों के साथ खेला करता था। क़ाबा के साथ ही एक छोटी सी सरिता भी पाई जाती थी।

पुरातन लेखों में क़ाबा के समीप खेतों, फल के बगीचों और अंगूरों के बागों का जिक्र हुआ है, लेकिन मौजूदा मक्का की मरुभूमि के आस-पास उपजाऊ भूमि की कल्पना करना भी मुश्किल है। मौजूदा क़ाबा के पास न तो कोई वादी है, न सरिता, न खेत और न ही फलों के बगीचे।

इतिहास हमें आगे जानकारी देते हुए बताता है कि यह पवित्र नगरी चारों ओर से दीवारों और पहाड़ों से घिरी हुई थी। नगर में प्रवेश करने के लिए पहाड़ों की चट्टानों में बने दो दर्रे अर्थात थनिया ही थे। मुहम्मद ने इन्हीं चट्टानों में से होते हुए इस नगर में प्रवेश किया था।

मौजूदा मक्का नगर में न तो पुरातन दीवारों का कोई चिह्न है, न ही इसके चारों ओर पहाड़ और चट्टानें हैं। इसमें प्रवेश करने के लिए चट्टानों के दर्रे में से होकर नहीं जाना पड़ता। लेकिन यह सारा विवरण मौजूदा जॉरडन में पाए जाने वाले पेट्रा नामक स्थान से मेल खाता है।

साफा और मारवाह नामक दो पहाड़ इस्लामिक हज के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पुरातन ऐतिहासिक लेखों में पेट्रा में दो बड़े पहाड़ पाए जाते थे जिनके शिखर पर मूर्तियाँ और उनके पूजा-स्थल थे। इन मूर्तियों की पूजा करने के लिए लोग कई सीढ़ियाँ चढ़कर पहाड़ के शिखर पर जाते थे। मौजूदा मक्का में दो मानव-निर्मित टीले हैं जिन्हें साफा और मारवाह नाम दे दिया गया है और वे भी एक मस्जिद के अन्दर हैं।

हीरा नामक पहाड़ में एक गुफा हुआ करती थी जिसमें बैठकर मुहम्मद खुद को एक मुस्लिम नबी घोषित करने से पहले एक बहुदेववादी के तौर पर उपवास और प्रार्थना में बहुत समय बिताया करता था। इस्लामिक साहित्य में हीरा नामक पहाड़ का मुख नगर की ओर था और यह मक्का के ऊपरी हिस्से में स्थित था। लेकिन आज का हीरा नामक पहाड़ क़ाबा से बहुत दूर है और उसका मुख नगर की ओर भी नहीं है।

पेट्रा, मदीना के उत्तर में है और मक्का, मदीना के दक्षिण में है। लेकिन ऐतिहासिक पुस्तकें हमें बताती हैं कि कुरैशी लश्कर मदीना पर हमेशा उत्तर की ओर से हमला करता था। साथ ही, खाई के युद्ध के दौरान मदीना, नगर के उत्तर की ओर दो पहाड़ों के बीच स्थित एक खाई के कारण सुरक्षित रहा था।

मुस्लिम लश्कर जब भी मदीना से निकल कर मक्का पर हमला करने जाते थे, तो हमेशा मदीना से निकल कर पेट्रा की ओर बढ़ने के लिए उत्तर की ओर आगे बढ़ते थे, दक्षिण की ओर नहीं जहाँ मौजूदा मक्का स्थित है। कहने का भाव यह है कि असली पवित्र नगरी अर्थात मक्का, मदीना के उत्तर में था, दक्षिण में नहीं।

आरम्भिक मस्जिदों का मुख भी पेट्रा की तरफ ही होता था

इस्लामिक परम्परा के अनुसार सारी मस्जिदों का मुख क़ाबा की ओर होना चाहिए। मुहम्मद के समय से लेकर 107 हिजरी वर्ष अर्थात

725 ईसवी तक बनी सारी मस्जिदों के मुख पेट्रा की ओर थे। अगले एक सौ वर्षों के दौरान बनी मस्जिदों के मुख भिन्न-भिन्न दिशाओं में होने लगे क्योंकि इन दो क़ाबा को लेकर मुस्लिम समुदायों में तनाव बढ़ने लगा। 133 हिजरी वर्ष अर्थात 750 ईसवी में इराक की अब्बासी सरकार ने सीरिया पर कब्जा कर लिया और बगदाद को इस्लामिक शासन का केन्द्र बना दिया। उस समय से लेकर मध्य-पूर्व में बनने वाली मस्जिदों ने साऊदी अरब के इस नए क़ाबा की ओर मुख करके नमाज पढ़नी आरम्भ कर दी।

पेट्रा से मक्का की ओर यह बदलाव कैसे हुआ?

मुहम्मद की मौत के तीन दशकों के बाद 64 हिजरी वर्ष अर्थात 683 ईसवी में पेट्रा के राज्यपाल अब्दुल्लाह इब्न अल-जुबैर ने सीरिया के दमिश्क में उमय्यद राजवंश के खलीफा यज़ीद के खिलाफ विद्रोह कर दिया और खुद को खलीफा घोषित कर दिया। तबरी हमें बताता है कि अब्दुल्लाह ने क़ाबा को पूरी तरह से ढाह कर दिया, वहाँ से काले पत्थर को लेकर मौजूदा मक्का में एक दूरवर्ती स्थान पर ले गया। उसने ऐसा इसलिए किया ताकि उमय्यद राजवंश की ओर से आने वाले जवाबी हमले से बच सके और साथ ही एक नए क़ाबा का निर्माण कर सके और वहाँ पर काले पत्थर को रख सके, ताकि तीर्थ यात्री अब इस नए क़ाबा में आया करें। वह जानता था कि मुसलमानों का दिल वहीं लगेगा जहाँ वह काला पत्थर होगा।

इस दौरान एक के बाद एक तीन उमय्यद शासकों की मौत हो गई, जिसके कारण अब्दुल्लाह से काला पत्थर वापिस पेट्रा लाने के लिए युद्ध को लेकर उमय्यद सरकार में भीतरी समस्याएँ आने लगीं। उमय्यद सरकार की कमज़ोरी के कारण नया क़ाबा, नया तीर्थ स्थल और मुसलमानों की नमाज के लिए एक नई दिशा को स्थापित करने के लिए अब्दुल्लाह के प्रयासों को सफलता मिल गई।

68 हिजरी वर्ष अर्थात 687 ईसवी में भिन्न-भिन्न दिशाओं में बने भिन्न-भिन्न तीर्थ स्थल थे। कुछ लोग इस उम्मीद के साथ अभी भी पेट्रा जाते थे कि काला पत्थर वहाँ लौट आएगा। कुछ लोग मौजूदा मक्का में जाने लगे, क्योंकि काला पत्थर अब वहाँ पर था। 71 हिजरी वर्ष अर्थात 689 ईसवी में इराक के कुफा नगर ने उमय्यदों के खिलाफ विद्रोह कर दिया और नए क़ाबा के प्रचार के लिए अब्दुल्लाह के साथ जुड़ गए। 94 हिजरी वर्ष अर्थात 713 ईसवी में एक भयंकर भूकम्प ने पेट्रा के अधिकांश भाग को नष्ट कर दिया और नगर को खाली छोड़ दिया गया। अनेक लोगों ने यह बात फैला दी कि अल्लाह ने पेट्रा को त्याग दिया है और नए क़ाबा को स्वीकार कर लिया है। फिर 128 हिजरी वर्ष अर्थात 745 ईसवी में एक अन्य भूकम्प ने सीरिया और जॉरडन की अनेक इमारतों को ढाह दिया। जिसके परिणामस्वरूप काला पत्थर के पेट्रा लौटने की सारी उम्मीदें समाप्त हो गईं। 133 हिजरी वर्ष अर्थात 750 ईसवी में इराक के अब्बासियों ने सीरिया के उमय्यदों को पराजित कर दिया और मध्य-पूर्व के अधिकतर मुसलमानों ने साऊदी अरब में नए क़ाबा की ओर मुख करके नमाज पढ़ना आरम्भ कर दिया।

नए क़ाबा और नए मक्का के विरोधी अभी भी मौजूद थे

अब्बासियों के खिलाफ विद्रोह करने वाले करमातियों ने बहरीन पर कब्जा करके नए क़ाबा को तीर्थ स्थल मानने की सख्त मनाही कर दी और वहाँ तीर्थ यात्रा के लिए जा रहे अनेक मुसलमानों की हत्या कर दी। 930 ईसवी में उन्होंने मौजूदा मक्का पर हमला किया और वहाँ से काला पत्थर निकाल लिया। उन्होंने इस काले पत्थर को 21 वर्षों तक अपने पास रखा और इसे अब्बासियों को नहीं लौटाया। काले पत्थर को वहाँ से हटा दिए जाने का तीर्थ यात्रा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। आखिरकार इराक के अब्बासियों ने काला पत्थर वापिस पाने के लिए करमातियों को बहुत सारा धन दिया। अब तक यह काला पत्थर साबुत नहीं बचा था बल्कि करमातियों ने इसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे।

क्या आप देख पा रहे हैं कि कैसे राजनीतिक चालबाज़ियों और तनावों ने इस्लाम के सर्वाधिक पवित्र केन्द्र को भी पेट्रा से बदलकर मौजूदा मक्का कर दिया है? क्या आप देख पा रहे हैं कि इस्लाम की अपनी कोई मजबूत नींव नहीं है और हर एक नेता वही करता है जो उसे अच्छा लगता है? इस तरह की अस्थिर राजनीति आपके लिए लाभकारी कैसे हो सकती है? यह लाभकारी नहीं हो सकती।

मैं आपको इस्लाम की एक और राजनीतिक चालबाज़ी बताकर समाप्त करूँगा।

इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियों का पाँचवाँ उदाहरण यह है कि इस्राएल देश यहूदियों का नहीं बल्कि फिलिस्तीनियों का है

सूरह अल-माइदा (5) की आयत 21 और 22 में लिखा है कि अल्लाह ने इस्राएल की भूमि यहूदियों को दी है और हमेशा के लिए दी है, लेकिन यह फिलिस्तीनियों को या किसी अन्य समूह को नहीं दी गई है। सूरह अल-इसरा (17) की आयत 104 इस्राएल की सन्तान से कहती है कि वे पवित्र देश में बसें और प्रतिज्ञा पूरा होने का समय आएगा, तो परमेश्वर सब देशों में फैले हुए यहूदियों को इस्राएल में लौटा ले आएगा।

क़ुरआन की शिक्षा के खिलाफ आपको सिखाया गया है कि इस्राएल देश को यहूदियों ने अपने कब्जे में किया हुआ है। कुछ इस्लामिक सरकारें और नेता हर साल फिलिस्तीनियों, हिज़बुल्ला और अन्य समूहों को लाखों डॉलर भेजते हैं ताकि वे यहूदियों को इस्राएल देश से बाहर निकाल दें, उस देश में से जिसके बारे में क़ुरआन में लिखा है कि परमेश्वर ने वह देश हमेशा के लिए यहूदियों को दिया हुआ है।

क्या यह बात सुनकर दुख नहीं होता कि इतना सारा पैसा एक झूठ पर बर्बाद किया जा रहा है, जबकि यही पैसा इस्लामिक देशों में करोड़ों जरूरतमन्दों के लिए खर्च किया जा सकता था? क्या यह बात सुनकर दुख नहीं होता कि झूठ और राजनीतिक चालबाज़ियों के कारण अनेक नौजवानों को यहूदियों के खिलाफ आतंकवाद में धकेला जा

रहा है? मुस्लिम अगुवे अपने झूठों और राजनीतिक चालबाज़ियों के द्वारा मुसलमानों को अन्धेरे में रखते आ रहे हैं। इसके कारण मुस्लिम देशों को बहुत नुकसान हुआ है। केवल जागृति प्राप्त करने के द्वारा ही आप इस धोखे, झूठ और राजनीतिक चालबाज़ियों पर विजयी हो पाएँगे। केवल ईसा (यीशु) मसीह के द्वारा ही आप इन राजनीतिक चालबाज़ियों पर विजयी हो पाएँगे।

चिन्तन का समय 18

1. यह मान्यता कि अल्लाह सबसे अच्छी चाल चलता है, उसके धर्म और उसके अनुयायियों के जीवन को कैसे प्रभावित करती है?
2. कुछ परिस्थितियों में इस्लाम में झूठ और धोखे की अनुमति दी गई है; इसे तक़िय्या या धोखा देने के लिए झूठ बोलना कहा जाता है। क्या इसका अर्थ है कि अल्लाह और उसका धर्म लोगों को झूठ बोलना और धोखा देना सिखाता है?
3. झूठ और धोखे ने इस्लाम में राजनीतिक चालबाज़ियों के लिए रास्ता खोल दिया। एक उदाहरण दें कि कैसे इन राजनीतिक चालबाज़ियों ने मुसलमानों में गम्भीर और शान्तिमय सम्बन्धों के लिए रास्ता बन्द कर दिया?
4. कुछ उदाहरण दें कि कैसे झूठ और धोखे को कानूनी रूप देने से इस्लाम की अपनी सैद्धान्तिक शिक्षा में बार-बार बदलाव किए जाने का खतरा पैदा हो गया?

5. क्या लोगों को अपना जीवन ऐसी आस्था पर आधारित करने की जरूरत है जो हर तरह के धोखे और झूठ की मनाही करता है और लोगों को अच्छे नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा देता है? क्यों?
6. अगर मुसलमान अच्छे नैतिक सिद्धान्तों से अनजान रहेंगे तो क्या होगा?
7. क्या यह हमारी जिम्मेदारी नहीं है कि हम मुसलमानों में अच्छे नैतिक सिद्धान्तों के बारे में जागृति लेकर आएँ?

धोखे, झूठ और राजनीतिक चालबाज़ियों से आज़ाद होने का सुख

इससे सचमुच दुख होता है कि कोई आपको धोखा दे या आपसे सच्चाई छिपाए। जैसे दूसरों के झूठ और धोखे से आपको दुख होता है, वैसे ही आपके झूठ और धोखे से दूसरों को दुख होता है। झूठ और धोखे से सभी को दुख होता है। इसका समाधान यही है कि दूसरों से यह उम्मीद करने से पहले कि वे ऐसी बातों से दूर रहें, आपको खुद इन बातों से दूर रहना होगा।

जब आप हर तरह के झूठ, धोखे और राजनीतिक चालबाज़ियों से आज़ाद हो जाएँगे और अपने जीवन को सच्चाई और ईमानदारी पर स्थापित कर लेंगे, तो इससे आपको और आपके परिवार को सुख मिलेगा। इससे सभी लोगों को सुरक्षा का एहसास होगा। इसके लिए आपको ऐसी आस्था का अनुकरण करना होगा जो झूठ, धोखे और छल की मनाही करने के साथ-साथ आपको ज्ञान देकर आपके दिलों में से इन सब बुरी बातों की जड़ों को काट डालती है और आपको आज़ाद कर देती है।

पिछले भाग में मैंने आपसे बात की थी कि कैसे कपट, झूठ, धोखा और राजनीतिक चालबाज़ियाँ इस्लाम में जड़ पकड़े हुए हैं और कैसे इस्लाम के उदय से ही ये इस्लामिक देशों को भारी नुकसान पहुँचाते आ रहे हैं।

खुद को राजनीतिक चालबाज़ियों से बचाने का तरीका

आप खुद को उन अनैतिक बातों से कैसे बचा सकते हैं, जो इस्लामिक राजनीति का हिस्सा हैं? आप उनसे नहीं बच सकते क्योंकि इस्लाम उन्हें जीवन के हर के क्षेत्र में घुसने की अनुमति देता है। क़ुरआन कहता है कि अल्लाह की चाल (धोखेबाज़ी) सबसे उत्तम होती है। इससे मुसलमानों को अपने धोखे और झूठ को सही ठहराने का मौका मिल जाता है और वे सोचते हैं कि अगर अल्लाह खुद ही ऐसी बातों का इस्तेमाल करता है, तो फिर उनके लिए भी इनका इस्तेमाल करना सही है।

क्या आपने कभी यह सोचा है कि झूठ, धोखा, छल और अन्य कोई भी अनैतिक चालबाज़ी आपके समाज और आपके परिवार में शान्ति और तसल्ली लाने में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं? आप चाहे किसी को भी धोखा दें, ऐसा करके आप उस व्यक्ति को आपके जैसे मकसदों को पूरा करने के लिए दूसरों को धोखा देने के लिए उकसा देते हैं। ऐसा होने पर आप दोनों ही एक दूसरे का भरोसा खो देंगे। और यह तो स्पष्ट ही है कि जहाँ भरोसा नहीं होता, वहाँ शान्ति भी नहीं होती। क्योंकि धोखे और झूठ ने भरोसे को खत्म कर दिया है, इसलिए बहुत सारे परिवारों में से शान्ति, तसल्ली और सच्चा प्यार भी खत्म हो गया है। ऐसे परिवारों के सदस्य सीख जाते हैं कि दूसरों को धोखा कैसे देना है और खुद धोखे में कैसे जीना है। पति और पत्नी, माता-पिता और बच्चे सीख चुके हैं कि कैसे एक दूसरे के साथ

चतुराई से झूठ बोलना है और कैसे एक दूसरे को धोखा देना है। यह बहुत दुख की बात है। है न?

जब मैं अपने देश में एक विश्वविद्यालय में स्नातक की डिग्री की पढ़ाई कर रहा था, तो लॉ के एक प्रोफेसर ने जो बात कही थी, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। वह एक आलोचक था और उसने कहा, "मुझे यह सोचकर हैरानी होती है कि जब सब लोग रिश्वत लेते और देते हैं, तो फिर इसे कानूनी तौर पर सही क्यों नहीं ठहरा दिया जाता।" उसने यह भी कहा, "हम हर एक दिन पालन किए जाने वाले अपने नैतिक तौर-तरीकों के बारे में खुल कर सामने क्यों नहीं आते और खुल कर दूसरों को यह क्यों नहीं बता देते कि झूठ और धोखे के बिना हमारे जीवन का एक भी दिन आगे नहीं बढ़ता।"

इस्लामिक देशों की वास्तविकता यही है। इन सभी देशों में इस्लामिक अनैतिक परम्पराओं के कारण सामान्य जीवन बहुत अधिक प्रभावित होता है और लोग अपने सम्बन्धों में झूठ और धोखे का उपयोग करने से ज़रा भी नहीं झिझकते। किसी ने ठीक ही कहा है: "पहले हम एक दूसरे को भाई कहते हैं और फिर एक दूसरे को धोखा देते हैं।"

अन्धकार भरे सिद्धान्तों को पराजित करने और उनसे आज़ाद होने के लिए जरूरी साहस

मैं उन पुरुषों और स्त्रियों के साहस का सचमुच सम्मान करता हूँ जो अपने समाज और संस्कृति की कुरीतियों को देखते हैं, उन्हें उजागर करने की हिम्मत करते हैं और फिर इन ज़ंजीरों को तोड़ने के लिए मदद माँगते हैं। ऐसे लोग प्रायः इस्लाम को छोड़ देते हैं और अपने लिए एक बेहतर मार्ग को चुनते हैं।

क्या आपको इस बात से खुशी नहीं होगी कि आपको ऐसे दुखदायी जीवन से छुटकारा मिले और आप उस दीपक के समान उजाले में जीएँ जो पहाड़ी पर चमकता है, जिसके प्रकाश से सब लोग लाभ उठा सकते हैं? इससे सभी को—आपको, आपके परिवार को और अन्य लोगों को—खुशी होगी। साथ ही, झूठ और धोखे को फैलाने वाले अन्धेरे का आदर्श बनने की बजाय आपके लिए यह अत्यधिक सुखदायी और शान्तिदायक अनुभव होगा कि आप अपने परिवार के लिए रोशनी का एक आदर्श बनें। वह पल आपके लिए एक अद्‌भुत पल बन जाएगा, जब आपका जीवन बदलेगा और तब आप यह कह पाएँगे, "वाह, अब मैं आज़ाद हूँ। अब मेरी हाँ सच्ची हाँ है और मेरी न सच्ची न है। अब मुझे अपने शब्दों में हेर-फेर करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मेरा आदर्श अन्धेरा नहीं, बल्कि उजाला है।" सच्ची आस्था आपके लिए यही करती है। यह आपको धोखा देना और झूठ बोलना नहीं सिखाती और आपके दिल में से इनकी जड़ों को भी काट डालती है तथा आपको एक स्वर्गिक प्राणी, स्वर्गिक राजकुमार

और राजकुमारी बना देती है। हाँ, एक स्वर्गिक प्राणी। आप सच्चे परमेश्वर के साथ चलने के काबिल हो जाएँगे, मनुष्यों के बीच में उसके उजाले के रूप में चमकेंगे और उनके लिए प्रकाश बन जाएँगे।

कपट, झूठ, धोखे और राजनीतिक चालबाज़ियों से आज़ादी पाने के लिए इस्लाम खुद सबसे बड़ी बाधा है

मैं 100% पक्के तौर पर कह सकता हूँ कि परमेश्वर के साथ आपके जीवन में इस्लाम सबसे बड़ी बाधा है। इसीलिए मैंने इस्लाम छोड़ दिया और मैं ईसा (यीशु) मसीह का अनुयायी बन गया। मैं अपने परिवार में और दूसरों के साथ अपने सम्बन्ध में शान्ति चाहता था, लेकिन इस्लाम और इसका तक़िय्या अर्थात धोखा देने के लिए झूठ बोलना इसमें बहुत बड़ी बाधा बन रहा था। फिर मेरे जीवन में एक ऐसा समय आया जब मैंने ठान लिया कि अब मैं इस्लाम का पालन नहीं करूँगा। मैंने अपनी पत्नी, अपने परिवार, अपने मित्रों या किसी को भी इस बारे में बताने की हिम्मत नहीं की क्योंकि मैं इस्लामिक सज़ा से डरता था। इस्लाम आपके साथ ज़ंजीरों में जकड़े गुलामों जैसा व्यवहार करता है। इस्लाम आज़ादी को नहीं मानता और न ही आपको इस्लाम को त्यागने की अनुमति देता है। आपके पास केवल दो ही विकल्प होते हैं, सच बोलो और मर जाओ या झूठ बोलो और जीवित रहो। क्योंकि झूठ बोलकर जीवित रहना अधिक लोकप्रिय है, इसलिए आप भी अधिकतर अगुवों और लोगों की तरह बन जाते

हैं तथा झूठ बोलकर जीवित रहते हैं। लेकिन उस समय खुशकिस्मती ने मेरे दरवाज़े पर दस्तक दी जब मैंने पहचान लिया कि मुझे इस्लाम की ज़ंजीरों से आज़ादी पाने की जरूरत है, जिसने मेरे अन्दर से शान्ति और तसल्ली को खत्म कर दिया था। मैं अन्दर ही अन्दर शान्ति और तसल्ली का प्यासा था। इसलिए मुझ में उठ रही प्यास ने शान्ति और तसल्ली पाने के लिए मेरे दिल में आ रहे इस्लामिक दबावों को पराजित कर दिया।

अगर आप चाहें तो आज़ाद हो सकते हैं

आप जानते हैं कि अगर आपके पास सारा संसार है, लेकिन आपके दिल में शान्ति और तसल्ली नहीं है, तो आपको महसूस होता है कि आपके पास कुछ भी नहीं है। तब आप कुछ कर गुज़रने के लिए कदम उठाते हैं और अपने जीवन में शान्ति ले आते हैं। हमारे यहाँ ईरानी भाषा में एक कहावत इस प्रकार कहती है: "अगर आप चाहें तो आप कर सकते हैं।" कहने का भाव यह है कि अगर आप कुछ चाहते हैं और उस दिशा में कदम उठाते हैं, तो आप उसे हासिल कर सकते हैं। मैंने शान्ति और तसल्ली की ओर कदम बढ़ाया, लेकिन वास्तव में वे खुद मेरी ओर दौड़े चले आए। अगर आप अपने अस्त-व्यस्त जीवन में से बाहर निकलें और शान्ति की ओर कदम उठाएँ, तो शान्ति का राजकुमार ईसा (यीशु) खुद आपकी ओर सैकड़ों कदम बढ़ाएगा। मेरे साथ ऐसा ही हुआ। मुझे ईसा (यीशु) मसीह का अनुकरण करने की आवश्यकता थी और उसकी इंजील मेरे जीवन का प्रकाश बन गई। इंजील में 1 यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 2 की

आयत 21 में लिखा है कि कोई झूठ, सत्य की ओर से नहीं। जब मैंने यह पढ़ा तो तुरन्त जान लिया कि इस्लाम सत्य की ओर से हो ही नहीं सकता, क्योंकि इसमें तो झूठ और धोखे को कानूनी तौर पर सही ठहराया गया है। यह सत्य की ओर से नहीं है और इसी कारण यह शान्तिमय सम्बन्धों का शत्रु है।

नबी सुलैमान ने अपनी पुस्तक नीतिवचन के अध्याय 12 की आयत 22 में कहा: झूठों से यहोवा को घृणा आती है, परन्तु जो विश्वास से काम करते हैं, उनसे वह प्रसन्न होता है। सच्चा परमेश्वर छल, झूठ और राजनीतिक चालबाज़ियों से नफरत करता है। क्यों? क्योंकि ये आप में और परमेश्वर में तथा आप में और दूसरों में शान्ति और तसल्ली को नाश कर देते हैं।

क्या आप चाहते हैं कि परमेश्वर आपसे खुश हो और आपसे प्रसन्न हो?

मैं केवल अपने दिल में, अपने परिवार में और दूसरों के साथ अपने सम्बन्ध में शान्ति ही नहीं चाहता था, बल्कि मैं परमेश्वर के साथ भी मेल रखना चाहता था। तब वह मुझ से खुश हो सकता था और नबी सुलैमान के शब्दों के अनुसार मुझ से प्रसन्न हो सकता था।

अगर मैं मुस्लिम ही रहता तो इनमें से कोई भी बात मेरे लिए सच नहीं हो सकती थी। लेकिन जब मैंने अपना दिल ईसा (यीशु) को दे दिया, तब ये सारी बातें मेरे जीवन का हिस्सा बन गईं। ईसा (यीशु) मसीह

की रोशनी ने मेरे अन्दर से सारी बुराई को उजागर कर दिया और उसे जड़ से उखाड़ फेंका और मुझे परम प्रेम, पवित्रता, शान्ति और तसल्ली के स्रोत के पास ले गई।

मेरे जीवन में आए परिवर्तन ने मेरी पत्नी को भी हैरान कर दिया और उसे भी ईसा (यीशु) मसीह की इंजील पढ़ने के लिए प्रेरित किया। जिसके परिणामस्वरूप उसने भी अपना जीवन ईसा (यीशु) को सौंप दिया। उसने जान लिया कि इस्लाम के होते हुए और ईसा (यीशु) की उपस्थिति के बिना शान्तिमय वैवाहिक सम्बन्ध रखना सम्भव नहीं है। इंजील पढ़ते समय और भी बहुत सारी बातें उसके सामने उजागर हुईं। उदाहरण के लिए, उसने जाना कि ईसा (यीशु) ने कहा है कि एक पुरुष की एक ही पत्नी होनी चाहिए, पति और पत्नी में परस्पर वैसा प्रेम होना चाहिए जैसा वे अपने शरीर से करते हैं। उसने कहा, "यह तो बहुत बढ़िया बात है, एक पति और एक पत्नी।" उसे यह बात बहुत पसन्द आई। सब कुछ उसके सामने स्पष्ट हो गया। उसने जान लिया कि पति-पत्नी, सरकारें और लोग आपस में तब तक प्रेम नहीं रख पाएँगे जब तक वे ऐसी आस्था का अनुकरण करते रहेंगे जो झूठ और धोखे को बढ़ावा देती है। उसने भी इस्लाम को छोड़ दिया और ईसा (यीशु) मसीह की अनुयायी हो गई।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आप अपने दिल की गहराइयों से शान्ति और तसल्ली चाहते हैं। अगर ऐसी बात है, तो आपको इस चाहत को काम करने देना होगा, ताकि आपके जीवन में तसल्ली आए और आपके जीवन में बेचैनी लाने वाली सारे बातें चली जाएँ। इसके लिए

आपको ईसा (यीशु) मसीह का अनुकरण करने की जरूरत है। सच्ची शान्ति और तसल्ली आपको कोई अन्य व्यक्ति नहीं दे सकता।

चिन्तन का समय 19

1. क्या आपको नहीं लगता कि छल, झूठ और धोखा दूसरों के अधिकारों और आज़ादी को छीन लेता है?
2. अगर हम दूसरों को धोखा देते हैं, तो क्या इसका प्रभाव हमारे जीवन पर और हमारे परिवार के लोगों के जीवन पर भी पड़ेगा? कैसे?
3. जब आपका अपना धर्म ही छल, झूठ, धोखे और राजनीतिक चालबाज़ियों का स्वागत करता है, तो आपके अनुसार इन बातों से खुद को बचाना आपके लिए कितना कठिन होगा? ऐसा होने पर इनसे आज़ादी पाने का सबसे बढ़िया तरीका क्या है?
4. ईसा (यीशु) मसीह की इंजील कहती है कि कोई भी झूठ, सत्य की ओर से नहीं हो सकता। आत्मिक तौर पर और तर्क के आधार पर आप इससे क्या समझते हैं?
5. ईसा (यीशु) की ईमानदारी से भरी शिक्षाओं के लिए आप उसका सम्मान कैसे कर सकते हैं?

ईसा (यीशु) के अतिरिक्त और कहीं उद्धार नहीं है

ईसा (यीशु) मसीह की इंजील में प्रेरितों के काम की पुस्तक के अध्याय 4 की आयत 10 से 12 में लिखा है कि ईसा (यीशु) मसीह के नाम के अतिरिक्त और कोई नाम नहीं है, जिसके द्वारा हम मुक्ति पा सकते हैं। कहने का भाव यह है कि सारे संसार में न तो कोई व्यक्ति, न कोई फरिश्ता, न कोई धर्म, न कोई धार्मिक विधि, न कोई परम्परा और न ही कोई रस्म आपको पाप से और शैतान से बचा सकती है और न ही आपको अनन्त जीवन दे सकती है। ऐसा आपके लिए केवल ईसा (यीशु) मसीह ही कर सकता है।

ईसा (यीशु) आपको कैसे बचा सकता है?

आपको केवल परमेश्वर या वह व्यक्ति ही बचा सकता है जिसे शैतान पर विजयी होने की दिव्य शक्ति मिली है। वह आपको शैतान के बन्धन से मुक्त करा सकता है और इसके अतिरिक्त वह आपको ऐसी सुरक्षा दे सकता है कि शैतान की चालें और कष्ट आपको छू भी नहीं पाएँगे। अगर ईसा (यीशु) परमेश्वर नहीं है, तो फिर वह आपको कैसे बचा सकता है? इंजील में लिखा है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर है और ईसा (यीशु) मसीह के अलावा सारी मनुष्यजाति का मुक्तिदाता और कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह इस संसार में परमेश्वर के वचन, परमेश्वर के आत्मा और परमेश्वर के प्रकटीकरण के तौर पर आया।

वही है जिसका नाम इम्मानुएल है, जिसका अर्थ परमेश्वर हमारे संग है होता है। उसका नाम ईसा (यीशु) भी है, जिसका अर्थ निस्तारक और मुक्तिदाता होता है। उसे मसीह भी कहा जाता है, जिसका अर्थ यह है कि केवल वही है जिसे परमेश्वर की ओर से मसह अर्थात अभिषेक किया गया है और जिसके पास मुक्ति का काम पूरा करने का दिव्य अधिकार है। क्या इंजील के दावों के पीछे आत्मिक और तर्क पर आधारित कारण मौजूद हैं कि यह लोगों के मनों, दिलों और विवेक को इस तरह कायल कर सके कि वे ईसा (यीशु) का अनुयायी बन जाएँ? क्या इंजील यह प्रमाणित कर सकती है कि ईसा (यीशु) ही खुद परमेश्वर है और लोगों की मुक्ति के लिए तथा स्वर्ग पहुँचने के लिए मार्ग तैयार कर सकता है?

ईसा (यीशु) के बारे में की गई नबूवतें और उनकी पूर्ति

इंजील के लिए तर्क पेश करने से पहले मैं आपके लिए कुछ नबूवतें पढ़ना चाहता हूँ जो ईसा (यीशु) के बारे में उसके आने से सैकड़ों वर्ष पहले की गई थीं। लगभग 300 ऐसी नबूवतें हैं जो ईसा (यीशु) से पहले हुए विभिन्न नबियों ने उसके बारे में की थीं। इंजील में इन नबियों की ईसा (यीशु) मसीह के बारे में आस्था का सार प्रेरितों के काम की पुस्तक के अध्याय 10 की आयत 43 में दिया गया है, जहाँ इस प्रकार लिखा है: "उसकी सब भविष्यद्वक्ता गवाही देते हैं कि जो कोई उस पर विश्वास करेगा, उसको उसके नाम के द्वारा पापों की क्षमा मिलेगी।"

ये नबूवतें इतनी अद्भुत हैं कि हैरान कर देती हैं। ये नबूवतें ईसा (यीशु) के आने से 1200 से लेकर 400 वर्ष पहले की गई थीं और ये सारी नबूवतें ईसा (यीशु) में उसके जन्म से लेकर स्वर्ग चले जाने तक पूरी हुईं। मैं इनमें से केवल कुछ का ही जिक्र करूँगा।

ईसा (यीशु) मसीह के जन्म से लगभग सात सौ वर्ष पहले नबी यशायाह ने ईसा (यीशु) मसीह के बारे में नबूवत करते हुए कहा: प्रभु आप ही तुम को एक चिह्न देगा। सुनो, एक कुमारी गर्भवती होगी और पुत्र जनेगी, और उसका नाम इम्मानुएल रखेगी (यशायाह 7:14)। इम्मानुएल का अर्थ परमेश्वर हमारे संग होता है।

नबी यशायाह ने फिर से नबूवत की (यशायाह 9:6-7): क्योंकि हमारे लिये एक बालक उत्पन्न हुआ, हमें एक पुत्र दिया गया है; और प्रभुता उसके काँधे पर होगी, और उसका नाम अद्भुत युक्ति करने वाला पराक्रमी परमेश्वर, अनन्तकाल का पिता, और शान्ति का राजकुमार रखा जाएगा। उसकी प्रभुता सर्वदा बढ़ती रहेगी, और उसकी शान्ति का अन्त न होगा, इसलिये वह उसको दाऊद की राजगद्दी पर इस समय से लेकर सर्वदा के लिये न्याय और धर्म के द्वारा स्थिर किए और सम्भाले रहेगा। सेनाओं के यहोवा की धुन के द्वारा यह हो जाएगा।

भजन संहिता 45 की आयत 6 में नबी दाऊद द्वारा ईसा (यीशु) के बारे में की नबूवत पर भी ध्यान दीजिए: "हे परमेश्वर, तेरा सिंहासन सदा सर्वदा बना रहेगा; तेरा राजदण्ड न्याय का है।"

इस प्रकार ईसा (यीशु) के आने से सदियों पहले ही बाइबल के नबियों ने देख लिया था कि परमेश्वर खुद को मनुष्यों के बीच में प्रकट करेगा ताकि मनुष्यजाति में आ सके और उनके साथ अपना सम्बन्ध फिर से स्थापित कर सके। उनका विश्वास था कि परमेश्वर अपनी परिपूर्णता को ईसा (यीशु) मसीह की देह के द्वारा प्रकट करेगा ताकि लोगों के दिलों में से शैतान के राज्य को नाश कर दे और अब से लेकर अन्त तक के लिए उनके दिलों में स्वर्ग के राज्य की स्थापना कर दे। जब भविष्य के ये घटनाक्रम दर्शन के माध्यम से उनके मनों में घूम रहे थे, उन्होंने अपनी आँखें उस महिमामय दिन पर टिका लीं जब परमेश्वर खुद को ईसा (यीशु) के माध्यम से पृथ्वी पर प्रकट करेगा और युद्ध तथा नफरत के स्थान पर प्रेम, आनन्द और शान्ति को स्थापित करेगा। उन्होंने देखा कि ईसा (यीशु) मसीह, शान्ति का राजकुमार अपने शाश्वत दिव्य परमेश्वरत्व में अन्धेरे के शासन को नाश करेगा और संसार को अपनी रोशनी से प्रकाशमान करेगा। उन्होंने देखा कि उसकी आत्मिक प्रभुता इतनी सुदृढ़ होगी कि स्वर्ग और पृथ्वी की कोई भी ताकत उसे गिरा नहीं पाएगी। इसीलिए नबी यशायाह ने कहा, "उसकी प्रभुता सर्वदा बढ़ती रहेगी, और उसकी शान्ति का अन्त न होगा।" इसी कारण उसने कहा कि जो बालक इस कुमारी से जन्म लेगा उसे पराक्रमी परमेश्वर कहा जाएगा।

लोगों ने ये नबूवतें सुनी हुई थीं और वे हमेशा से प्रतीक्षा कर रहे थे कि परमेश्वर आएगा, उनके मध्य में निवास करेगा और उन्हें उनकी दुर्दशा से मुक्त करेगा। ईसा (यीशु) का जन्म हुआ और फिर उन्होंने परमेश्वर के सारे गुण उसमें देखे। उन्होंने देखा कि उसने झील में आए

तूफान को शान्त किया। उन्होंने देखा कि उसने मृतकों को फिर से जीवित किया, अन्धों को आँखें दीं, लकवे के रोगियों को चंगा किया और हर तरह के रोग को दूर किया। उसने यह भी दावा किया कि जिसने उसे देखा है उसने स्वर्गिक पिता को देख लिया है।

परमेश्वर की सारी परिपूर्णता ईसा (यीशु) में वास करती थी

इंजील में इब्रानियों की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 3 में लिखा है: वह उसकी महिमा का प्रकाश और उसके तत्व की छाप है, और सब वस्तुओं को अपनी सामर्थ्य के वचन से संभालता है। इब्रानियों की पुस्तक के इसी अध्याय की आयत 8 में उस बात की पुष्टि की गई है जो नबी दाऊद ने ईसा (यीशु) के बारे में कही थी: "हे परमेश्वर, तेरा सिंहासन युगानुयुग रहेगा: तेरे राज्य का राजदण्ड न्याय का राजदण्ड है।"

इंजील में कुलुस्सियों की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 19 में यह भी लिखा है कि परमेश्वर की सारी परिपूर्णता ईसा (यीशु) मसीह में वास करती थी। कहने का भाव यह है कि ईसा (यीशु) परमेश्वर है, सबकुछ करने के लिए पराक्रमी है और ऐसा कुछ भी नहीं है जो वह नहीं कर सकता। इंजील में ईसा (यीशु) मसीह का रसूल, पौलुस, फिलिप्पियों के विश्वासियों को लिखे अपने पत्र के अध्याय 4 की आयत 13 में कहता है: "मसीह जो मुझे सामर्थ्य देता है उसमें मैं सब कुछ कर सकता हूँ।"

मनुष्यों को बचाने के लिए परमेश्वर ने खुद को ईसा (यीशु) में प्रकट किया

आरम्भ से लेकर अन्त तक बाइबल की केन्द्रीय गाथा यह है कि परमेश्वर एकमात्र मुक्तिदाता है और उसने मनुष्यों को बचाने के लिए, उन्हें शैतान पर विजयी करने के लिए और उन्हें स्वर्ग ले जाने के लिए खुद को ईसा (यीशु) में प्रकट किया है।

अगर आप परमेश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं, तो आपको यह विश्वास भी करना है कि परमेश्वर पराक्रमी है और वह मनुष्यों को शैतान की गुलामी से और हर प्रकार के आत्मिक तथा शारीरिक बन्धनों से मुक्त कर सकता है। आपको यह विश्वास भी करना है कि जैसे सृष्टि में आदम और हव्वा की रचना के लिए परमेश्वर ने खुद को प्रकट किया, वैसे ही मनुष्यों को मुक्ति देने के उद्देश्य से अपना स्पर्श भेजने के लिए और निरन्तर उनकी देखभाल करने के लिए भी परमेश्वर ने खुद को प्रकट किया। इसलिए आपको खुद यह अनुमति देनी है कि परमेश्वर आपके दिल के सिंहासन पर बैठे और पूरा स्थान ले ले, ताकि शैतान को आपके दिल में बसने और आपको परेशान करने की कोई जगह ही न मिले। न तो परमेश्वर को पसन्द है कि वह शैतान को कोई जगह दे और न ही शैतान को पसन्द है कि वह परमेश्वर को कोई जगह दे। वे दोनों ही एक दूसरे को पसन्द नहीं करते और न ही एक दिल में एक साथ रहना चाहते हैं।

इसलिए आपके दिल में या तो परमेश्वर रह सकता है या फिर शैतान। अगर शैतान आपके दिल में रह रहा है तो इसका अर्थ यह कि न तो आपके पास परमेश्वर है, न आप बचाए हुए हैं और न ही आपके पास मुक्ति का आश्वासन है। लेकिन अगर आप परमेश्वर को अपने दिल में रहने देते हैं, तो आप परमेश्वर के हो जाएँगे, उसके स्वर्ग के नागरिक हो जाएँगे और हमेशा के लिए आपको मुक्ति का आश्वासन मिल जाएगा। इसी कारण ईसा (यीशु) मसीह के द्वारा हुआ परमेश्वर का प्रकाशन हमारे जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमें शैतान के चंगुल से छुड़ाने के काबिल कोई भी नहीं है, केवल परमेश्वर ही ऐसा कर सकता है जब वह खुद हमें मुक्ति देने के लिए अपनी योजना के साथ खुद प्रकट होता है और हमारे दिल में से शैतान के राज्य को उखाड़ फेंकता है।

परमेश्वर हमारे दिल में से शैतान के राज्य को कैसे उखाड़ फेंकता है और वह हमारे जीवन में अपनी योजना को कैसे लागू करता है?

पहले मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि शैतान का राज्य तरक्की कैसे करता है, ताकि आप यह अच्छी तरह समझ पाएँ कि उसके राज्य का विनाश कैसे होता है। हर एक व्यक्ति जिस पर शैतान विजयी हो जाता है और उसे अपने बन्धन में बाँध लेता है, वह उसके राज्य की तरक्की का जरिया बन जाता है। इसी प्रकार हर एक व्यक्ति जो शैतान के राज्य से निकलकर परमेश्वर के राज्य में आ जाता है,

वह शैतान के राज्य के विनाश का जरिया बन जाता है। कहने का भाव यह है कि अगर आप बचाए नहीं गए हैं और आपके पास मुक्ति का आश्वासन नहीं है, तो आप शैतान के राज्य की तरक्की का जरिया बनेंगे। लेकिन अगर आप अनुमति दें कि ईसा (यीशु) आपको बचा ले, आपको मुक्ति का आश्वासन दे और आपको स्वर्गिक पहचान दे, तो आप शैतान के राज्य के विनाश में योगदान देंगे।

ईसा (यीशु) के बिना शैतान पर विजयी होना असम्भव है। क्योंकि शैतान धोखा देने और झूठ बोलने में माहिर है, इसलिए वह खुद को किसी भी तरह से अच्छे-अच्छे कामों में छिपा कर पेश करता है, यहाँ तक कि झूठे नबी के तौर पर भी, ताकि आपको फँसा सके। अगर आपके जीवन में आपके लिए एक अच्छा आदर्श नहीं है, तो इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है कि आप उसके धोखे में आ जाएँगे। इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि ईसा (यीशु) मसीह के माध्यम से हुआ परमेश्वर का प्रकाशन हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

हमारे जीवन में हमारे लिए ईसा (यीशु) में प्रकट हुए परमेश्वर से बढ़कर उत्तम आदर्श कोई और हो ही नहीं सकता। मनुष्यजाति के हर एक व्यक्ति ने खुद को शैतान के हाथों में सौंप रखा है और इस प्रकार पाप किया है। यहाँ तक कि खुद इस्लाम के नबी मुहम्मद ने भी सूरह अल-आराफ़ (7) की आयत 188 में कहा कि शैतान ने उसे छूआ और उससे पाप करवाया। हर एक व्यक्ति अधर्म के चंगुल में फँसा हुआ है, हर एक ने दूसरों के अधिकारों का हनन किया है और जानबूझ कर या अनजाने में शैतान का मकसद पूरा किया है। पापी

लोग हमारे लिए अच्छा आदर्श नहीं हो सकते। केवल पापरहित परमेश्वर ही, जिसने खुद को पापरहित ईसा (यीशु) के माध्यम से प्रकट किया, हमारे लिए हमारा अच्छा आदर्श हो सकता है। वह ईसा (यीशु) के माध्यम से हमारे लिए प्रकट हुआ ताकि हम अच्छे आदर्श के गुणों को समझ सकें, जो हमें हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में अर्थात दार्शनिक, सैद्धान्तिक, सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक क्षेत्रों में विजयी बना सकता है।

ईसा (यीशु) ने पृथ्वी पर अपने जीवन के द्वारा सर्वोत्तम आदर्श पेश किया और इंजील में दर्ज उसके कामों के द्वारा इसे प्रमाणित किया। उसने दार्शनिक भाव से हमें सिखाया कि परमेश्वर खुद को छिपाता नहीं है, जैसा कि अन्य धर्मों में होता है, बल्कि कभी भी उस तक पहुँचा जा सकता है, वह हमारे दिलों में बसना चाहता है और हमारे जीवन में शैतान के, जो हमारी मौत का भूखा है, विरुद्ध खड़ा होता है। वह हमें यह सैद्धान्तिक शिक्षा भी देता है कि परमेश्वर पवित्र, इंसाफ-पसन्द, प्रेमी, कृपालु और शान्तिप्रिय परमेश्वर है। वह शैतान के साथ कभी हाथ नहीं मिलाता। जबकि हम देख चुके हैं कि सूरह अल-जिन्न (72) की आरम्भिक आयतों में क़ुरआन बताता है कि इस्लाम का रब अपने दीन (धर्म) को फैलाने के लिए जिन्नों (दुष्टात्माओं) को इस्तेमाल करता है।

पृथ्वी पर ईसा (यीशु) के जीवन और शिक्षाओं ने साफ तौर पर प्रमाणित कर दिया है कि कोई भी व्यक्ति या रब, जो शैतान और दुष्टात्माओं के साथ हाथ मिलाता है, वह सत्य की ओर से नहीं है

और मनुष्यों को बचाने के काबिल भी नहीं है। इसीलिए लोगों को सच्चे मुक्तिदाता को खोजने की जरूरत है। ईसा (यीशु) हमें सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक भाव से भी यह सिखाता है कि सर्वोत्तम आदर्श हमें प्रेमी, सुखी, शान्तिप्रिय, धैर्यवान, कृपालु, अच्छे, विश्वासयोग्य, कोमल और संयम से भरे सम्बन्धों में ले चलता है। जो भी इन सब गुणों से अपना मुख मोड़ लेता है वह न तो लोगों को मुक्ति तक ले जा पाता है और न ही उन्हें परमेश्वर के साथ एक कर पाता है। इस प्रकार अब आप हर पहलू से समझ गए होंगे कि कैसे स्वर्ग में और पृथ्वी पर कोई अन्य नाम नहीं हैं, केवल ईसा (यीशु) मसीह का ही नाम है जिसके द्वारा हमें मुक्ति प्राप्त करनी है। इसीलिए इंजील हमें बताती है: यीशु मसीह खोए हुओं को ढूँढ़ने और उनका उद्धार करने आया था (लूका 19:10)।

खोए हुए लोग वे हैं जो बचाए हुए नहीं हैं, जिनके पास मुक्ति का आश्वासन नहीं है और जो हमेशा शैतान की चालबाज़ियों और हमलों के खतरे में बने रहते हैं। हम शैतान के हमलों और चालबाज़ियों से केवल तभी बचे रह सकते हैं जब हम स्वर्ग के राज्य के नागरिक बन जाते हैं और ईसा (यीशु) मसीह की अगुवाई और आत्मा की सुरक्षा में आ जाते हैं। संसार के अनेक लोग अपने धर्म का पालन केवल इसलिए कर रहे हैं क्योंकि उनके माता-पिता अथवा सम्बन्धी उस धर्म का पालन करते आए हैं। वे तो यह जानते तक नहीं है कि उनका धर्म उनके लिए परमेश्वर को प्रकट करने में असमर्थ है, ताकि परमेश्वर उन्हें अपनी पंखों की छाया में ले सके और पाप तथा शैतान से बचा सके। लेकिन परमेश्वर की इच्छा है कि हम एक ऐसी

आस्था के अनुयायी बनें, जो सच्ची है और अपनी सच्चाई के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कर सकती है, जो हमें बचा सकती है और जो हमें धार्मिकता के जरिए स्वर्ग के मार्ग पर आगे बढ़ा सकती है।

मैं बहुत खुश और धन्य हूँ कि मेरी आँखें खुल गईं और मैंने यह जान लिया कि परमेश्वर की नज़र में परमेश्वर के साथ मेरा सम्बन्ध बाकी सब बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए मैंने परमेश्वर की इच्छा के अनुसार अपनी मुक्ति के लिए खुद को परमेश्वर के साथ जोड़ लिया, सर्वोत्तम आदर्श की खोज की और यह आदर्श ईसा (यीशु) में पा लिया। मैंने इन तथ्यों के बहुत सारे तर्क जान लिए कि क्यों ईसा (यीशु) सर्वोत्तम मार्ग है, सत्य और जीवन का स्रोत है। केवल वही है जो मनुष्यों को बचा सकता है। और फिर मैंने अपना जीवन उसे सौंप दिया। आप भी ऐसा ही कर सकते हैं और उस पर ईमान ला सकते हैं। वह आपको बचाने में भी सक्षम है।

चिन्तन का समय 20

1. लोगों की मान्यता है कि परमेश्वर हर जगह है। अगर ऐसा है तो क्या आपको नहीं लगता कि आप जहाँ कहीं हैं, वहीं पर वह खुद को आप पर प्रकट कर सकता है?
2. अगर परमेश्वर खुद को प्रकट करता है, तो फिर हम उन लोगों की गवाही पर विश्वास क्यों नहीं करते जिन्होंने परमेश्वर के दर्शन पाए हैं?

3. परमेश्वर ने मनुष्य को अपने हाथों से और अपने श्वास से रचा है। तो क्या आपको नहीं लगता कि मुक्ति में भी (आत्मिक नए जन्म में) परमेश्वर का व्यक्तिगत स्पर्श जरूरी है?
4. क्या यह अच्छी बात नहीं है कि परमेश्वर खुद हमें गले लगाए और खुद हमें बचाए?
5. मूसा ने कहा कि परमेश्वर ने खुद को उसपर आग के रूप में प्रकट किया। उसने परमेश्वर के साथ आमने-सामने भी बात की। इंजील कहती है कि परमेश्वर ने खुद को ईसा (यीशु) माध्यम से प्रकट किया कि वह संसार को बचाए। क्या आपको नहीं लगता कि परमेश्वर जैसे चाहे वैसे खुद को प्रकट कर सकता है?
6. यह महत्त्वपूर्ण क्यों है कि मनुष्यों को बचाने के लिए परमेश्वर खुद उतर आए (मनुष्य के रूप में आए)?
7. सारे धर्म कहते हैं कि मनुष्य अपने खुद के कर्मों के द्वारा मुक्ति पाता है, लेकिन इंजील कहती है कि केवल परमेश्वर ही हमें बचा सकता है। किस मुक्ति पर अधिक भरोसा किया जा सकता है, मनुष्यों की ओर से आने वाली पर या परमेश्वर की ओर से आने वाली पर?
8. अगर आप परमेश्वर के द्वारा बचाए जाना चाहते हैं, तो आपको ईसा (यीशु) मसीह का अनुयायी बनना होगा, क्योंकि केवल ईसा (यीशु) मसीह पर ईमान लाने से ही परमेश्वर हमारा मुक्तिदाता बनता है।

ईसा (यीशु) मार्ग, सत्य और जीवन है

ईसा (यीशु) ने इंजील में इस तरह कहा: मार्ग और सत्य और जीवन मैं ही हूँ; बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता। (यूहन्ना 14:6)

जो लोग परमेश्वर पर विश्वास करते हैं, उन्हें पूरा भरोसा रहता है कि वे हमेशा के लिए परमेश्वर के साथ रहेंगे। ईसा (यीशु) लोगों को तसल्ली से भरा यह आश्वासन देता है जो आज तक किसी और ने नहीं दिया है। वह कह रहा है कि वह मार्ग है और लोगों को अनन्तकाल के लिए स्वर्ग ले जाने में सक्षम है।

ईसा (यीशु) स्वर्ग का मार्ग है

ईसा (यीशु) यहाँ पर किसी नबी की तरह बात नहीं कर रहा है कि अगर आप यह करेंगे या वह करेंगे तो आप स्वर्ग जाने के काबिल हो जाएँगे। वह कह रहा है कि स्वर्ग जाने का मार्ग वह खुद है। जो कोई उस पर ईमान लाता है, उसका स्वर्ग में प्रवेश सुनिश्चित है। इसलिए ईसा (यीशु) उन नबियों के समान नहीं है जो अपने अनुयायियों को केवल मार्ग का विवरण ही देते रहे, लेकिन इससे बढ़कर उनके लिए कुछ नहीं कर पाए। बल्कि ईसा (यीशु) ने तो खुद स्वर्ग जाकर दिखाया। उसके चेलों और अन्य सैकड़ों लोगों ने उसे इस जीवन से स्वर्ग में जाते देखा और उस पर विश्वास किया जिसने अपने चेलों से कहा था कि वह उन्हें भी स्वर्ग ले जाएगा जहाँ वह खुद है। इसलिए ईसा (यीशु) मार्ग है। अगर आप और मैं स्वर्ग और परमेश्वर की

उपस्थिति में प्रवेश चाहते हैं और अनन्तकाल के लिए बचाए जाना चाहते हैं, तो हमें उस पर ईमान लाने की जरूरत है।

क्या आप जानते हैं कि जो व्यक्ति हमें शुभ समाचार देना चाहता है उसे खुद शुभ समाचार का आदर्श होना चाहिए? इस्लाम के नबी ने कहा कि शायद आप स्वर्ग जाएँ, लेकिन वह खुद इस बात को पक्के तौर पर नहीं जानता था कि वह खुद स्वर्ग जाएगा या नहीं और न ही किसी ने उसे खुद स्वर्ग जाते देखा है, जबकि ईसा (यीशु) को लोगों ने स्वर्ग जाते देखा।

मुहम्मद की मौत के बाद उसके अनुयायी उसे दफनाना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे सोच रहे थे कि वह इतना अधिक पवित्र है कि उसे मिट्टी के नीचे नहीं दफनाया जा सकता। वे उम्मीद कर रहे थे कि ईसा (यीशु) के समान उसे भी स्वर्ग में उठा लिया जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ और उसके एक उत्तराधिकारी ने वहाँ जमा हुए लोगों को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि मुहम्मद उनके समान एक इंसान ही था और उसे भी उनके समान मौत का सामना करना था। कहने का भाव यह है कि वह ईसा (यीशु) के समान नहीं था जो मृतकों में से जीवित हो गया और स्वर्ग में उठा लिया गया था।

ईसा (यीशु) जैसा तो कोई भी नहीं है। उसने मौत को हराया और अब वह स्वर्ग में अपने सिंहासन पर विराजमान है। अगर आप और मैं उसके अनुयायी बनने का फैसला कर लें तो वह हमें भी स्वर्ग के नागरिक बना सकता है।

ईसा (यीशु) ने यह भी कहा कि वह सत्य है

जब तक हम यह नहीं समझते कि सत्य क्या है, तब तक हम ईसा (यीशु) के दावे को समझ नहीं पाएँगे। सत्य का अर्थ है, किसी भी बात को वैसे प्रस्तुत करना जैसे वह है। यह किसी भी बात के झूठे रूप को सहन नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, सत्य परमेश्वर को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह न तो झूठ बोलता है और न ही धोखा देता है, क्योंकि वह स्वभाव से ही इंसाफ पसन्द और पवित्र है।

ईसा (यीशु) और उसकी इंजील परमेश्वर को न तो कभी झूठा कहती है और न ही धोखेबाज़ या चालबाज़ कहती है, जबकि मुहम्मद ने क़ुरआन में कहा है कि परमेश्वर सबसे अच्छा चालबाज़ है और कुछ हालात में झूठ बोलने की अनुमति भी देता है। पिछले भागों में मैं क़ुरआन में से वे आयतें बता चुका हूँ जिनमें कहा गया है कि झूठ बोलने और धोखा देने को इस्लाम के प्रसार के लिए कानूनी तौर पर सही ठहराया गया है। इस्लाम में अपने विरोधी या एक गैर-मुसलमान को मौत की सज़ा दिलाने के लिए झूठी गवाही देने को जायज़ ठहराया गया है।

जबकि ईसा (यीशु) मसीह की इंजील में ऐसी बातों की सख्त मनाही की गई है। आप न तो झूठ बोल सकते हैं और न ही किसी के खिलाफ झूठी गवाही दे सकते हैं, यहाँ तक कि अपने शत्रु के खिलाफ भी नहीं, क्योंकि सत्य कभी भी झूठ को बढ़ावा नहीं देता। इंजील में याकूब

की पुस्तक के अध्याय 3 की आयत 10 से 12 में लिखा है: एक ही मुँह से धन्यवाद और शाप दोनों निकलते हैं। हे मेरे भाइयो, ऐसा नहीं होना चाहिए। क्या सोते के एक ही मुँह से मीठा और खारा जल दोनों निकलता है? हे मेरे भाइयो, क्या अंजीर के पेड़ में जैतून, या दाख की लता में अंजीर लग सकते हैं? वैसे ही खारे सोते से मीठा पानी नहीं निकल सकता। इसी प्रकार, अगर हमारे दिलों में से निकलने वाला सोता सत्य है, तो फिर जरूरी है कि हमारी ज़ुबान सच बोले। लेकिन अगर हम झूठ बोलते हैं या धोखा देते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि हमारे दिल में से निकलने वाला सोता सत्य नहीं है, बल्कि बुरा है।

परमेश्वर की ज़ुबान से भी वही शब्द निकलते हैं जो उसके दिल में होते हैं। उसके दिल में केवल परम सत्य भरा हुआ है। परमेश्वर के दिल में झूठ या धोखे का एक कतरा तक नहीं पाया जाता; और इसी कारण वह न तो कभी झूठ बोलता है और न ही धोखा देता है और न ही वह किसी को झूठ बोलने या धोखा देने के लिए उकसाता है। इसलिए जो नबी या धर्म यह कहता है कि परमेश्वर किसी भी कारण से झूठ बोलता है और किसी भी कारण से धोखा देता है, तो वह नबी या धर्म न तो परमेश्वर की ओर से हो सकता है और न ही सत्य की ओर से हो सकता है।

पृथ्वी पर ईसा (यीशु) मसीह का जीवन परमेश्वर के सत्य का सिद्ध प्रकाशन था और उसमें कोई झूठ और धोखा नहीं था। उसकी इंजील में भी हर प्रकार के झूठ और धोखे की मनाही की गई है, यहाँ तक कि तक़िय्या की भी मनाही है। इसलिए ईसा (यीशु) का यह दावा

एकदम सही है कि वह सत्य है। वह न तो यह कहता है कि परमेश्वर झूठ बोलता है और धोखा देता है, और न ही वह किसी मनुष्य को झूठ बोलने या धोखा देने के लिए उकसाता है। यहाँ तक कि उसके शब्दों और कामों में भी कोई झूठ या धोखा नहीं पाया जाता। वह सत्य का स्रोत है और पृथ्वी पर उसके द्वारा बिताया गया सत्य से भरा जीवन हमारे लिए सबसे बड़ा कारण है कि हम अब और हमेशा के लिए उस पर ईमान लाएँ।

ईसा (यीशु) ने यह भी कहा कि वह जीवन है

इंजील में यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 1 की आयत 4 में लिखा है कि ईसा (यीशु) जीवन है, और यह जीवन मनुष्यों की ज्योति है। उसका जीवन ऐसा जीवन है जो अनन्त जीवन देता है, मनुष्यों पर स्वर्गिक ज्योति चमकाता है और उन्हें स्वर्ग के मार्ग पर ले चलता है। ईसा (यीशु) ने इंजील में यूहन्ना की पुस्तक के अध्याय 5 की आयत 25 में कहा: मैं तुम से सच सच कहता हूँ वह समय आता है, और अब है, जिसमें मृतक परमेश्वर के पुत्र का शब्द सुनेंगे, और जो सुनेंगे वे जीएँगे। ईसा (यीशु) ने मृतकों को जीवित किया और जीवित लोगों के दिलों को छूआ और उन्हें अनन्त जीवन दिया। उसने जीवनदाता होने के अपने दावे को मनुष्यों के बीच में प्रमाणित किया।

मसीह ने केवल एक नबी के तौर पर लोगों का मार्गदर्शन करने का काम ही नहीं किया, बल्कि उनके दिलों में से पाप को साफ भी किया, उनके दिलों को नया रूप भी दिया और पहले उन्हें अनन्त जीवन

दिया और फिर सत्य, पवित्रता, धार्मिकता, शान्ति और प्रेम में उनकी अगुवाई भी की। जिस दिल की सफाई नहीं हुई है और जिसे नया रूप नहीं दिया गया है, उसकी अगुवाई नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति खुद जीवन नहीं है और जीवन का स्रोत नहीं है, वह किसी के भी दिल को न तो साफ कर सकता है, न नया रूप दे सकता है और न ही सत्य में उसकी अगुवाई कर सकता है। केवल ईसा (यीशु) ही वह व्यक्ति है, जो ऐसा कर सकता है। जीवन होने के नाते और जीवन का स्रोत होने के नाते वह जीवनदाता है। इसलिए ईसा (यीशु) स्वर्ग का मार्ग है। वही एकमात्र मार्ग है जो परमेश्वर को प्रकट करता है और हमारे दैनिक जीवन में उसकी पहुँच बनाता है।

ईसा (यीशु) मसीह के मार्ग में परमेश्वर तथा मनुष्यों के बीच कोई पर्दा नहीं है

ईसा (यीशु) में लोग परमेश्वर के साथ रह सकते हैं, उससे सीधे बात कर सकते हैं और सीधे उसकी सुन सकते हैं और उसके साथ एक हो सकते हैं। लेकिन क़ुरआन में सूरह अश-शूरा (42) की आयत 51 में लिखा है कि मुहम्मद और उसके रब के बीच में एक पर्दा है और इस्लाम का रब किसी से भी सीधे बात नहीं करता। अब इस स्थान पर आकर आपको अपने विवेक को सही फैसला लेने की अनुमति देनी है कि वह मुहम्मद के मार्ग और ईसा (यीशु) के मार्ग में से किसी एक को चुने। मुहम्मद ने सिखाया कि उसके मार्ग पर चलकर परमेश्वर के पास जाने से उसमें और परमेश्वर में हमेशा पर्दा बना रहेगा, लेकिन

ईसा (यीशु) के मार्ग में ऐसी कोई बाधा नहीं है। इसलिए ईसा (यीशु) स्वर्ग ले जाने वाला सही मार्ग है।

दूसरी बात, ईसा (यीशु) अब स्वर्ग में है, जबकि क़ुरआन के अनुसार मुहम्मद स्वर्ग में नहीं है। यह स्पष्ट तौर पर प्रकट है कि जो स्वर्ग में है वही स्वर्ग ले जाने का सही मार्ग और सही मार्गदर्शक हो सकता है।

तीसरी बात, केवल स्वर्गिक पुरुष और स्त्रियाँ ही परमेश्वर के साथ हो सकते हैं और उस तक उनकी पहुँच हो सकती है। अगर आप ईसा (यीशु) का अनुकरण करते हैं, तो आप भी उसके समान स्वर्गिक बन जाते हैं और परमेश्वर के साथ हमेशा के लिए रह सकते हैं। इसलिए ईसा (यीशु) मसीह ही एकमात्र उम्मीद है जो मुसलमानों और बाकी सब लोगों को परमेश्वर के पास ला सकता है।

ईसा (यीशु) ही एकमात्र उम्मीद है जो मुसलमानों को परमेश्वर के साथ एक कर सकता है। ईसा (यीशु) ही एकमात्र उम्मीद है जो मुसलमानों को शैतान पर विजयी कर सकता है और न्याय के दिन उन्हें आज़ाद कर सकता है। ईसा (यीशु) ही एकमात्र उम्मीद है जो मुसलमानों को स्वर्ग के नागरिक बना सकता है। ईसा (यीशु) पर ईमान लाएँ और मुक्ति का अनन्त आनन्द प्राप्त करें।

आरम्भ से लेकर अन्त तक मेरी बातों को धीरज के साथ सुनने के लिए आपका धन्यवाद। मेरी आशा और प्रार्थना है कि ये बातें आपके लिए मददगार हों। परमेश्वर आपको आशीष दे।

चिन्तन का समय 21

1. वह क्या बात है जो ईसा (यीशु) को एक नबी से भिन्न बनाती है?
2. ईसा (यीशु) ने कहा कि वह स्वर्ग जाने का मार्ग है। क्या उसके इस दावे का कोई प्रमाण मौजूद है?
3. ईसा (यीशु) स्वर्ग से है और अब स्वर्ग में है, वह स्वर्ग का मार्ग जानता है और हमें स्वर्ग तक ले जाने में हमारी अगुवाई कर सकता है। क्या ऐसी कोई बात है जो ईसा (यीशु) पर ईमान लाने से आपको रोक रही है?
4. ईसा (यीशु) ने यह भी कहा कि वह सत्य है। क्या पृथ्वी पर उसके जीवन ने उसके इस दावे को प्रमाणित किया?
5. अगर ईसा (यीशु) सत्य है, तो क्या आपके लिए यह अच्छा नहीं होगा कि आप उसे अपने सच्चे आदर्श के तौर पर स्वीकार कर लें?
6. परमेश्वर का जीवनदायक आत्मा कुँवारी मरियम के पास आया और मरियम ने एक परम पवित्र तथा जीवनदाता पुत्र को जन्म दिया। इसी कारण ईसा (यीशु) ने दावा किया कि वह अनन्त जीवन है और जीवन का स्रोत तथा जीवनदाता है। अगर आप अभी तक उस पर ईमान नहीं लाए हैं, तो कृपया अभी ऐसा करें और अनन्त जीवन प्राप्त करें।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

Muhammad Jarir Tabari, Tabari's History, "*The History of Prophets and Kings*"

Qurans: Nobel Koran, Pickthall, Yusuf Ali and Dr. Mohsin.

Hindi Quran: http://quraninhindi.com/index.php

Scripture quotations are from The Holy Bible, Hindi OV, The Bible Society of India (public domain).

The Mecca Question by Jeremy Smyth, Copyright © Jeremy Smyth, 2011.

https://en.wikipedia.org/wiki/First_they_came_...

https://en.wikipedia.org/wiki/Giraffe#Neck;

http://www.africam.com/wildlife/giraffe_drinking

मुसलमानों को बचपन से ही सिखाया जाता है कि इस्लाम अन्तिम और सिद्ध धर्म है। उनके अगुवे और विद्वान उन्हें यह तो सिखाते हैं, लेकिन अन्य आस्थाओं के साथ इसकी तुलना करके इस दावे के प्रमाणों को जाँचने की अनुमति नहीं देते। वास्तव में, उन्हें परमेश्वर द्वारा दी गई आज़ादी और अधिकार का उपयोग नहीं करने दिया जाता ताकि वे खुद के लिए सर्वोत्तम आस्थाओं और सिद्धान्तों को खोज सकें, जो जीवन में आगे बढ़ने के लिए जरूरी हैं।

समझ और आज़ादी मुसलमानों की सहायता करती है कि वे इस्लामिक गुलामी से आज़ाद हों और अन्य धर्मों तथा सांस्कृतिक धारणाओं के बारे में सीखें। इस पुस्तक के आरम्भ में मुसलमानों को यह समझने के लिए प्रोत्साहित किया गया है कि सच्चा व्यक्तिगत ज्ञान हासिल किए बिना वे न तो सर्वोत्तम आस्था को प्राप्त कर पाएँगे और न ही रचनात्मक संस्कृति में जी पाएँगे। इसके बाद इस पुस्तक में इस्लाम की बुनियादी सैद्धान्तिक शिक्षाओं की जानकारी दी गई है और फिर इस्लामिक विश्वास तथा मसीही विश्वास के प्रमुख पहलुओं में तुलना और अन्तर पेश किया गया है, ताकि मुसलमानों को यह आकलन करने के लिए सही दृष्टिकोण मिल जाए कि इस्लाम को सिद्ध आस्था कहे जाने का दावा सच्चा है या नहीं।

डॉ. डैनियल शायेस्तेह, जो एक कट्टरपन्थी मुस्लिम शिक्षक और राजनेता रह चुके हैं, अब ईसा (यीशु) मसीह के प्रचारक और अपॉलोजिस्ट हैं। दो दशकों से संसार भर में भ्रमण करके मुसलमानों और अन्य आस्थाओं के अनुयायियों के साथ अनगिनत अवसरों पर बातचीत करने के द्वारा डैनियल विशिष्ट रूप से अनुभवी और प्रतिभाशाली हैं, जो लोगों के मनों और दिलों को स्पर्श करते हैं तथा मसीह के प्रेम को सामर्थी तरीके से बाँटते हैं।

Exodus from Darkness, Inc.
©2020 All Rights Reserved
www.exodusfromdarkness.org

ISBN 978-0-6489558-2-5
90000
9 780648 955825